

मोक्षमार्गप्रकाशक प्रवचन

भाग-4

आचार्यकल्प पण्डितप्रवर टोडरमलजी द्वारा रचित मोक्षमार्गप्रकाशक पर हुए
पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी के गुजराती प्रवचनों का हिन्दी अनुवाद
(अधिकार 8 व 9)

ग्रन्थकार परिचय :

बाबू जुगलकिशोर जैन 'युगल'
एम.ए., साहित्यरत्न
कोटा (राज.)

प्रस्तावना :

डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल
शास्त्री, न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न
एम.ए., पीएच.डी.,
जयपुर (राज.)

सम्पादन :

पण्डित अभयकुमार जैन
जै
छिन्दवाड़ा (म.प्र.)

हिन्दी अनुवाद :

पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन
बिजौ
भीलवाड़ा (राज.)

प्रकाशक :

आचार्य कुन्दकुन्द शिक्षण संस्थान ट्रस्ट

ए-304, पूनप अपार्टमेन्ट

वरली मुम्बई - 400018

ॐ

प्रथम संस्करण : 3100 प्रतियां
दिनांक 2 फरवरी 2003

**श्री महावीर दि. जिनबिम्ब पंचकल्याणाक महोत्सव, तीर्थधाम मङ्गलायतन
अलीगढ़ के अवसर पर**

न्यौछावर राशि : 30 रूपये मात्र

प्राप्ति स्थान : **आचार्य कुन्दकुन्द शिक्षण संस्थान ट्रस्ट**
ए-304, पूनम अपार्टमेन्टस,
वरली, मुम्बई 400 018
फोन 24921969

श्री वीतराग विज्ञान स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट
वीतराग विज्ञान भवन, पुरानी मंडी, अजमेर
फोन 2429397

श्री टोडरमल स्मारक ट्रस्ट,
ए-4 बापूनगर, जयपुर 302 015
फोन 2705581

पण्डित सदासुख ग्रन्थमाला
4635/38, डिप्टीगंज, सदर बाजार, दिल्ली-6
फोन 23627825

टाईप सेटिंग : **अजय गुप्ता**
वेब कम्प्यूटर एवं प्रिन्टर, गोरधनपुरा, कोटा
दूरभाष: 0744-2364158

मुद्रक : मौसम प्रिन्टर्स, दिल्ली

प्रकाशकीय

प्राणीमात्र के लिये कल्याणकारी पवित्र दिगम्बर जैनधर्म की मंगलमय प्रभावना एवम् उसके प्रचार प्रसार की आवश्यकता को गहराई से अनुभव करते हुए अजमेर निवासी मुम्बई प्रवासी अध्यात्म रसिक श्री पूनमचन्दजी लुहाड़िया परिवार द्वारा 28 मई 1995 को श्री वीतराग-विज्ञान शिक्षण प्रशिक्षण शिविर, देवलाही (महाराष्ट्र) के पावन प्रसंग पर अध्यात्म जगत के मूर्धन्य मनीषी बाबू जुगलकिशोर जी 'युगल' -कोटा के संरक्षकत्व एवं अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त विद्वान डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल के कुशल निर्देशन में, "आचार्य कुन्दकुन्द शिक्षण संस्थान ट्रस्ट" की स्थापना की घोषणा की गई। उपरिथत विशाल जनसमूह ने अतिउत्साह से इस पवित्र कार्य का हार्दिक अनुमोदन किया। ट्रस्ट का मुख्य कार्यालय मुम्बई में स्थित है एवं इसका रजिस्ट्रेशन करवा लिया गया है।

ट्रस्ट का मुख्य उद्देश्य दिगम्बर जैनधर्म का प्रचार-प्रसार करना है। इस उद्देश्य के प्रति समर्पित कार्यशील उदीयमान विद्वानों को, उनकी आर्थिक कठिनाईयों से मुक्त रखते हुए उन्हें हर संभव दृढ़ता प्रदान करना है जिससे उनकी सेवा एवम् तत्त्व समर्पण की भावना का अधिक से अधिक लाभ समाज को मिल सके।

इसके अतिरिक्त शिक्षण एवं शोधकार्य में निरन्तर रत प्रतिभाशाली विद्वानों का समुचित सम्मान करना भी ट्रस्ट का उद्देश्य है। इस श्रृंखला में अब तक 'जैनश्रमण-स्वरूप और समीक्षा' पर डॉ. योगेश जैन शास्त्री अलीगंज-एटा को, 'जैन कर्म सिद्धांते बन्धमुक्ति प्रक्रिया' पर डॉ.श्रीयांसकुमार सिंघई जयपुर को, 'महाकवि भूधरदास- एक समालोचनात्मक अध्ययन' पर डॉ. नरेन्द्रकुमार शास्त्री जयपुर को, 'आ. योगीन्दुदेव का व्यक्तित्व और कर्तृत्व' पर डॉ. सुदीपकुमार शास्त्री दिल्ली को, 'जैनदर्शन में सम्यग्दर्शन -समालोचनात्मक अध्ययन' पर डॉ. विनोद 'चिन्मय' शास्त्री विदिशा को, 'श्री कानजीस्वामी व्यक्तित्व और कर्तृत्व' पर डॉ. मुकेश 'तन्मय' शास्त्री विदिशा को, 'संस्कृत साहित्य में दिक्पाल की अवधारणा' पर डॉ. राजेशकुमार जैन शास्त्री ग्यारसपुर-विदिशा को, 'हिन्दी गद्य के विकास में जैन मनीषी पं. सदासुखदासजी का योगदान' पर डॉ. श्रीमती मुन्नीदेवी जैन (ध.प.डॉ. फूलचंदजी जैन वाराणसी) को पी.एच.डी. करने के उपलक्ष्य में सम्मानित किया गया है।

इसके अतिरिक्त विश्वविद्यालयों आदि की जैन धार्मिक परीक्षाओं में प्रथम, द्वितीय, तृतीय स्थान प्राप्त करनेवाले छात्रों को सम्मानित करने का भी प्रावधान है।

अपने द्वारा नियुक्त विद्वानों के सौजन्य से ट्रस्ट समाज से शिक्षण-शिविर, व्याख्यान मालाएँ, पूजन-विधान, वेदीप्रतिष्ठा एवं पंचकल्याणकादि में आमन्त्रण-पत्र प्राप्त होने पर सहयोग प्रदान करने हेतु सदैव तत्पर है।

अपनी गतिविधियों को आगे बढ़ाते हुए अब ट्रस्ट ने अप्रकाशित सत्साहित्य एवम् पूज्य गुरुदेवश्री के अप्रकाशित प्रवचनों के प्रकाशन की दिशा में कदम बढ़ाये हैं और इस कड़ी में सर्वप्रथम आचार्यकल्प पूज्य पण्डित श्री टोडरमलजी द्वारा रचित मोक्षमार्गप्रकाशक पर पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी के प्रवचनों का प्रकाशन कार्य हाथ में लिया है, इस चौथे भाग के प्रकाशन के साथ पूर्ण हो रहा है। जिसमें आठवें-नौवें अधिकार पर हुए पूज्य गुरुदेवश्री के प्रवचन संकलित हैं।

अन्य ग्रन्थों पर हुए प्रवचनों का प्रकाशन कार्य ट्रस्ट की भावी योजनाओं में है।

पूज्य गुरुदेवश्री के ये प्रवचन सन् 1953 में दिये गये थे, सोनगढ़ से निकलने वाले गुजराती दैनिक 'श्री सद्गुरु प्रवचन प्रसाद' में प्रकाशित हुए हैं। उस समय इनका लेखन व सम्पादन श्री अमृलभाई नरशीलाल भाई तथा श्री स्त्रीमचंद जेठालाल सेठ करते थे।

प्रस्तुत ग्रंथ में पूज्य गुरुदेवश्री के सन् 1953 के दो बाद के प्रवचनों को संकलित किया है, जिनमें पहले प्रवचन सम्पूर्णतः एवं द्वितीय प्रवचनों के वे अंश जो उन प्रवचनों में नहीं थे और जिनमें कुछ विशेष स्पष्टीकरण थे, संकलित किये गये हैं।

इन प्रवचनों में गुरुदेवश्री ने चार अनुयोग और मोक्षमार्ग संबंधी जो विशद स्पष्टीकरण किया है वह कई भ्रान्तधारणाओं के प्रक्षालन हेतु पर्याप्त सामग्री प्रदान करता है। इस उपकार के लिये पूज्य पण्डित टोडरमलजी के साथ-साथ पूज्य गुरुदेवश्री का भी अनंत उपकार है।

सम्पूर्ण दिगम्बर जैन समाज ने इस प्रवचनों को जिस उत्साह से अपनाया है -अपने पठन-पाठन की वस्तु बनाया है, उससे हमारे उत्साह में वृद्धि हुई है। हमें कहते हुए गर्व है कि इस प्रवचन ग्रन्थ के भाग-1 वे 2 समाप्त होकर पुनः प्रकाशन की तैयारी में है।

इन प्रवचनों का सम्पादन कार्य पण्डित अभयकुमार जी शास्त्री छिन्दवाड़ा ने तथा हिन्दी अनुवाद पुवाविद्वान पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, बिजौलियाँ राज. ने किया है। ट्रस्ट

उनका अभारी है। पण्डित देवेन्द्रकुमारजी द्वारा अनुवादित व सम्पादित अन्य प्रवचन भी विभिन्न ट्रस्टों से प्रकाशित हो रहे हैं, जिनमें अष्टपाहुड़ प्रवचन, अनुभवप्रकाश प्रवचन, द्रव्यसंग्रह प्रवचन तथा नाटक समयसार प्रवचन आदि विशेष उल्लेखनीय है।

हमारे अनुरोध पर इस ग्रन्थ की महत्वपूर्ण प्रस्तावना अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त अध्यात्म मनीषी डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल, जयपुर ने लिखी है तथा इस ग्रन्थ के प्रकाशन में हमें सुप्रसिद्ध दार्शनिक चिन्तक बाबू जुगलकिशोर जी 'युगल' कोटा, का समुचित मार्गदर्शन प्राप्त हुआ है— ट्रस्ट उक्त विद्वानों का हार्दिक अभारी है। साथ ही भविष्य में भी ऐसे ही सहयोग की अपेक्षा रखता है।

इस प्रवचन ग्रन्थ में आदरणीय बाबूजी युगल जी द्वारा लिखित पण्डित टोडरमल जी का परिचय एवं सम्पूर्ण ग्रन्थ का समीक्षात्मक अध्ययन 'मोक्षमार्ग प्रकाशक एक अध्ययन' दिया जा रहा है; जो चैतन्य विहार पुस्तक में प्रकाशित हो चुका है।

इस ग्रन्थ की कीमत कम करने हेतु साधमीजनों के द्वारा प्रदत्त आर्थिक सहयोग हेतु ट्रस्ट आभारी है। सूची अलग से प्रकाशित है।

इस ग्रन्थ के लेजर सैटिंग का काम श्री अजय गुप्ता "वेब कम्प्यूटर एवं प्रिन्टर" गोरधनपुरा, कोटा द्वारा किया गया है एवं सुन्दर प्रकाशन का श्रेय इण्डिया बाईण्डिंग हाऊस दिल्ली को जाता है।

सभी साधमीजन इस प्रवचनों के मर्म को समझकर अपना आत्मकल्याण करें। ऐसी भावना के साथ-साथ यदि कहीं भाव सम्बन्धी अशुद्धि आपको दृष्टिगोचर होवे तो कृपया हमें सूचित करें जिससे उसकी पुनरावृत्ति से बचा जा सके।

बसंतभाई, एम.दोशी

मेनेजिंग ट्रस्टी

आचार्य कुन्दकुन्द शिक्षण संस्थान ट्रस्ट,

मुम्बई-18

अनुवादक के दो शब्द

आचार्यकल्प पण्डितप्रवर टोडरमलजी एवं उनकी अनुपम कृति मोक्षमार्गप्रकाशक से समस्त तत्त्वप्रेमी स्वाध्यायी समाज सुपरिचित है

नौ
दिया है

यही कारण है
को यह ग्रन्थ प्राप्त हुआ तो उन्होंने कुशल जौ
लिया। इस ग्रन्थ के सातवें अधिकार पर तो वे ऐसे रीझे कि पूरे अधिकार को ही अपने हाथ
से लिख दिया।

तत्पश्चात् उन्होंने इस ग्रन्थ पर कई बार प्रवचन किये एवं अपने अन्य प्रवचनों में भी अपनी बात को पुष्ट करने के लिये इस ग्रन्थ एवं पण्डित टोडरमलजी का वे अत्यन्त आदर के साथ स्मरण करते रहे।

उनके द्वारा दिये गये प्रवचन सोनगढ़ से निकलनेवाले दै **‘सद्गुरु प्रवचन प्रसाद’**
में नियमित प्रकाशित होते थे, जिन्हें श्री अमृतभाई नरशीलाल भाई एवं खीमचंद भाई जे. सेठ
लिखकर सम्पादित करते थे। उक्त दोनों महानुभावों के असीम प्रयास से गुरुदेव श्री द्वारा
प्रदत्त यह धरोहर हमें सहज उपलब्ध हो गई है

अनन्त-अनन्त उपकार है

दोनों विद्वानों का भी समाज पर बहुत उपकार है

सम्पूर्ण प्रवचन ग्रन्थ को चार भागों में प्रकाशन की योजना के साथ पहले भाग का
विमोचन अगस्त-2000 के जयपुर शिविर में किया गया था औ
विमोचन जनवरी 2003 में अलीगढ़ में मंगलायतन तीर्थधाम के आयोजित श्री महावीर
जिनबिम्ब पंचकल्याणक महोत्सव के अवसर पर मेरे श्रद्धेय गुरवर्य पूज्य पण्डित कै
(बुलन्दशहर वाले-अलीगढ़) के सानिध्य में किया जा रहा है

तीन वर्ष के अत्यल्प समय में इस कार्य को पूर्णता प्रदान करने में पण्डित कै
का मार्गदर्शन एवं आशीर्वाद ही कारण रहा है
गुरुदेवश्री की महिमा प्राप्त करके ही मैं
-तदर्थ इस कार्य को पूर्णता के अवसर पर आपश्री का अत्यन्त आभारी हूँ।

इस ग्रन्थ में मोक्षमार्गप्रकाशक के आठवें तथा नौ
संकलित किया गया है
ही रखे गये है
विवेचन तथा प्रवचनों में उसका विशद स्पष्टीकरण चिरकालीन मिथ्यात्व के वज्र लेप को
क्षणभर में विसर्जित कर सम्यक् दिशा व दृष्टि प्रदान करता है
होगी कि यदि इस अधिकार में वर्णित दृष्टि से जिनवाणी का अवगाहन किया जाये तो सातवें
अधिकार में वर्णित भूलों का जीवन में होना संभव न हो।

इसी तरह नौ
रामबाण औ
अधिकार पूरा नहीं लिखा जा सका है
है

इन अधिकारों का अमूल्य लेखन करके पूज्य पण्डित टोडरमल जी ने औ
भाववाही स्पष्टीकरण करके पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी ने जो उपकार किया है
अभिव्यक्त करने के लिये हमारे पास कोई शब्द नहीं है
अपनी विनयांजली समर्पित करते है

आदरणीय बाबूजी श्री पूनमचन्द जी लुहाड़िया ने इनके प्रकाशन का दायित्व स्वीकार
कर मेरे उत्साह में अभिवृद्धि की है

आदरणीय बाबू जुगलकिशोर जी 'युगल' कोटा से मुझे इस विषय में समय-समय पर
मार्गदर्शन मिला, साथ ही आदरणीय डॉ. हुकमचन्द जी भारिल्ल ने कई उपयोगी सुझावों के
साथ-साथ प्रस्तावना लिखने की कृपा की, औ
रखने हेतु प्रोत्साहित किया तदर्थ विद्वतद्वय का विशेष आभारी हूँ।

अनुवादोपरांत अतिशय श्रमसाध्य सम्पादन कार्य में मार्गदर्शन करने के लिये एवं उपयोगी सुझावों के लिये आदरणीय पण्डित अभयकुमार जी जै अभारी हूँ औ

सभी साधर्मीजन इस ग्रंथ का स्वाध्याय कर आत्मकल्याण करें –इस भावना के साथ यह अनुरोध भी करना चाहूंगा कि यदि कोई भाव सम्बन्धी भूल ज्ञात होवे तो अवश्य सूचित करें, जिससे आगामी संस्करण में सुधार के साथ-साथ अन्य प्रकाशनों में उसकी पुनरावृत्ति से बचा जा सके।

देवेन्द्रकुमार जै

गुरु कहान मार्केट

बिजौ

दूरभाष: 01489-236061, 236347

एक महान व्यक्तित्व आचार्यकल्प पण्डित टोडरमल

पण्डित प्रवर टोडरमल हिन्दी जै
में उनकी समता का दूसरा विद्वान नहीं हुआ। उनके पूर्व एवं पश्चात् हिन्दी-जै
अनेक गद्य-पद्यमय मौ
टोडरमल के असाधारण महत्व को प्रभावित नहीं कर सकीं। अपने समय के विद्वद्वर्ग में
पण्डित टोडरमल सर्वोच्च एवं बेजोड़ है
में उनकी सर्वतोमुखी प्रतिभा की अजस्त्रधारा प्रवाहित हुई है
विषय को इतनी सुन्दरता से उठाया है
अस्वाभाविकता से हृदय ऊबता नहीं है
प्रभाव है
न्याय, व्याकरण, काव्य, छन्द, अलंकार, संस्कृत, गणित तथा धर्म सम्बन्धी उनका ज्ञान
असामान्य था। मोक्षमार्गप्रकाशक यद्यपि मुक्ति-मार्ग का प्रतिपादक एक धर्म ग्रन्थ है
उसमें भाव एवं भाषा का अद्भुत समन्वय हुआ है
गहनता तथा भावों के भार को ऐसी कुशलता से सम्भाला गया है
है
दोनों में कहीं शै
सुघड़ एवं सुव्यवस्थित शै
अनुपलब्ध है
विद्वानों से भी ऊँचा हो गया है
हुए है
प्रस्तुत किये है
लोहा मानता है

समग्र मोक्षमार्गप्रकाशक में धार्मिक अन्धविश्वास के लिए कहीं भी अवकाश नहीं है
वह मुक्ति का बुद्धि-सम्मत स्वरूप प्रस्तुत करता है

विशेष रूप से आज के भौ

धर्म का जो त्रिकालाबाधित स्वरूप प्रस्तुत करता है

कर सकती। वास्तव में मोक्षमार्गप्रकाशक धर्म की एक साकार परिभाषा एवं मुक्ति का मूर्तमान् पथ है

है

अंतःकरण से सहकृत होने के कारण इस तर्क-पाटव में लोकरंजन नहीं वरन लोक-मांगल्य की पुनीत प्रेरणायें विद्यमान है

पण्डित टोडरमल का अध्ययन बड़ा विशाल था। जै

उन्हे षट् दर्शन का भी अच्छा ज्ञान था। न्याय, व्याकरण, तर्क आदि के अतिरिक्त बड़े भारी गणितज्ञ थे। गोम्मटसार जै

प्रखर गणितज्ञता के दर्शन होते है

गोम्मटसार का अंक संदृष्टि प्रसंग जै

के गणित के सूत्रों की अपेक्षा जै

के लिये सरल तथा अल्प समय सापेक्ष है

भी पण्डित टोडरमल के छोटे से जीवन का एक बड़ा भारी कार्य है

कार्य अधूरा ही रहता। उनके अनन्त उपकारों से उपकृत आज का यह युग पण्डित टोडरमल जै

आलोक से आलोकित है

इन विशेषताओं के साथ स्वर्ण में सौ

विशेषता है

अन्तर्दृष्टि से अनुशासित, विशुद्ध पारिमार्जित जीवन में साहित्य का जो सर्जन होता है

लोक मांगल्य तथा लोककल्याण का अनुसन्धान होता है

को अपने प्रारम्भिक जीवन में यह अन्तर्दृष्टि उपलब्ध नहीं थी। अतः इसके अभाव में उन्होंने

जिस साहित्य की सृष्टि की उसे कालान्तर में प्रबुद्ध अवस्था में उन्हें स्वयं अपने ही हाथों

यमुना की तरंग में तर्पण करना पड़ा। अतः पण्डित टोडरमल के पवित्र मानस से समुद्भूत

मोक्षमार्गप्रकाशक विश्व का उत्कृष्ट लोककल्याणकारी साहित्य तथा अज्ञान-तिमिर में खोए

हुए संसारी के लिये प्रशस्त का प्रकाश स्तम्भ (सर्चलाइट) है

का माइल स्टोन है

यह पुत्र साम्प्रदायिक चक्र-व्यूह में गृहस्थाश्रम के प्रारम्भिक वर्षों में ही अपने भौ
विसर्जित कर चला गया औ

अनमोल निधि के अखण्ड स्वरूप का दर्शन नहीं कर सका। अपनी परिपूर्णता में इस ग्रन्थ
का क्या स्वरूप होता यह केवल कल्पना औ

मोक्षमार्गप्रकाशक जिस अपूर्ण स्वरूप में हमें उपलब्ध है
औ

जीवन के विकास के लिए मुक्ति की प्राथमिक भूमिका में अत्यन्त प्रयोजनभूत निश्चय
एवं व्यवहार औ

समाधान उपस्थित करता है

विवाद कोई इसी युग अर्थात् युग-विशेष की वस्तु हो अथवा वह कोई द्वेष अथवा आश्चर्य
का विषय हो यह एक भ्रम है

आत्मा जब अज्ञान दशा से करवट लेकर ज्ञान संप्राप्ति के लिये कटिवद्ध होता है
भीतर अज्ञान तथा ज्ञान का अन्तर्द्वन्द्व जन्म लेता है

निमित्त- उपादान का विवाद कहते हैं

विवाद वस्तुतः कोई दो व्यक्तियों अथवा दो दलों का विवाद नहीं है

भूमिका में वह तो सत्य औ

कोई अज्ञानी ज्ञानी का विरोध करता है

अज्ञान अनादि से ज्ञान का विरोध करता रहा है

औ

चरम सीमा पर था औ

उनकी क्या हानि हुई? भीतर तो ज्ञान अज्ञान पर विजय पा चुका था अतः भौ

भी विजयश्री उनके चरण चूम रही थी। उदय की प्रतिकूलता में भले ही उनका यश
अधिक प्रसार न पा सका हो किन्तु निश्चित ही पण्डित टोडरमल का व्यक्तित्व सागर से भी
गहरा तथा मेरू से भी महान है

साधन उन्होंने युग को दिया है

सर्वतोमुखी प्रतिभा, निष्पक्ष आलोचन, स्पष्टवादिता, अद्भुत साहस, विशद ज्ञान-कोष,
अपराजित अंतर्बल औ
के असाधारण व्यक्तित्व में एक ही साथ समन्वित है
लोग-यथा धार्मिक अन्धविश्वास से जिनकी विचार शक्ति स्तब्ध हो गई है
से आक्रांत हैं
जिनका ज्ञान शुष्क हो गया है
मोक्षमार्गप्रकाशक एक सजीव समाधान है
मिलेगी।

संस्कृत औ
सन्त औ
उस आस्था का पुनः संस्कार किया है
बुद्धि के लिए मोक्षमार्गप्रकाशक में प्रचुर खाद्य उपलब्ध होगा। मोक्षमार्गप्रकाशक के तर्क औ
उनका समाधान देखकर वह उसके प्रणेता के चरणों की धूलि में अपना माथा धूसरित करके
गर्व का अनुभव करेगा। यदि हिन्दी भाषा में ऐसा सरल एवं सतर्क ग्रन्थ हमें उपलब्ध नहीं
होता तो नयचक्र से निष्पन्न आगम की गुत्थियों को हम सुलझा पाते यह कहना कठिन है
समस्त द्वादशांग के सार औ
हिन्दी जै
है
जै पुस्तक आज मंगलमय मुक्ति देवता के स्थान पर प्रतिष्ठित हो गई है 'के निर्मल
नीर से प्रक्षालित धवल-धवल मानस से प्रेरित पण्डित टोडरमल की लेखनी से जो कुछ प्रसूत
हुआ है
मोक्षमार्गप्रकाशक के गर्भ में कितने अनमोल रत्न सिमटे पड़े हैं
ही उसका प्रणेता लोक-मांगल्य का करुण अधिष्ठाता एक महापुरुष है
'आचार्य कल्प' संज्ञा का गौ

'युगल'

मोक्षमार्गप्रकाशक : एक अध्ययन

आचार्य-कल्प पण्डितप्रवर टोडरमलजी का मोक्षमार्गप्रकाशक हिन्दी
जै

विशेषताओं से समन्वित यह ग्रन्थ वास्तव में हिन्दी साहित्य की एक अनुपम निधि है
मोक्षमार्ग के प्रकाशन जै

औ

अज्ञान-तमावृत्त अंतःचक्षुओं के घन-आवरण को ध्वस्त कर ध्रुव ज्ञानालोक का अनायास
उद्घाटन कर देने वाला मोक्षमार्गप्रकाशक निश्चय ही सत्-साहित्य का श्रृंगार है

एक सर्व महान् प्रयोजन औ

करता है

सुख का मार्ग खोल देने वाली यह अमर साहित्यिक कृति सभी दृष्टि से अतोल औ
है

का रूप धर कर सम्पूर्ण विश्व में छाये हुए अमंगल का विघटन कर लोक में निराकुल शांति
की पुनीत प्रतिष्ठा चाहता है

की जा सकती। इस अर्थ में पण्डित टोडरमल एक महान् लोकदृष्टा औ
लोक-स्रष्टा भी है

अपने शीश पर लेकर मोक्षमार्गप्रकाशक जै

से निभाया गया है

मोक्षमार्गप्रकाशक का प्रणेता एक धार्मिक विद्वान ही हो ऐसी बात नहीं है

सुलझा हुआ सुधारक भी है

का वह कट्टर शत्रु है

अंधविश्वास उसे पसंद ही नहीं है

मान्य नहीं है

भीख नहीं मांगता वरन् उसकी गहराइयों में जाकर मोती निकालता है

की यही विशेषतायें अंत में उनके बलिदान का कारण भी बनी, जो इस बात का प्रतीक है

तत्कालीन भारतीय समाज सांप्रदायिकता का हलाहल पीकर उन्मत्त हो चुका था औ

ही पण्डित टोडरमलजी जै
पर एक ऐसा कलंक है
अन्यथा नहीं।

विनाश के साथ ही संभव है

मोक्षमार्गप्रकाशक की भाषा :- पण्डित टोडरमलजी प्राकृत औ
के भी बहुत बड़े विद्वान् थे औ
व्याकरण, काव्य, छंद, अलंकार आदि का भी उनको अच्छा ज्ञान था। फिर भी मोक्षमार्गप्रकाशक
की रचना सरल हिन्दी (ढूँढारी) में करके उन्होंने लोक की एक बड़ी भारी आवश्यकता का
सम्मान किया है
मस्तिष्क का सहचार पाकर वह चमत्कृत हो उठी है
भावों के भार को संभालने की अनूठी क्षमता उत्पन्न हो गई है
सुमधुर है
देती प्रतीत होती है
की हानि-वृद्धि अथवा परिवर्तन संभव ही नहीं लगता। संस्कृत औ
भाषा-विधानों में प्रतिबद्ध तथा आधुनिक मानव के लिये अगम्य-सा अध्यात्म लोकभाषा
में उन्मुक्त होकर मोक्षमार्गप्रकाशक के बहाने सत्य के दर्शन हेतु मानों मानव मात्र का आह्वान
कर रहा है

शै मोक्षमार्गप्रकाशक की विषय प्रतिपादन शै
व्यक्तित्व इसमें उभर आया है
के प्रतिपादन के लिये पूरा शब्द कोष भी उपलब्ध नहीं हो सकता औ
जै
में इस प्रकार समन्वय हुआ है

मोक्षमार्गप्रकाशक की वाक्य रचना तथा विषय प्रतिपादन शै
पण्डित टोडरमलजी की यह एक बड़ी भारी विशेषता है
रचना के संकोच में भी कोई विषय अस्पष्ट नहीं रहा है
का विस्तार तो उसमें है
के लिए सर्वत्र ही आतुर रहा है

नवीनता भी आती गई है

है

अद्भुत है

शेष नहीं रहता ।

अध्यात्म जै

एक औ

होती ही नहीं है

कारण सदा के लिए अमर बन गई है

मोक्षमार्गप्रकाशक की शै

उसका तर्क-बाहुल्य है

पं० टोडरमलजी की प्रतिभा किसी बड़े भारी तर्क शास्त्री को चुनौ

मस्तिष्क तर्क ढूंढने में जितना निपुण है

है

चमत्कार प्रदर्शित करके किसी पर अपना बौ

नहीं हुआ है

के गूढ़ विषय को सुगम बनाकर आत्मसात् कर देने की लोक हितकारी भावना उसमें सर्वत्र ही आविर्भूत रही है

सजल-मेघ के समान बरस पडते हैं

किन्तु, उनके तर्क मानव मन की सहज संभावनाएं हैं

टोडरमलजी उदाहरणों के द्वारा करते हैं

निकलते हैं

मोक्षमार्गप्रकाशक में सर्वत्र ही विषय को हृदयंगम करने में उदाहरणों का योग बड़ा ही अनमोल रहा है

मुग्ध सा-मन इनके प्रति बरबस ही श्रद्धावनत होकर उनके प्रतिपादित तत्व आत्मसात् करने के लिए आतुर हो उठता है

मोक्षमार्ग के प्रकाशन तुल्य एक गुरुत्तर उत्तरदायित्व लेकर चलने वाली किसी मौ
से
आगम-सम्मत हो अन्यथा उसके प्रणयन से लोक के भ्रांत होने जै
संभावनाएं रहती हैं
नीति का अनुगमन किया है
लिया है
उस कथन की पुष्टि की है

भाव:- ग्रन्थ के नाम से ही जै
विज्ञापन करता है
भावाभिव्यक्ति इसी विषय का अनुशीलन करती रही है
उसके अंतरंग औ
बहिरंग साधनों की इतनी सुन्दर सांगोपांग विवेचना हुई है
टोडरमलजी ने जिस विषय को उठाया है
सम्बन्धित कोई बात उन्होने उठा नहीं रक्खी है
को देखकर तो ऐसा प्रतीत होता है
चाहिये। किसी विषय के सम्बन्ध में मन में जितनी शंकाओं का उत्थान सम्भव हो सकता है
एक एक करके अपने सुन्दर क्रम में उन सभी का अवतरण मोक्षमार्गप्रकाशक में हुआ है
औ
मेधावी पुरुष का अस्तित्व भी संभव हो सकता है
को छुआ है
स्नायु मण्डल भी शिथिल हो जाता है
के चरणों में विकीर्ण कर देता है

समग्र ही मोक्षमार्गप्रकाशक में पं० टोडरमलजी को सत्य का आग्रह रहा है
स्वीकृति में जहाँ वे सुमन से कोमल हैं
सम्पूर्ण तत्वज्ञान का आधार वीतराग विज्ञान है
साधन हो सकता है

कथन तर्क, आगम औ
के लिये कोई अवकाश नहीं है
में असत्य का परिहार स्वयमेव ही हो गया है
है

स्वाभिमान असत्य के समक्ष कभी झुकता ही नहीं है
क्योंकि इनमें सत्य कभी भी सुरक्षित नहीं रह सकता, जीवन में इनकी अपेक्षा सदा ही असत्य
की ओर अग्रसर करती है

पण्डित० टोडरमलजी एक बड़े भारी अध्यात्म-दृष्टा है
साकार हो चला था। अतः अध्यात्म के सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावों के विवेचन की उनमें महती
क्षमता परिलक्षित होती है
सहचार पाकर चमत्कृत हो उठा है

यद्यपि मोक्षमार्गप्रकाशक एक आध्यात्मिक ग्रन्थ है
समाज की अवस्था के भी अनेक संकेत बिखरे पड़े है
चुकी थी। जिसका संकेत दूसरे अधिकार में क्रोध के वर्णन में इस प्रकार उपलब्ध होता
है

अचेतन पदार्थ बुरा लागै
समाज भट्टारकीय प्रवृत्तियों से प्रभावित हो चुका था, जै
कारण विकृति तथा शै
इस प्रकार किया है
तो भया.....ऐसे तीव्र कषायी जै
अधिकार) इस काल विषै
कथन लिख्या है
जीवन में सदा ही विरोध किया है
है
करते रहे हैं

विषय:- मोक्षमार्गप्रकाशक का विषय महा मंगलमय है

है

संगति साधारण जनों को तो आश्चर्योत्पादक सी लगती है
मोक्षमार्गप्रकाशक अपने पूर्ण स्वरूप में हमें उपलब्ध नहीं है
करेंगे के द्वारा इसके महाविस्तार की यत्र-तत्र सूचना देते ही रहे हैं
तो मोक्षमार्ग के मूलाधार सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र अपने सम्पूर्ण वै
होते औ

अपूर्ण रूप में भी इतना परिपूर्ण है

उसके पास प्रचुर सामग्री है

साहित्य के कोष में

इसकी समता की अन्य कोई कृति नहीं है

महामना पण्डित टोडरमलजी के मस्तिष्क में तो मोक्षमार्गप्रकाशक के न मालूम कितने
अधिकार प्रच्छन्न थे किन्तु उसके नव अधिकार भी पूरे नहीं हो सके है
अधूरा रह गया है

के प्रथम चरण सम्यग्दर्शन का वर्णन तो नौ

अधिकांश अपूर्ण ही रह गया है

कितने अधिकार अपेक्षित होते ?

मोक्षमार्गप्रकाशक के इस अपूर्ण गर्भ में भी न मालूम कितने रहस्य भरे पड़े है

विषय के विकास-क्रम में धर्म औ

उपलब्धि के साधन, देव, गुरु औ

धर्मविरोधी तत्व, आस्तिकता-नास्तिकता, पारंपरिक कुलाचार में धर्म की संभावना, पुण्य-पाप
औ

महत्वपूर्ण विषय प्रत्यक्ष तथा परोक्ष रूप से सहज ही उसमें गर्भित हो गये है

इस ग्रंथ के नव-अधिकारों का विषयानुरूप बड़ा ही स्वाभाविक विकास हुआ है
प्रथम अधिकार में उत्तम फल अर्थात् उत्तम सुख के लिये परमइष्ट अरहंत, सिद्ध, आचार्य,
उपाध्याय तथा साधु का स्वरूप विस्तार से कहा गया है

के अभिधा-परक वाक्यों से भी बड़े महत्वपूर्ण व्यंगार्थ फलित होते है

में ही अरहंतो के स्वरूप-वर्णन की प्रथम पंक्ति है
है

वाक्यों में अभिधा का प्रयोग है

‘ध्याइये’ शब्द बड़े महत्त्व के हैं

आत्म-विकास की चरम अभिव्यक्ति उन्हीं में होती है
ध्येय नहीं है

परमेष्ठियों के नमस्कार तथा इनकी उपासना का उद्देश्य निराकुल शान्ति तथा उसके
साधन वीतरागता की उपलब्धि मात्र है

उपासना आत्महितकारिणी नहीं होती उसका विस्तृत वर्णन पण्डित टोडरमलजी ने प्रथम
अधिकार में किया है

यद्यपि मोक्षमार्गप्रकाशक में पण्डित टोडरमलजी को मोक्षमार्ग का विवेचन करना ही
इष्ट रहता है

ही नहीं है

इसीलिये इस ग्रन्थ के दूसरे, तीसरे तथा चौ

कर्मोदय से होने वाले आत्मा के विविध काषायिक परिणाम, सांसारिक प्राणियों के चतुर्गति
सम्बन्धी दुःख औ

वर्णन से अलंकृत है

मोक्षमार्गप्रकाशक के पाँचवें अधिकार ‘विविध मत समीक्षा’ में जहाँ पण्डित टोडरमल
के प्रकांड पांडित्य तथा उनके विशाल ज्ञान कोष का परिचय मिलता है

एकदम स्पष्ट हो जाता है

वृत्ति के अभाव की सत् प्रेरणा से हुआ है

छठा अधिकार सत्य-तत्त्व विरोधी असत्यायतनों के स्वरूप विस्तार में प्रतिबद्ध है
उसमें ये ही निर्देश किया गया है

अन्यथा वह पुरुष मुक्ति-पथ को खो देता है

समूचे मोक्षमार्गप्रकाशक में उसका सातवाँ तथा नवाँ अधिकार सर्वाधिक महत्व के हैं मुक्त तथा मुक्ति-पथिक पुरुष तथा इनकी तात्त्विक वाणी का दुर्लभ योग पाकर भी 'जै संज्ञक प्राणी किस प्रकार अज्ञान की उपासना करता रहता है किस प्रकार तत्त्व का विरोध करता रहता है सातवें अधिकार की विषय सामग्री है

समग्र जै
द्रव्यानुयोग के चार वर्गों में विभक्त है
उसकी वर्णन शै
विरोध तथा स्याद्वाद पद्धति में इस विरोध का अद्भुत समन्वय औ
के लिये जीवन में सत्साहित्य का महत्व' आदि विषय बड़ी रोचकता से संग्रहीत किये गये हैं

नवाँ अधिकार इस ग्रन्थ का अन्तिम स्वरूप है
तत्त्वों का सविस्तार दिग्दर्शन कर चुकने के उपरांत मोक्षमार्ग के अविभाज्य अवयव सम्यग्दर्शन,
ज्ञान, चारित्र की विस्तृत विवेचना पण्डित टोडरमलजी नवें अधिकार से ही करना चाहते थे।
किन्तु उसमें मात्र सम्यग्दर्शन का ही थोड़ा सा वर्णन हो पाया है
तथा सम्यग्ज्ञान औ

मोक्षमार्गप्रकाशक का तत्त्वज्ञान:- मोक्षमार्गप्रकाशक में जै
सम्बन्धित प्रायः सभी विषय प्रत्यक्ष अथवा परोक्षरूप में समाविष्ट हो गये हैं
मूल विषय तो मोक्षमार्ग का प्रकाशन ही है
निमित्त-उपादान, स्याद्वाद-अनेकांत, निश्चय-व्यवहार, पुण्य-पाप, दै
बड़ी तात्त्विक विवेचनार्ये उपलब्ध होती है

कर्म सिद्धान्त:- कर्म-सिद्धान्त जै
उपलब्ध नहीं है
कार्माणवर्गणा में चुम्बक औ
के साथ जो बंधन होता है
साथ रहने की अवधि में भी जड़ कर्मों में आत्मा के परिणामों के निमित्त से विविध रासायनिक
(अनुभाग सम्बन्धी) परिवर्तन होते हैं

उपलब्ध होता है
के रागद्वेष भावों से कर्म बंध औ
होने पर भी आत्मा औ
ही निष्पन्न करते है
अकर्तृत्व का रहस्योद्घाटन भी जै
को कि 'कर्म उसके संसार, विकार, अथवा सुख-दुःख को उत्पन्न करता है
उत्पत्ति में योगदान करता है
सम्बन्धी इस रहस्य का मोक्षमार्ग प्रकाशक में अनेक स्थलों पर उद्घाटन किया है

(दूसरा अधिकार) “ जीव भावको निमित्त करि पुद्गल परमाणुनिविषै
रूप शक्ति हो है
बने स्वयमेव तै

“सो ऐसे होने विषै
परिणमों अर औ
है

“बहुरि जब कर्म प्रकृतिनि का उदयकाल आवै
के अनुसारि कार्य बनै
कार्य बनै

निमित्त-उपादान:- किसी एक पदार्थ में जब कोई कार्य निष्पन्न होता है
दूसरा पदार्थ भी नियम से विद्यमान होता है
भी नहीं देता, किन्तु उस कार्य की उत्पत्ति के साथ अपनी अनुकूलता रखता है
के इस नियम को उपादान-निमित्त सम्बन्ध कहते है
उपादान, उस कार्य को उपादेय अथवा नै
है
अपने दोषों का कारण उस पदार्थ को घोषित कर बै
विद्यमान रहता है
चौ

से उत्पन्न दोष का भार निमित्त पर रखने की चेष्टा आत्मा में उत्तरोत्तर विकार तथा दुःख का संचय करती है
आत्म निरीक्षण के लिए अवकाश ही नहीं है

जै

है

वे शक्तियां पदार्थ में सदा ही निरपेक्ष भाव से परिणमित होती रहती है
किसी इतर पदार्थ से कुछ भी आदान प्रदान नहीं करना पड़ता। यदि आदान-प्रदान को सै

को अपनी जड़ता भी प्रदान कर सकेगा, किन्तु यह असंभवता कभी साकार होती ही नहीं है
अतः यह निर्विवाद है

वस्तु-स्वभाव-गत इस नियम के अनुसार निमित्त औ
स्वतंत्र मर्यादायें है

होता कि जब उपादान अपनी शक्ति से परिणमनशील होकर किसी कार्य को निष्पन्न करता है

निमित्त-उपादान की स्वतंत्र

स्थिति तथा उनका अनिवार्य सहचार ये दोनों ऐसे तथ्य है

सम्बन्धी अगणित प्रश्नों के समाधान के लिये पर्याप्त है मोक्षमार्गप्रकाशक में यथावसर
अनेक स्थानों पर निमित्त-उपादान सम्बन्धी इसी तथ्य का बल पूर्वक समर्थन किया है
(दूसरा अधिकार) जो कर्म आप कर्ता होय उद्यम करि जीव के स्वभाव को घातै
मिलावै

ही निमित्त नै

ही आत्मा स्वभाव रूप न परिणमे, विभाव रूप परिणमे।”

“कोऊ कहै

अपने भाव बिगरै

है (सातवां अधिकार)

“जातै

सो कोई द्रव्य कोई द्रव्य के आधीन है

(सातवां अधिकार)

अपने निमित्त-उपादान के प्रकारण में महापंडित बनारसीदासजी ने भी इसी तथ्य का समर्थन करते हुए अपने काव्य के मात्र दो चरणों में निमित्त-उपादान सम्बन्धी सम्पूर्ण विवाद को समाधिस्थ कर दिया है

**“उपादान निज गुण जहां तहां निमित्त पर होय,
भेद-ज्ञान परवान विधि विरला बूझे कोय।”**

निश्चय व्यवहार:- मोक्षमार्गप्रकाशक के सातवें अधिकार में पण्डित टोडरमलजी ने निश्चय-व्यवहाररूप अनेकान्त का विशद विवेचन किया है

प्रज्ञा की पै

दृष्टि से नहीं बच सकी है

बनकर कै

में अन्यत्र उपलब्ध नहीं है

अनेकान्त जै

स्वरूप अर्थात् अनन्त धर्म या अनन्त स्वभाव स्वरूप होता है

नित्य-अनित्य, एक-अनेक, सत्-असत् आदि अनन्त स्वभाव होते हैं

रक्षा करते हैं

अपने स्वरूप से प्रतिष्ठित रखता है

धर्म उसमें अन्य पदार्थ का प्रवेश निषिद्ध कर अन्य पदार्थ को उस रूप नहीं होने देता। इस प्रकार एक ही पदार्थ अस्ति स्वरूप भी है

प्रकार प्रत्येक पदार्थ अविनष्ट रहकर प्रति समय अपनी नवीन अवस्था का उत्पाद औ अवस्था का विनाश किया करता है

औ

अवस्थाएं प्रति समय होती हैं

हैं

चेतन पदार्थ अपने-अपने अस्ति स्वभाव से प्रेरित होकर सदा ही अपने स्वरूप में रहते हैं

औ

भिन्न रहते हैं

के दो किनारे । सबकी अपनी-अपनी सीमा है
सीमा में अपनी-अपनी शक्ति से अपने नियत कार्यों का सम्पादन करते ही रहते हैं
दूसरे की अपेक्षा ही नहीं है
पारस्परिक सहयोग औ

पदार्थ का कार्य पदार्थ में हो औ
अपराध अथवा सुकृत कोई करे औ
नहीं है
में ही निष्पन्न करता है
अन्य का कर्ता, कर्म, कारण, सहयोगी तथा प्रभावक होता ही नहीं है
के बिना उसका पारस्परिक कर्तृत्व, कर्मत्व, करणत्व अथवा अन्य भी कोई सम्बन्ध बनता ही
नहीं है
अनन्त द्रव्यात्मक लोक आज हमारे समक्ष एक महापिण्ड के रूप में विद्यमान होता । किन्तु
यह एकत्व की बात नितांत असत्य है
प्रतीति औ

यह विश्व व्यवस्था है
अगणित क्रिया कलापों का एक छत्र सम्राट है
करने वाली पद्धति को निश्चयनय कहते हैं
स्वतंत्र होते हुए भी उसका एक बहिरंग पक्ष भी है
लोक के अन्य पदार्थों के साथ रहता है
वियोग भी होता है
एक नियम अथवा सिद्धान्त का रूप धारण कर लेता है
वियोग अथवा संयोग-वियोग में होने वाले उनके परिणाम उस नियम से ही अनुशासित होते
हैं
परिणामों में लोक में कर्ता-कर्म अथवा कारण कार्य भाव का व्यपदेश भी होने लगता है
यह त्रिकालाबाधित नियम है
होते हैं

क्षीर-नीर की भाँति बंध को प्राप्त हो जाती है
आश्रय से निर्विकार परिणमन करता है
जाता है
जाता है
है

अथवा करण कभी भी नहीं होते किन्तु एक सुनिश्चित नियम के अंतर्गत उनका संयोग वियोग होने के कारण उनमें प्रयोजन अथवा निमित्तवश पारस्परिक कर्ता, कर्म, करण आदि का व्यपदेश एकदम अनुचित अथवा निराधार नहीं है
वाली पद्धति को व्यवहारनय कहते हैं
टोडरमलजी ने अपने मोक्षमार्गप्रकाशक के सप्तम अधिकार में बड़ा सुन्दर स्पष्टीकरण किया है
तो, 'सत्यार्थ ऐसे ही है
ताकौ
नाम ही दोऊ नयनि का ग्रहण है
भी है

निश्चय औ

प्रकाश में यदि हम देखें तो लोक के अनन्त पदार्थों में घटने वाले अनन्त प्रकार के सम्बन्धों से हमारे भीतर उत्पन्न अनन्त भ्रम तुरन्त निरस्त हो जाता है
परिस्थिति औ
कै
संतुलन हो जाता है
वाले पारस्परिक विरोध में इस प्रकार सामंजस्य स्थापित हो जाता है
कभी उदय नहीं होता। जीवन में अनेकान्त की यही सर्वोपरि उपयोगिता है
बुद्धि को निर्मल बनाता है
स्वीकार में अपनी भूल से अपने भीतर उत्पन्न दोषों का निरन्तर कर्मादिक पर आरोप करते रहने औ

रहती है

अपनी भूल अपने को विदित हो जाने पर फिर भूल औ
अस्तित्व ही संभव नहीं होता ।

लोक में आत्मा के सम्बन्ध से शरीर को जीव, शरीर के सम्बन्ध से आत्मा को मूर्तिक,
इन्द्रियों की पौ
की व्यवस्था करता है
है
औ

इस रहस्य को हृदयंगम कर लेने पर लोक के अनन्त पदार्थों से आत्मा के हानि-लाभ
की समस्त संभावनायें समाप्त हो जाती है
से उतार कर फै
स्वाधीनता का उन्मुक्त पवन नवजीवन देता है
है
है
होकर उसका समर्थन करते है
व्यवहारनय की उपचारित शै
बन्धभाव की कोटि में ही रखता है
मोक्षमार्ग की कक्षा में प्रतिष्ठित रहता है

निश्चय व्यवहार मोक्षमार्ग के सम्बन्ध में देव, गुरु औ
आर्हत् मतानुसारी पुरुषों में भी जो अगणित भ्रान्तियाँ पड़ी रहती हैं
पण्डित टोडरमलजी ने सप्तम अधिकार में किया है
मोक्षमार्ग मानते है
नाहीं, मोक्षमार्ग का निरूपण दोय प्रकार है
निश्चय मोक्षमार्ग है
है
सर्वत्र ऐसा ही लक्षण है

निरूपण अपेक्षा दोग मोक्षमार्ग जानना । एक निश्चय मोक्षमार्ग है
ऐसे दोग मोक्षमार्ग मानना मिथ्या है

इस प्रकार निश्चय-व्यवहार के सम्बन्ध में अज्ञान से अनुशासित होकर आत्मा जितनी
प्रकार से भूल करता है
ने जो तर्क, आगम औ

पुण्य-पाप:- पुण्य औ
ने इनकी भी अपने साहित्य में विस्तृत मीमांसा की है

देवपूजा, गुरुपासना, दान, अनुकंपा आदि प्रशस्त परिणाम पुण्य है
स्वर्गादि होते है
पाप है

अधिकांश भारतीय दर्शन पाप को आत्मा के लिये अहितकर औ
लिये हितकर प्रतिपादित करते है
करता है

ही आत्मा अपनी स्वरूप स्थिति में न रह कर पराधीन रहता है
वृत्तियाँ हैं

अनुकंपा आदि पुण्य परिणाम भी किसी प्राणी के आश्रय से ही उत्पन्न होते है
यह कि इन दोनों भावों की प्रवृत्ति के लिये आत्मेतर किसी अन्य पदार्थ का आश्रय अनिवार्य
है

स्वाभाविक समरसीभाव नहीं कहे जा सकते । फलतः वे निर्वाण के बाधक ही होते है

पुण्य औ
अहित करने की भावना तो करे किन्तु उसकी भावना से किसी का अहित होना अनिवार्य नहीं
है

की रक्षा होना अनिवार्य नहीं है

अनुभव होने से इन भावों में आत्मा की विकलता अवश्यंभावी है
के ज्ञान-आनंद स्वरूप स्वभाव के समक्ष इन भावों की अत्यंत निरर्थकता घोषित करते हुए
आत्मा के हित में इनकी उपादेयता का भी निषेध करते है

मोक्षमार्गप्रकाशक के सातवें अधिकार में पण्डित टोडरमलजी ने इसका अत्यंत स्पष्ट प्रतिपादन किया है

बंध औ

को भी कारण होय ऐसा मानना भ्रम है

.....बहुरि निचली दशा विषै

पाइये । तातै

मोक्ष का घातक ही है

बहुरि शुद्धोपयोग को ही उपादेय मानि ताका उपाय करना । शुभोपयोग-अशुभोपयोग को हेय जानि तिनके त्याग का उपाय करना ।”

..“बहुरि कोई ऐसे माने कि शुभोपयोग है

छूटि शुभोपयोग हो है

शुभोपयोग का कारण अशुभोपयोग ठहरै

दै

जै

व्याख्या प्रस्तुत करता है

व्यक्ति लौ

लौ

जो जितना श्रम करे उसे उतना ही अधिक मिलना ही चाहिये । किन्तु वस्तु स्थिति बहुलता से इसके विपरीत देखी जाती है

धन, भाग्य, स्त्री, पुत्रादि सभी वस्तुएं दै

रागद्वेष का विपरीत पुरुषार्थ मात्र कर सकता है

कोई अधिकार नहीं है

को कहते है

अनुकूल होती हैं

वर्तमान पुरुषार्थ होता है

पाप कर्म का संचय होता है

होता है

जड़ कर्मों के निमित्त से समस्त लौ
आत्मा के स्वाधीन शाश्वत आनन्द की प्राप्ति न तो पाप-पुण्य के पुरुषार्थ से होती है
उनके द्वारा संचित कर्मों से। किन्तु उसकी उपलब्धि तो एक मात्र ज्ञानानन्द निकेतन
आत्म-स्वरूप के प्रति सचेष्ट सम्यक् पुरुषार्थ से ही होती है
तथा उनके निमित्त से संचित मोहादि तथा वेदनीयादि कर्म तथा इन कर्मों के फल में प्राप्त बाह्य
सन्निधि यह सब दै
की रचना करता है
की रचना तो पुण्य-पाप से विलक्षण आत्मा का सम्यक् पुरुषार्थ ही करता है
के फल में जिसे समानरूप से पराधीनता तथा आकुलता का अनुभव होता है
प्राणी ही अपने जागृत अन्तर से यह निर्णय करता है
परिकर पराया है
के प्रतिबन्धों को अस्वीकार करता हुआ आत्म-पुरुषार्थ जागृत होकर चिर अवरूद्ध मुक्ति के
द्वार का उद्घाटन करता है
हुए प्राणी को मुक्ति का अवकाश ही नहीं है

पण्डितप्रवर टोडरमलजी ने मोक्षमार्गप्रकाशक के नवें अधिकार में इस विषय का
सतर्क ऊहापोह किया है
अभाव स्वीकार करते है
उपयोग न लगावै
तब स्वयमेव ही मोह का अभाव भये सम्यक्त्वादि रूप मोक्ष के उपाय का पुरुषार्थ बने है
मुख्यपनै
है
दोष नहीं तेरा ही दोष है
सो जिन आज्ञा मानै

अन्त में इतने विवेचन के उपरांत यह तो स्पष्ट हो जाता है
पं० टोडरमलजी के अगणित गुण रत्नों का अनमोल निधान है
मालूम कितने मुक्ता बिखरे पड़े है

आज के बुद्धिवादी मानव के लिये मोक्षमार्गप्रकाशक निश्चित ही एक भव्य प्रकाशस्तम्भ के समान दिशा निर्दिष्ट कर रहा है

से सत्य की शोध करने के लिये वह हमारे अन्तर्चक्षुओं को दिव्य आलोक देता है

मोक्षमार्गप्रकाशक में प्रतिपादित तत्त्व किसी व्यक्ति अथवा वर्ग विशेष से सम्बद्ध नहीं है

ही जगत के लिये उद्घाटन करने के महान उदात्त आशयवाला है

परिणामस्वरूप मोक्षमार्गप्रकाशक का उदय भी हुआ है

व्यक्ति अथवा वर्ग विशेष का उत्तराधिकार न होकर मानव मात्र के मनमन्दिर में उपास्यदेव के रूप से प्रतिष्ठित होने योग्य है

निश्चित ही मोक्षमार्गप्रकाशक की भाषा, उसका भाव गांभीर्य उसकी अनूठी रचना शै

को चरितार्थ कर दिया है

अपने प्राणों के मूल्य पर मोक्षमार्गप्रकाशक जै

टोडरमलजी ने समग्र विश्व औ

लगाकर भले ही विश्व उसका मूल्यांकन न कर पावे किन्तु इससे इस रत्नाकर की गरिमा कम नहीं होती। वरन् उसे न पहिचान कर विश्व मुक्ति के सर्वोच्च वरदान से वंचित ही रहा है

काश ! हम उनके जीवन में पं० टोडरमलजी को पहिचान पाते तो मोक्षमार्गप्रकाशक आज अपने सम्पूर्ण स्वरूप में हमें उपलब्ध होता। फिर भी यदि हम उपलब्ध मोक्षमार्गप्रकाशक के प्रकाश में अपनी चिर-विस्मृत स्वरूप निधि का अनुसंधान कर सके तो यही हमारे जीवन की सर्व महान उपलब्धि होगी औ

के प्रति हमारा सबसे बड़ा सम्मान होगा।

अन्त में मैं

करता हूँ।

बाबू जुगलकिशोर जैन 'युगल'

कोटा (राज.)

विषय-सूची

आठवाँ अधिकार (उपदेश का स्वरूप)

अनुयोगो का प्रयोजन

प्रथमानुयोग का प्रयोजन-4

करणानुयोग का प्रयोजन-7

चरणानुयोग का प्रयोजन-10

द्रव्यानुयोग का प्रयोजन-15

अनुयोगों के व्याख्यान का विधान

प्रथमानुयोग के व्याख्यान का विधान-17

करणानुयोग के व्याख्यान का विधान-29

चरणानुयोग के व्याख्यान का विधान-44

द्रव्यानुयोग के व्याख्यान का विधान-76

अनुयोगों की व्याख्यान पद्धति-98

व्याकरण-न्यायादि शास्त्रों का प्रयोजन-102

अनुयोगों में दोष-कल्पनाओं का निराकरण

प्रथमानुयोग में दोष कल्पना का निराकरण-105

करणानुयोग में दोष कल्पना का निराकरण-109

चरणानुयोग में दोष कल्पना का निराकरण-114

द्रव्यानुयोग में दोष कल्पना का निराकरण-119

व्याकरण-न्यायादि शास्त्रों की उपयोगिता-129

अनुयोगों में दिखाई देने वाले परस्पर विरोध का निराकरण-130

अनुयोगों का अभ्यास क्रम-170

परिशिष्ट (1) - 172

परिशिष्ट (2) - 174

नौ

(मोक्षमार्ग का स्वरूप)

आत्मा का हित मोक्ष ही है

पुरुषार्थ से ही मोक्ष प्राप्ति - 194

मोक्षमार्ग का स्वरूप - 219

सम्यग्दर्शन का सच्चा लक्षण - 229

तत्त्वार्थ सात ही क्यों? - 237

तत्त्वार्थश्रद्धान लक्षण में अव्याप्ति, अतिव्याप्ति औ

सम्यक्त्व के विभिन्न लक्षणों का समन्वय - 268

सम्यक्त्व के भेद औ

सम्यग्दर्शन के आठ अंग - 354

सम्यग्दर्शन के पच्चीस दोष - 358



नमः सिद्धेश्वर्यः

मोक्षमार्गप्रकाशक प्रवचन

भाग - 4

आठवाँ अधिकार उपदेश का स्वरूप

....अब मिथ्यादृष्टि जीवों को मोक्षमार्ग का उपदेश देकर उनका उपकार करना यही उत्तम उपकार है
इस शास्त्र में भी उन्हीं के उपदेशानुसार उपदेश देते हैं

वहाँ उपदेश का स्वरूप जानने के अर्थ कुछ व्याख्यान करते हैं
को यथावत् न पहिचाने तो अन्यथा मानकर विपरीत प्रवर्तन करे। इसलिये उपदेश का स्वरूप कहते हैं

जिनमत में उपदेश चार अनुयोग के द्वारा दिया है
चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग - यह चार अनुयोग हैं

वहाँ तीर्थकर-चक्रवर्ती आदि महान पुरुषों के चरित्र का जिसमें निरूपण किया हो वह प्रथमानुयोग है
त्रिलोकादिक का जिसमें निरूपण हो वह करणानुयोग है
का आचरण करने का जिसमें निरूपण हो वह चरणानुयोग है
सप्ततत्त्वादिक का व स्व-पर भेद विज्ञानादिक का जिसमें निरूपण हो वह द्रव्यानुयोग है

मोक्षमार्गप्रकाशक के इस अधिकार में शास्त्र के उपदेश की पद्धति कै
 हैं
 उपकार है
 शुभराग आता है
 था कि जीव वीतरागी मोक्षमार्ग को प्राप्त करें। गणधरदेव को भी ऐसा विकल्प आता है
 उपदेश तो उपदेश के कारण से निकलता है
 समझता है
 पर उपकार किया;’ परन्तु वास्तव में पर को बंध-मोक्ष कराने का जीव का अध्यवसाय पर
 के लिये तो अकिंचित्कर है
 अन्य जीव स्वयं के वीतरागभाव से ही मुक्ति प्राप्त करता है
 है

जब कार्य होता है
 (तत्त्वार्थसूत्र की पण्डित सदासुखदासजी कृत टीका में) सूत्र, 19-20-21 में प्रयुक्त उपकार
 शब्द का अर्थ किया है
 का निमित्त होय तिसको उपकारी कहिये है

आत्मा को शरीर, मन आदि का उपकार है
 ऐसा (शास्त्र में) कथन है
 पुद्गल को निमित्त कहा जाता है
 शरीर, मन, वाणी श्वास तो जड़ है
 उपकार हो सकता है
 उपकार कहा है
 अब वह गुप्तरिति से अफीम खाकर मृत्यु को प्राप्त होती है
 है
 में लाभ करता है

वस्तुतः गुरु ने शिष्य का उपकार नहीं किया है
है

अहो ! गुरु ने महान उपकार किया, गुरु ने मोक्षमार्ग प्रदान करके मुझे अनंतभव से उबारा
है

वाले जीव के धर्म प्राप्ति कराने का विकल्प था औ
वहाँ ऐसा कहा जाता है

वाणी जड़ है
भाषा नहीं है
नहीं होता । देखो ! निमित्तरूप उपकार करने में भी वीतरागी मोक्षमार्ग की बात ली है
मोक्षमार्ग का उपदेश देना ही परम उपकार है
होने से उपदेश में परजीव के समझने पर उसका वजन नहीं है
सत् है
सिद्ध उसके अपने से है
स्वयं ने जै
ऐसा प्रभावना का भाव धर्मी को आये बिना नहीं रहता; परन्तु उसे अन्तर में भान है
पदार्थ सत् है
का उत्पाद, नासमझ का व्यय तथा द्रव्यरूप से ध्रुवता तथा उपदेश में परमाणु (वाणी-भाषावर्गणा)
के उत्पाद-व्यय-ध्रौ
सिद्ध है

नवतत्त्वों का ऐसा यथार्थ ज्ञान होना चाहिये । शास्त्र में अनेक प्रकार के कथन आते हैं
परन्तु उनकी कथनपद्धति का आशय क्या है
को मोक्षमार्ग बतलाने का ही है
गणधरदेव आदि भी ऐसा ही आशय विचारकर शास्त्र में मोक्षमार्ग का उपदेश करते हैं
इस शास्त्र में भी उनके ही उपदेशानुसार कथन किया गया है

वहाँ प्रथम उपदेश का स्वरूप जानना चाहिये । यहाँ उपदेश को जानने के लिये उसका
वर्णन करते हैं

अन्यथा विपरीत मानकर प्रवर्तने से उपदेश का प्रयोजन समझ में नहीं आ सकता औ हो सकता है
 कहीं एक तीर्थकर के काल में अनंत जीव मोक्ष प्राप्त नहीं कर लेते है
 का कथन है

जै

तात्पर्य तो जीव को मोक्षमार्ग बतलाने का है

* प्रथमानुयोग में तीर्थकर, गणधर, चक्रवर्ती, वासुदेव, बलदेव, आदि महापुरुषों के चरित्र का कथन करके उसमें भी जीवों को मोक्षमार्ग बतलाने का ही आशय है

* चरणानुयोग में गृहस्थों तथा मुनियों के धर्माचरण का कथन है

* करणानुयोग में गुणस्थान-मार्गणास्थान आदिरूप जीव का, कर्मों का तथा त्रिलोकादि का निरूपण है
 कहे है

* द्रव्यानुयोग में जीवादि छह द्रव्यों का, सात तत्त्वों का तथा स्व-पर भेदज्ञानादि का वर्णन है

गुणस्थान में भी निर्विकल्प अनुभवदशा होती है
 उपदेश है

आगे चारों अनुयोगों के अभ्यास की मुख्यता बतलायेंगे।

अब चारों अनुयोगों का क्या-क्या प्रयोजन है
 अनुयोगों का प्रयोजन मोक्षमार्ग का ही उपदेश करने का है
 पहिचान कराते हैं

अनुयोगों का प्रयोजन

अब इनका प्रयोजन कहते है

प्रथमानुयोग का प्रयोजन

प्रथमानुयोग में तो संसार की विचित्रता, पुण्य-पाप का फल, महन्त पुरुषों की

प्रवृत्ति इत्यादि निरूपण से जीवों को धर्म में लगाया है

भी उससे धर्म सन्मुख होते हैं

लौ

लौ

लोक में तो राजादिक की कथाओं में पाप का पोषण होता है

राजादिक की कथाएँ तो हैं

का प्रगट करते हैं

औ

इसप्रकार तुच्छबुद्धियों को समझाने के लिये यह अनुयोग है
'अव्युत्पन्न मिथ्यादृष्टि', उनके अर्थ जो अनुयोग से प्रथमानुयोग है
गोम्मटसार की टीका में किया है

प्रथमानुयोग अर्थात् आदि-पुराण आदि में तो संतो ने अनेक प्रकार से पुण्य-पाप का
निरूपण किया है

- * संसार की विचित्रता।
- * पुण्य-पाप का फल तथा
- * महंत पुरुषों की प्रवृत्ति

-इत्यादि निरूपण से जीवों को धर्म में लगाया है

कै

का निरूपण है

धर्म में लगाया है

महापुरुषों का जीवन-चरित्र कै

औ

पात्रजीव धर्म सन्मुख हो जाता है

-इस कारण महापुरुषों के जीवन आदि द्वारा उन्हें उपदेश दिया है

हुआ- इस प्रकार जीवों के पूर्वभवों का तथा पुण्य-पाप आदि का फल बतलाकर जीव की

नित्यता आदि की पहिचान कराई है
 वार्ता द्वारा उपदेश देने से उनका उपयोग वहाँ लगता है
 लगता। मुख्यतः ऐसे जीवों के लिये प्रथमानुयोग में उपदेश है
 बनाने, भगवान की पूजा-भक्ति करने, तीर्थयात्रा करने इत्यादि का उपदेश देकर जीवों को
 पाप से छुड़ाकर पुण्य में लगाया है
 ने ऐसा पुण्य किया इसलिये स्वर्ग गया औ
 ऐसा पुण्य करने से ऐसा फल प्राप्त किया औ
 प्रकार बताकर जीवों को पाप से छुड़ाया है

प्रथम अर्थात् 'अव्युत्पन्न मिथ्यादृष्टि' जो धर्म को प्राप्त नहीं हुआ है
 जीव के लिये जो अनुयोग (कथन) है
 मिथ्यादृष्टि जीवों को समझाने के लिये स्थूल कथन होता है

देखो! मोक्षमार्ग का मुख्य उपदेश तो द्रव्यानुयोग में ही है
 अभ्यास रखना। चार अनुयोगों में पहले इसका अभ्यास करना औ
 करना ऐसा कोई नियम नहीं है
 लाभ हो वै

....तथा जिन जीवों के तत्त्वज्ञान हुआ हो, पश्चात् इस प्रथमानुयोग को पढ़ें-सुनें
 तो उन्हें यह उसके उदाहरणरूप भासित होता है
 शरीरादिक संयोगी पदार्थ है
 निरूपित किये है
 जानता था, व उसके फल को जानता था। पुराणों में उन उपयोगों की प्रवृत्ति औ
 उनका फल जीव के हुआ सो निरूपण किया है
 इसीप्रकार अन्य जानना।

यहाँ उदाहरण का अर्थ यह है
 जीव के अवस्था हुई -इसलिये यह उस जानने की साक्षी हुई।

तथा जै

हो ऐसी किन्हीं पुराण पुरुषों की कथा सुनने से सुभटपने में अति उत्साहवान होता है उसीप्रकार धर्मात्मा है

ऐसे किन्हीं पुराण-पुरुषों की कथा सुनने से धर्म में अति उत्साहवान होता है

इसप्रकार यह प्रथमानुयोग का प्रयोजन जानना।....

तथा सम्यग्दृष्टि जीवों को प्रथमानुयोग का अभ्यास उदाहरणरूप भासित होता है धर्मीजीव को शुभ-अशुभ तथा शुद्धोपयोग के फल का ज्ञान है

में (प्रथमानुयोग में) जीवों का वर्णन है

जीवों के पुरुषार्थ की बात सुनने से स्वयं भी मोक्षमार्ग में विशेष उत्साहवान होता है प्रथमानुयोग में भी गौ

जाते हैं

को जो निर्णय था उसका उदाहरण पुराण में मिलने से अपने को साक्षी मिली औ

के जीवन प्रसंग जानने से अपने को भी वै

बात सुनने पर जै

के पुरुषार्थ की बात सुनते ही धर्मीजीव को स्वयं को भी मोक्षमार्ग का शूरपना चढ़ता है का उत्साह बढ़ता है

करणानुयोग का प्रयोजन

....तथा करणानुयोग में जीवों के व कर्मों के विशेष तथा त्रिलोकादिक की रचना निरूपित करके जीवों को धर्म में लगाया है

चाहते है

किस किसके कै

के ठिकाने पहिचान कर पाप से विमुख होकर धर्म में लगते है

उपयोग रम जाये तब पाप-प्रवृत्ति छूटकर स्वयमेव तत्काल धर्म उत्पन्न होता है

अभ्यास से तत्त्वज्ञान की भी प्राप्ति शीघ्र होती है

में ही है

अब करणानुयोग का प्रयोजन क्या है
 वर्णन होता है
 जीवों की औ
 धर्म में लगाया है
 भेद तथा कर्मों के कारण, अवस्था, फल किस-किसको किस-किसप्रकार के होते हैं
 भेद तथा तीनलोक में नरक-स्वर्गादिक के स्थानों की पहिचान करके पाप से विमुख होकर
 धर्म में लगता है
 तत्काल धर्म उत्पन्न होता है
 जगह मार्गणास्थानों को जीव के ही विशेष कहा गया है
 निर्णीत होता है
 शोधने का नाम मार्गणा है
 ज्ञान करना मोक्षमार्ग है

ज्ञान का चोर हो - ज्ञान का द्वेष करे - इसके कारण तीव्र ज्ञानावरणादि कर्म बंधते हैं
 प्रकार किस कारण से कौ

देखो ! करणानुयोग आदि के अभ्यास में शुभराग सहज हो जाता है
 तो सम्यक् श्रद्धा का है

करणानुयोग का विचार करने से सर्वज्ञ की प्रतीति हो जाती है
 अतिरिक्त अन्य ऐसा सूक्ष्म कथन नहीं कर सकते ।

....तथा जो जीव तत्त्वज्ञानी होकर इस करणानुयोग का अभ्यास करते हैं
 यह उसके विशेषणरूप भासित होता है
 उन्हीं के विशेष करणानुयोग में किये हैं
 निश्चयरूप है
 भावादिक के स्वरूप प्रमाणादिरूप है
 - इत्यादि अनेक प्रकार के विशेषण निरूपित किये हैं
 उस करणानुयोग का अभ्यास करता है

इस अभ्यास से तत्त्वज्ञान निर्मल होता है

यह रत्न है

है

विशेष जाने तो निर्मल तत्त्वज्ञान होता है

धर्मात्मा होता है

तथा अन्य ठिकाने उपयोग को लगाये तो रागादिक की वृद्धि होती है
छद्मस्थ का उपयोग निरन्तर एकाग्र नहीं रहता; इसलिये ज्ञानी इस करणानुयोग के
अभ्यास में उपयोग को लगाता है

जानपना इसके होता है

नहीं है

इसप्रकार यह करणानुयोग का प्रयोजन जानना।

‘करण’ अर्थात् गणित कार्य के कारणरूप सूत्र, उनका जिसमें ‘अनुयोग’- अधिकार
हो वह करणानुयोग है

तत्त्वज्ञान से जो जीवादि तत्व जाने हो उनके ही विशेष प्रकारों का निरूपण करणानुयोग
में है

का भी है

देखा उतना वाणी में पूरा नहीं आता, यह तो सत्य है

कोई कथन द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव के प्रमाण का (माप का) है

के आश्रय से कथन करके ऐसा कहते हैं

इसप्रकार अनेक प्रकार के कथन हैं

ज्ञान रुके वहाँ अन्दर में ज्ञानावरणी कर्म निमित्त है

नोकर्म निमित्त है

है

हीरे के अनेक प्रकारों को जाननेवाला हीरे की विशेष परीक्षा कर सकता है

जीव-अजीव आदि तत्वों को बहुत प्रकार से जानता है

है

प्रश्न:- बाहर में तो चमत्कार बतलाते हैं

उत्तर:- हाँ, आत्मा स्वयं ऐसा चै

एकाग्रता होने पर केवलज्ञान प्रगट हो जाता है

सिवाय अन्यत्र कहीं ऐसा चमत्कार हो तो बताओ ? तथा प्रत्येक आत्मा असंख्यात प्रदेशी है यह बात भी अन्य कहीं हो तो बताओ ?

प्रत्येक आत्मा स्वतन्त्र, प्रत्येक आत्मा में अनंत गुण, प्रत्येक गुण की अनंत पर्यायें औ एक समय की ज्ञानपर्याय में तीनकाल-तीनलोक को जानने की सामर्थ्य- ऐसा चै चमत्कार है

कर्तृत्व-स्वच्छत्व-प्रभुत्व-विभुत्व आदि अनंत शक्तियाँ है उत्कृष्ट में उत्कृष्ट (सर्वोत्कृष्ट) है वे ऐसा चै

भगवान ने केवलज्ञान से जो पदार्थ देखे है करणानुयोग के अभ्यास से सूक्ष्म तत्वों का ज्ञान होता है घटता है

वे अपना उपयोग करणानुयोग आदि के अभ्यास में लगाते है उसको समकिति परोक्षज्ञान की प्रतीति में लेता है

केवली के ज्ञान में औ कोई विपरीतता नहीं है

गणित कार्य के कारणरूप जो सूत्र है षट्खण्डागम आदि में उनका बहुत वर्णन है

चरणानुयोग का प्रयोजन

....अब चरणानुयोग का प्रयोजन कहते है साधन निरूपित करके जीवों को धर्म में लगाते है

जानते, हिंसादिक पाप कार्यों में तत्पर हो रहते हैं
छोड़कर धर्मकार्यों में लगे, उसप्रकार उपदेश दिया है
करने को सन्मुख हुए, वे जीव गृहस्थधर्म व मुनिधर्म का विधान सुनकर आप से
जै

ऐसे साधन से कषाय मन्द होती है
में दुःख नहीं पाते, किन्तु सुगति में सुख प्राप्त करते हैं
निमित्त बना रहता है

पंचम गुणस्थानवर्ती श्रावक के औ
आचरण का विधान जिस अनुयोग में हो उसको चरणानुयोग कहते हैं
नानाप्रकार के धर्म साधन का निरूपण करके जीवों को धर्म में अर्थात् शुभराग में लगाया जाता है

पहले द्रव्यानुयोग के अनुसार तत्त्वज्ञान हो औ
अनुसार व्रतादि आचरण होता है

जो जीव हित-अहित को नहीं जानता औ
वह जै
है

विधान सुनकर अपने से जै

सामान्य जनता पाप से छुटकर पुण्य में लगे ऐसे प्रयोजन से भी उसको यहाँ उपदेश दिया
जाता है

हो जाता। द्रव्यलिंग धारी जीव महा कठोर आचरण व उत्कृष्ट शुभलेश्या से नौ
गया; परन्तु वह भी धर्म का कारण नहीं हुआ। इसलिये चरणानुयोग का प्रयोजन औ
यथार्थरूप से समझना चाहिये।

चरणानुयोग में समागत देव पूजादि षट्कर्म समकिति की बात है
के बाद के शुभराग का कथन है
नय के विषयभूत नाम, स्थापनादि निक्षेपों का यथार्थ ज्ञान होता है
उसको अरिहन्त देव के स्थापना निक्षेप औ

उन षट्कर्मादि को करे; परन्तु तत्त्वदृष्टि रहित होने से उसको इनसे पुण्यबंध होता है धर्म नहीं होता ।

द्रव्यलिंगी मुनिव्रत पालन करता है
 में सूक्ष्म व्यवहार का पक्ष - शुभराग से मोक्षमार्ग में कुछ तो लाभ है
 इसकारण उसका मिथ्यात्व नहीं जाता । उसको ऐसा पक्ष रह जाता है
 शुभरागरूप साधन कुछ तो मददरूप है
 दर्शन-ज्ञान-चारित्र-मोक्ष का साधन है
 त्याग करता है
 ऐसा पूछे तो कहते हैं
 होता है
 उपदेश देते हैं
 होगा, इसलिये उनकी मान्यता छोड़ औ
 पुण्य होगा । हाँ, वहाँ धर्म मान बै
 से ही होता है

यहाँ चरणानुयोग के प्रयोजन की बात चल रही है
 का निरूपण हो उसको चरणानुयोग कहते हैं
 करके जीवों को व्यवहार धर्म में लगाते हैं
 वाणी में किस प्रकार का उपदेश आता है
 नहीं है
 अधिकार नहीं है
 में तत्पर है
 वह धर्म नहीं है

सम्यग्ज्ञानी कै
 कहते हैं
 जै
 सच्चेदेव-शास्त्र-गुरु मिले है

चरणानुयोग अनुसार आचरण करे तो उसके फल में भविष्य में सच्चे देव-शास्त्र-गुरु मिलते जाते हैं

तत्त्वज्ञान नहीं होता। अनंतबार निमित्त मिलने पर भी सम्यग्दर्शन नहीं हुआ। वर्तमान संयोग से तो नहीं, पर वर्तमान ज्ञान का उघाड़ भी सम्यग्दर्शन का कारण नहीं है

अंग, नौ

वै

यहाँ कहते हैं

निमित्त मिला रहता है

कहा जाता है

हिंसा, झूठ, चोरी आदि के भाव छोड़कर अहिंसादि के परिणाम करना पुण्यभाव है हिताहित का विचार नहीं करता ऐसे स्थूल दृष्टिवाले जीव को पुण्य परिणाम करने का भी उपदेश देते हैं

है

इसप्रकार अज्ञानी की बात हो गई, अब ज्ञानी की बात करते हैं

....तथा जो जीव तत्त्वज्ञानी होकर चरणानुयोग का अभ्यास करते हैं सर्व आचरण अपने वीतरागभाव के अनुसार भासित होता है वीतरागता होने पर ऐसी श्रावकदशा मुनिदशा होती है पाया जाता है

वीतरागभाव हुआ हो वै

वीतरागता होती है

जानते हैं

ऐसा चरणानुयोग का प्रयोजन है

जो जीव तत्त्वज्ञानी होकर चरणानुयोग का अभ्यास करता है वीतरागभाव के अनुसार भासित होते हैं करता है

है

शेष रहती है

पंचम गुणस्थान में एकदेश वीतरागता है
का चिह्न वीतरागता है
में वीतरागता नै
श्रावक समझता है
पूजादि का विकल्प निमित्त है

मुनिराज शूरवीर होते हैं
की दिव्यध्वनि में आया मार्ग (मुनि का स्वरूप आदि) सनातन मार्ग है
चरणानुयोग में कथित विधि यथार्थ है
पूजा आदि विधान निमित्त है
राग आता है
प्रतिमा की पूजा करना चाहिये, गुरु आदि को दान देना चाहिये- इसप्रकार विधि बताते हैं
(श्रावकादि को) धर्मी जीव के प्रति शुभराग आता है
धर्मात्मा जीव के कारण नहीं, अपितु स्वयं के कारण आया है

वह श्रावक औ
(धर्म को) साधता है
योग्यतानुसार प्रतिज्ञा अंगीकार करता है
पदवी के योग्य भाव करता है

श्री नियमसार परमभक्ति अधिकार के फुटनोट में कहा है
हठ रहित सहजदशा के है
आता है

सम्यग्दृष्टि जीव अपने परिणाम देखकर स्थिरता करता है
राग रहित दशा को कार्यकारी जानता है
जानता । दया, दानादि का राग धर्म नहीं है

राग कराने का नहीं है
मानना ही प्रयोजन है

द्रव्यानुयोग का प्रयोजन

....अब द्रव्यानुयोग का प्रयोजन कहते हैं
निरूपण करके जीवों को धर्म में लगाते हैं
को नहीं पहिचानते, आपको-पर को भिन्न नहीं जानते; उन्हें हेतु-दृष्टान्त-युक्ति द्वारा
प्रमाण-नयादि द्वारा उनका स्वरूप इसप्रकार दिखाया है
जाये। उसके अभ्यास से अनादि अज्ञानता दूर होती है
झूठ भासित हो तब जिनमत की प्रतीति हो औ
अभ्यास रखें, तो शीघ्र ही तत्त्वज्ञान की प्राप्ति हो जाये।....

समयसार, प्रवचनसार आदि द्रव्यानुयोग के शास्त्र हैं
भिन्न-भिन्न कहा है
की भिन्नता के
प्रमाण-नयादि द्वारा उनका स्वरूप समझाते हैं
ज्ञायकस्वरूप है
देते हैं

इसके अभ्यास से अज्ञान दूर होता है
मिथ्या भासित होते हैं
तत्त्वार्थसूत्र आदि द्रव्यानुयोग के शास्त्र हैं
इनका अभ्यास करने से अनादि का अज्ञान दूर हो जाता है
धर्म होता है

देह की क्रिया से

भगवान सम्पूर्ण दोषों से रहित होते हैं
मुनि निर्ग्रन्थ होते हैं
करे तो तुरन्त ही तत्त्वज्ञान की प्राप्ति होती है
आकुलतारूप है
है

अज्ञानी जीव व्यापारादि में बहुत समय गंवाते है
मिलता -ऐसा वे कहते है
इत्यादि मेरे है

यहाँ कहा गया है
चालू रखे तो शीघ्र तत्त्वज्ञान की प्राप्ति हो जाती है
की है

अभी तो कोई कहते हैं
यहाँ तो स्पष्ट कहते है

....तथा जिनके तत्त्वज्ञान हुआ हो वे जीव द्रव्यानुयोग का अभ्यास करें तो उन्हें
अपने श्रद्धान के अनुसार वह सर्व कथन प्रतिभासित होते है
विद्या सीख ली, परन्तु यदि उसका अभ्यास करता रहे तो वह याद रहती है
तो भूल जाता है

दृष्टान्तादि द्वारा स्पष्ट हो जाये तो उसमें शिथिलता नहीं हो सकती। तथा इस
अभ्यास से रागादि घटने से शीघ्र मोक्ष सधता है

इसप्रकार द्रव्यानुयोग का प्रयोजन जानना।...

अब ज्ञानी की बात करते हैं
अभ्यास करता है
तो वह याद रहती है
की बात है

इसीप्रकार जिसको तत्त्वज्ञान हुआ है
है
से स्पष्ट हो जाता है
में मोक्ष को साधता है

द्रव्यानुयोग के अभ्यास में अज्ञानी को शीघ्र तत्त्वज्ञान की प्राप्ति हो जाती है
औ

अनुयोगों के व्याख्यान का विधान

अब इन अनुयोगों में किस प्रकार व्याख्यान है

प्रथमानुयोग के व्याख्यान का विधान

....प्रथमानुयोग में जो मूल कथाएँ है

है

ग्रन्थकर्ता के विचारानुसार होता है

उदाहरण:- जै

है

स्तुति की थी औ

स्तुतिरूप प्रयोजन अन्यथा नहीं हुआ। तथा परस्पर किन्हीं के वचनालाप हुआ; वहाँ

उनके तो अन्य प्रकार अक्षर निकले थे, यहाँ ग्रन्थकर्ता ने अन्य प्रकार कहे; परन्तु

प्रयोजन एक ही दिखलाते है

ही लिखते है

करते है

तथा प्रसंगरूप कथा भी ग्रन्थकर्ता अपने विचारानुसार कहते है

धर्मपरीक्षा में मूर्खों की कथा लिखी; सो वही कथा मनोवेग ने कही थी ऐसा नियम

नहीं है

पोषण करते है

चारों अनुयोगों के प्रयोजन के पश्चात् अब चारों अनुयोगों के उपदेश का प्रकार बताते

है

तीर्थकर, चक्रवर्ती, बलदेव इत्यादि महापुरुषों की कथा लिखी हो वह धर्मकथा है

कथा तो जै

के विचारानुसार कहते है

जै

शब्दों से भगवान की स्तुति की वे ही शब्द ग्रन्थकर्ता लिखे ऐसा नियम नहीं है
 में अलग-अलग स्तुति की होती है
 अन्यथा नहीं होता। तथा किसी जीव को वै
 की अनुमति लेने के लिये जाता है
 हो, परन्तु तुम मेरे आत्मा के माता-पिता नहीं हो। मेरा आत्मा अपने अनादि जनक के पास जा
 रहा है
 नहीं रमा सकती। मेरा आत्मा पुण्य-पाप से रहित शुद्ध अनुभूतिरूप रमणी से मिलने जा रहा
 है

तथा वन, नगर, संग्राम, सेठ, राजा इत्यादि का नाम तो यथावत् लिखते है
 का वर्णन अन्य प्रकार आता है
 विचारानुसार कहते है
 कही है
 नई जोड़ देते है

....यहाँ कोई कहे - अयथार्थ कहना तो जै

उत्तर:- अन्यथा तो उसका नाम है

किसी ने कहा कि तू ऐसा कहना, उसने वे ही अक्षर तो नहीं कहे, परन्तु उसी प्रयोजन
 सहित कहे तो उसे मिथ्यावादी नहीं कहते - ऐसा जानना। यदि जै
 का सम्प्रदाय हो तो किसी ने बहुत प्रकार से वै
 वर्णन लिखने से ग्रन्थ बढ़ जायेगा, तथा कुछ न लिखने से उसका भाव भासित नहीं
 होगा, इसलिये वै
 पोषक ही कथन करेंगे, सराग पोषक कथन नहीं करेंगे। वहाँ प्रयोजन अन्यथा नहीं
 हुआ इसलिये अयथार्थ नहीं कहते। इसीप्रकार अन्यत्र जानना।....

प्रश्न:- अयथार्थ कहना तो जै

उत्तर:- प्रयोजन अन्यथा प्रगट करे तो अयथार्थ कहलाये। जै
 कहने को कहा, उस अनुसार शब्द न कहे, परन्तु प्रयोजन कह दे तो वह मिथ्यावादी नहीं है

वे ही शब्द हों ऐसा नियम नहीं है
 के शब्द कहे हों; परन्तु कथा में उतने ही शब्द कहे जायें ऐसा नियम नहीं है
 प्रयोजन दर्शाने वाले शब्द आते हैं
 शब्द लिखते हैं
 अतः उन्हें असत्यार्थ नहीं कहते। इसीप्रकार अन्यत्र भी समझ लेना चाहिये।

कथानुयोग अनुसार कथा कहना तो भाषा का कार्य है
 तो पद्धति बताते हैं

....तथा प्रथमानुयोग में जिसकी मुख्यता हो उसी का पोषण करते हैं
 किसी ने उपवास किया, उसका तो फल अल्प था, परन्तु उसे अन्य धर्मपरिणति की
 विशेषता हुई इसलिये विशेष उच्चपद की प्राप्ति हुई, वहाँ उसको उपवास ही का फल
 निरूपित करते हैं

तथा जिस प्रकार किसी ने शीलादि की प्रतिज्ञा दृढ़ रखी व नमस्कार मन्त्र का
 स्मरण किया व अन्य धर्म-साधन किया, उसके कष्ट दूर हुए, अतिशय प्रगट हुए;
 वहाँ उन्हीं का वै
 हुए हैं

पाप कार्य किया, उसको उसी का तो वै
 उदय से नीचगति को प्राप्त हुआ अथवा कष्टादिक हुए; उसे उसी पापकार्य का फल
 निरूपित करते हैं

प्रथमानुयोग में तो जिसको मुख्यता होती है
 ने उपवास किया, उसका फल तो अल्प था; परन्तु अन्यधर्म से स्वर्ग की प्राप्ति हुई; वहाँ एक
 उपवास से ही स्वर्ग की प्राप्ति कह देते हैं
 तरह किसी ने ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा दृढ़ रखी, नमस्कार मन्त्र का स्मरण किया औ
 दूर हो गया। जै
 नहीं है
 हुई कहते हैं

शीतल हो गई, इसलिये 'एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कर्ता है
है

मानतुंग मुनि द्वारा भक्तामर स्तोत्र पढ़ने से ताले टूट गये- ऐसा कथन हो; वहाँ ताले टूटने की योग्यता तो तालों की है
शुभभाव से ताले टूटे -ऐसा कहा जाता है
कथानुयोग में वर्तमान के शुभराग पर आरोप करके कथन किया जाता है
है

इसी तरह कोई व्यक्ति झूठ बोलता हो औ
झूठ के कारण लक्ष्मी चली गई । यद्यपि वहाँ लक्ष्मी के जाने में पूर्व असाता का उदय निमित्त
है
शिकार की हो औ
निमित्त से हुई है
समझना चाहिये ।

....यहाँ कोई कहे - ऐसा झूठा फल दिखलाना तो योग्य नहीं है
प्रमाण कै

समाधान:- जो अज्ञानी जीव बहुत फल दिखाये बिना धर्म में न लगे व पाप से
न डरें, उनका भला करने के अर्थ ऐसा वर्णन करते है
के फल को पाप का फल बतलायें, पाप के फल को धर्म का फल बतलायें, परन्तु
ऐसा तो है
पुरुष का भी किया कहा जाये तो दोष नहीं है
कार्य किया हो, उसे एक जाति अपेक्षा उपचार से पुत्रादि का किया कहा जाये तो
दोष नहीं है
से एक शुभ व अशुभ कार्य का फल कहा जाये तो दोष नहीं है
व अशुभ कार्य का फल जो हुआ हो, उसे एक जाति अपेक्षा उपचार से किसी अन्य
ही शुभ व अशुभ कार्य का फल कहें तो दोष नहीं है

उपदेश में कहीं व्यवहार वर्णन है

व्यवहार वर्णन किया है

लेगा; तारतम्य का तो करणानुयोग में निरूपण किया है

प्रश्न:- ऐसे झूठे फल दर्शाना तो योग्य नहीं है

समाधान:- ऐसा पाप करेगा तो कीड़े पड़ेगे, नरक में जाना पड़ेगा इत्यादि कहते हैं प्रकार बताकर अज्ञानी को धर्म में लगाते हैं इसलिये उसका भला करने के लिये ऐसा कहते हैं

यदि पुण्य के फल को पाप का फल औ तो झूठ कहा जाये। जै एक पुरुष ने किया कहे तो वहाँ दोष नहीं है के नाम से कहे तो दोष नहीं है फल प्राप्त किया हो तो एक शुभ या अशुभ के फल में यह प्राप्ति हुई- ऐसा कहते हैं कि मेढ़क ने एक फूल से भगवान की पूजा की औ है कर दिया है

तथा कोई पापी जीव माँसादि का भक्षण करता हो, परन्तु किसी समय गौ में रूपये दान दे तो उसको मुख्य करके कहते हैं

धर्मकथानुयोग में कहीं व्यवहार औ व्यवहार का वर्णन किया है मान लेना। क्षण-क्षण के परिणाम करणानुयोग अनुसार है में है

इसप्रकार प्रथमानुयोग के कथन करने की जो विधि है विपरीत हो जाती है भी दो प्रकार है निःशंकित आदि गुणों को समकित कह देते हैं

है

इस प्रकार भविष्य में अनारोपित (निश्चय) हुआ उसका वर्तमान में आरोप करते हैं
औ
का आरोप करते हैं
बिना सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र नहीं होता ।

इसी प्रकार कोई अट्ठाईस मूलगुण पालन करे तो उसको सम्यक्चारित्र कहते हैं
दो प्रकार - (1) भविष्य में शुद्ध आत्मा के आश्रय से चारित्र पाने वाला है
वर्तमान में करते हैं
मंदता देखकर उसमें चारित्र का आरोप कर देते हैं

इस प्रकार सम्यग्दर्शन के आठ अंगों में से कोई एक अंग देखकर समकित कहते हैं
व्यवहार ज्ञान सच्चा हो तो सम्यग्ज्ञान कहते हैं
कह देते हैं
औ
इसलिये सम्यग्दर्शन हो जाए- ऐसा नहीं हो सकता ।

यहाँ कहते हैं
को निःशंकित अंग से समकित होना कहा हो तो वै
इसलिये निश्चय प्राप्त हो जायेगा- ऐसा नहीं मान लेना । अर्थात् आरोपित कथन को निश्चय
नहीं मान लेना । समय-समय के परिणाम की व्याख्या करणानुयोग से जानना ।

....तथा प्रथमानुयोग में उपचाररूप किसी धर्म का अंग होने पर सम्पूर्ण
धर्म हुआ कहते हैं
सम्यक्त्व हुआ कहते हैं
सम्यक्त्व नहीं होता, सम्यक्त्व तो तत्त्वश्रद्धान होने पर होता है
का तो व्यवहार सम्यक्त्व में उपचार किया औ
अंग में सम्पूर्ण व्यवहार सम्यक्त्व का उपचार किया- इसप्रकार उपचार द्वारा
सम्यक्त्व हुआ कहते हैं

प्रथमानुयोग में उपचाररूप कोई धर्म का अंग होने पर सम्पूर्ण धर्म हुआ कहते हैं
 अंजनचोर को शंका नहीं हुई- इस कारण उसको सम्यक्त्व हुआ कहते हैं
 कथानुयोग में उपचार कथन है
 कांक्षा अथवा शंका न की हो तो उस पर (सम्यक्त्व का) आरोप कर देते हैं
 भविष्य में स्वभाव के अवलम्बन से निश्चय सम्यक्त्व को प्राप्त किया तो व्यवहार पर आरोप
 आया है
 की बात है
 सम्यक्त्व प्राप्त नहीं करते- इस कारण उनके व्यवहार नहीं कहते; परन्तु जो जीव सम्यक्त्व
 प्राप्त करता है
 निश्चय सम्यक्त्व प्रगट है
 व्यवहार पर आरोप आता है
 आदि सम्यग्दर्शन के व्यवहार अंग है
 इस अनुयोग की पद्धति है
 धर्म प्रगट करे तो व्यवहार पर आरोप आता है

प्रथमानुयोग की अपेक्षा भी जो व्यवहार कहा है
 वह पुण्य है
 भी नहीं है
 अवस्था है
 की श्रद्धा से भव का अभाव होता है

....तथा किसी जै

**संशयादि रहित तत्त्वज्ञान होने पर सम्यग्ज्ञान होता है
 सम्यग्ज्ञान कहते हैं**

किसी जीव के (शास्त्र का) एक अंग जानने पर सम्यग्ज्ञान हुआ कहते हैं
 देव-शास्त्र-गुरु का ज्ञान हो, द्रव्य-गुण-पर्याय का सच्चा ज्ञान हो औ
 पर सम्यग्ज्ञान प्रगट होता है

(व्यवहार सम्यग्ज्ञान का) आरोप भी नहीं आता। जिसने ग्यारह अंग नौ आत्मा का ज्ञान नहीं किया उसके (व्यवहार सम्यग्ज्ञान का) आरोप नहीं आता; परन्तु जो जीव भविष्य में सम्यग्ज्ञान प्राप्त करता है सम्यग्ज्ञान कहते हैं

सम्यग्ज्ञान शास्त्र में से नहीं आता। शास्त्राभ्यास को उपचार से सम्यग्ज्ञान कहते हैं कारण कि शास्त्र परद्रव्य है उसको सम्यग्ज्ञान नहीं कहा जा सकता। सम्यग्ज्ञान तो संशयादि दोष रहित होने पर ही होता है

- * राग से ज्ञान होता होगा या आत्मा से ज्ञान होता होगा- यह संशयदोष है
- * प्रथम शुभराग आवे तो सम्यग्ज्ञान होता है
- * कुछ होगा, अपने को समझने में नहीं आता यह अनध्यवसाय है दोष टालकर आत्मा का ज्ञान करना सम्यग्ज्ञान है

....तथा कोई भला आचरण होनेपर सम्यक्चारित्र हुआ कहते हैं
जै
कहते हैं
से इसे श्रावक कहा है
असंयत था; परन्तु जै

कोई जीव ब्रह्मचर्य पालन करे तो उसको चारित्र हुआ कहते हैं को मानता हो औ श्रावक तो पंचम गुणस्थान प्रगट करने से होता है

उत्तरपुराण में राजा श्रेणिक को असंयत सम्यग्दृष्टि होने पर भी उत्तम श्रावक कह दिया है श्रावक कह दिया; क्योंकि वह जै कारण उत्तम श्रावक का आरोप कर दिया है

वस्तुतः श्रावक तो पंचम गुणस्थान होने पर कहलाता है
लीनता करना चारित्र है
है

गुणस्थान प्रगटा हो तो उसे वर्तमान में श्रावक कह देते है
भी वर्तमान में श्रावक कह देते है

इसप्रकार जहाँ जै

....तथा जो सम्यक्त्व रहित मुनिलिंग धारण करे, व द्रव्य से भी कोई अतिचार
लगाता हो, उसे मुनि कहते है
परन्तु पूर्ववत् उपचार से उसे मुनि कहा है
कही, वहाँ सर्व ही शुद्ध भावलिंगी मुनि नहीं थे; परन्तु मुनिलिंग धारण करने से सभी
को मुनि कहा। इसीप्रकार अन्यत्र जानना।....

कोई जीव सम्यक्त्व रहित मुनिलिंग धारण करे अथवा कोई मुनि अतिचार लगाता हो,
तो भी उसको मुनि कहते है
चाहिये। अब मुनि तो छठवां-सातवां गुणस्थान प्रगट होने पर होता है
वीतरागता वर्तती हो उसको मुनि कहते है

समवसरण में मुनियों की संख्या कही, वहाँ सभी शुद्ध भावलिंगी नहीं थे। वहाँ कोई
मिथ्यादृष्टि, कोई चौ
उन्हें मुनि कहते है

....तथा प्रथमानुयोग में कोई धर्मबुद्धि से अनुचित कार्य करे उसकी भी प्रशंसा
करते है
परन्तु मुनिपद छोड़कर यह कार्य करना योग्य नहीं था; क्योंकि ऐसा कार्य तो
गृहस्थधर्म में सम्भव है
नीचा धर्म अंगीकार किया वह अयोग्य है
विष्णुकुमारजी की प्रशंसा की है
धर्म अंगीकार करना योग्य नहीं है

तथा जिसप्रकार ग्वाले ने मुनि को अग्नि से तपाया, सो करुणा से यह कार्य किया; परन्तु आये हुए उपसर्ग को तो दूर करे, सहज अवस्था में जो शीतादिक का परीषह होता है

नहीं है

करते। ग्वाला अविवेकी था, करुणा से यह कार्य किया, इसलिये उसकी प्रशंसा की है

नहीं है

तथा जै

प्रतिमा रखी; सो बड़े-बड़े सम्यग्दृष्टि राजादिक को नमन करते है

तथा मुद्रिका में प्रतिमा रखने में अविनय होती है

होती, इसलिये इस कार्य में दोष है

से 'मै

परन्तु इस छल से औ

तथा कितने ही पुरुषों ने पुत्रादिक की प्राप्ति के अर्थ अथवा रोगकष्टादि दूर करने के अर्थ चै

किया; परन्तु ऐसा करने से तो निःकांक्षित गुण का अभाव होता है

नामक आर्तध्यान होता है

बन्ध होता है

पूजनादि नहीं किया, इतना उसका गुण ग्रहण करके उसकी प्रशंसा करते है

से औ

जानना।

इसीप्रकार प्रथमानुयोग में अन्य कथन भी हों, उन्हें यथासम्भव जानकर भ्रमरूप नहीं होना।....

कथानुयोग में, धर्मबुद्धि से कोई अनुचित कार्य करे उसकी भी प्रशंसा की जाती है धर्म से शुभभाव समझना चाहिये औ

कहते हैं

वह कार्य मुनि के योग्य नहीं है

होना योग्य नहीं है

धारण करे तो मुनिपना नहीं रहता, उसका मुनिपना छूट जाता है

संभव है

है

का ऊँचा धर्म छोड़कर नीचा धर्म अंगीकार करना अयोग्य है

बतलाने के लिये विष्णुकुमार की प्रशंसा की है

छोड़कर नीचा धर्म अंगीकार करना योग्य नहीं है

दूसरा दृष्टान्त यह है

इसलिये करुणाभाव से अग्नि प्रज्वलित की, सर्दिरूप अवस्था दूर करने से रति होने का कारण होता है

इसलिये विवेकी जीवों को ऐसा उपचार करना योग्य नहीं है

(करुणाभाव) बताकर उसको अच्छा कहते हैं

करते हैं

कथानुयोग में करुणाअंग की महिमा की, परन्तु धर्म से विरुद्ध हो वह कार्य करना योग्य नहीं है

पुराणों में कथा आती है

था- इस कारण वह सिंहोदर राजा को नमस्कार नहीं करके मुद्रिका में प्रतिमा रखकर उसको नमस्कार करता था। अब बड़े-बड़े धर्मी जीव मुसलमान राजा को नमस्कार करें तो भी वहाँ

राग का- चारित्र का दोष है

योग्य नहीं है

कारण धर्मानुरागवश अन्य को नमस्कार नहीं करूँगा, इस बुद्धि से नमस्कार नहीं किया- इसलिये उसकी प्रशंसा की है

बुद्धि की प्रशंसा की; परन्तु अंगुठी में प्रतिमा रखना अविनय है

धर्मानुराग देखकर प्रशंसा करते हैं

देखो, समयसार में राग की प्रशंसा का निषेध करते हैं
मिथ्यादृष्टि के राग की भी प्रशंसा की है
समझना चाहिये कि शुभराग कर्तव्य है
औ

प्रथमानुयोग में ऐसा उपदेश आ जाता है
है
कर्ता होकर मिथ्यादृष्टि हो जाता है
करना, तो क्या (आत्मा) उपदेश कर सकता होगा ? नहीं। वाणी, वाणी के कारण निकलती
है

तथा किसी ने पै
तो उसे दूर करने के लिय प्रतिमा बनवायी, पुत्र होने पर सम्मेशिखर की यात्रा निकालूँगा,
(ऐसा भाव किया) अथवा कोई नमस्कार मंत्र पढ़ता है
करूँगा तो खोया हुआ पुत्र मिल जायेगा- ऐसे कथन प्रथमानुयोग में आते हैं
में) निकांक्षितगुण का अभाव होता है

श्रीपाल को कुष्ट हुआ था औ
तो असाता मिट जाने से साता हुई है
से मेरी आँखे, गला आदि ठीक रहेंगे, तो इस मान्यता में मिथ्यात्व विद्यमान है
का बंध होता है
देवादिक की पूजा की- इस कारण उसकी प्रशंसा प्रथमानुयोग में की जाती है
चाहिये; परन्तु वहाँ धर्म तो है
घटा इसलिये उसकी प्रशंसा करते हैं
कार्यों के लिए धर्म साधन करना योग्य नहीं है
ने कुदेवादिक को नहीं माना- इस कारण पाप का बंध कम हुआ, इससे प्रशंसा की है
यथायोग्य समझना चाहिये, परन्तु भ्रमरूप नहीं होना चाहिये।

करणानुयोग के व्याख्यान का विधान

....अब, करणानुयोग में किसप्रकार व्याख्यान है

जै

द्वारा तो बहुत जाना, परन्तु जीव को कार्यकारी जीव-कर्मादि का व त्रिलोकादिक का ही निरूपण इसमें होता है

इसलिये जिस प्रकार वचनगोचर होकर छद्मस्थ के ज्ञान में उनका कुछ भाव भासित हो, उस प्रकार संकुचित करके निरूपण करते है

की अपेक्षा गुणस्थान कहे है

बहुत भावों की एक जाति करके चौ

अनेक प्रकार है

अनन्तप्रकार शक्तियुक्त है

अड़तालीस प्रकृतियाँ कही है

रचनाओं का निरूपण कहते है

भेद व इनके इक्कीस भेद निरूपित किये है

करण अर्थात् सूक्ष्म परिणाम अथवा अवस्था। शास्त्र में दस करण आते है बंध, उपशम, संक्रमण, उत्कर्षण, निद्वत, निकाचित, अपकर्षण आदि पुद्गल की उस प्रकार की अवस्था कर्म के कारण होती है

जै

आत्मा को कार्यकारी जीव-कर्मादिक का व त्रिलोकादिक का ही करणानुयोग में व्याख्यान है

नहीं है

भगवान को नहीं है

अथवा दुनिया को लाभ हो उतनी भाषा बोलूँ- ऐसा विकल्प भगवान को नहीं है तो सहज ही निकलती है

है

सम्यक्त्वसन्मुख मिथ्यादृष्टि होता है
 इस कारण इन सबके भावों में भेद बहुत है
 कहे गये है
 अन्तर होता है
 की है
 कह दिया है
 क्षयोपशम समकिति के भावों की तारतम्यता में बहुत अन्तर है
 किया जा सकता। बहुभाव की एक जाति बतलाकर चौ

तथा जीव को जानने के अनेक प्रकार है
 अभव्य, कषाय, लेश्या आदि संक्षेप से कहे है
 संख्यात है
 इसलिये शब्द संख्यात निकलते है
 में समझाते है

तथा कर्मपरमाणु अनंत प्रकार की शक्ति वाले है
 की अपेक्षा अनुभाग अनंतगुना है
 चरपराहट में औ
 हो सकता। तथा प्रत्येक मिर्च की चरपराहट में भी अन्तर है
 वाणी में उसका वर्णन नहीं हो सकता। ताजा घी के स्वाद का ज्ञान हो सकता है
 वर्णन वाणी में नहीं हो सकता; इसी प्रकार (केवली ने) जीव औ
 में जाने है
 सब लिखने में नहीं आ सकता, मात्र कुछ ही कहा जा सकता है

इस प्रकार कर्म परमाणु अनेक प्रकार की शक्ति सहित; परन्तु बहुत की एक जाति
 कहकर आठ व एक सौ

तथा उर्ध्व-अधो औ
 वह अनादि से है

सकता।

देवलोक में असंख्य शाश्वत जिनप्रतिमायें हैं

तथा संख्या के अनंत भेद हैं

अनंतकाल चाहिये; परन्तु किसी जीव की आयु अनन्तकाल की नहीं है

सके। इस कारण संख्यात, असंख्यात औ

तीन, असंख्यात के नौ

अन्यत्र भी समझ लेना चाहिये।

....तथा करणानुयोग में यद्यपि वस्तु के क्षेत्र, काल, भावादिक अखंडित है

तथापि छद्मस्थ को हीनादिक ज्ञान होने के अर्थ प्रदेश, समय, अविभाग-प्रतिच्छेदादिक

की कल्पना करके उनका प्रमाण निरूपित करते हैं

गुणों का व पर्यायों का भेद करके निरूपण करते हैं

भिन्न-भिन्न हैं

को एक जीव के निरूपित करते हैं

सहित जानना, क्योंकि व्यवहार के बिना विशेष नहीं जान सकता। तथा कहीं निश्चय

वर्णन भी पाया जाता है

भिन्न-भिन्न इतने ही द्रव्य हैं

वस्तु द्रव्य-क्षेत्र-काल औ

प्रदेश की कल्पना करते हैं

एक समय की पर्याय में अनंत अविभाग प्रतिच्छेद पड़ते हैं

केवलियों को जानती हैं

करके निरूपण करते हैं

करते हैं

तथा एक आत्मा में अनंत गुण औ

वस्तु अखण्ड एकरूप होने पर भी भेद करके बतलाते हैं

पर्याय के अन्तिम भाग को अविभाग प्रतिच्छेद कहते हैं

भिन्न हैं

मिला, देव का शरीर मिला ऐसा कथन करते हैं
निरूपण करते हैं

जीव को दस प्राण मिले, इतनी पर्याप्तियां मिली, इतनी इन्द्रियां मिली- इस प्रकार
व्यवहारनय की प्रधानता से व्याख्या जानना चाहिये। यद्यपि जीव औ
है

इसलिये व्यवहार से (दो द्रव्यों के संबन्धरूप) वर्णन करते हैं

करणानुयोग में आत्मा औ
को नहीं समझे तो मान्यता विपरीत हो जाती है
कारण गति, जाति आदि के भेदों को एक जीव का निरूपण करने वाला व्याख्यान व्यवहारनय
की प्रधानता से है

जिनशासन में आ जाता है

उसका आश्रय करने योग्य नहीं है

इन्द्रियवाला है

ज्ञानस्वरूपी आत्मा के अवलम्बन से मोक्षमार्ग है

ज्ञान आ जाता है

उनका निमित्त-नै

तो भेद रहित अभेद स्वभाव का अवलम्बन लेने पर ही सम्यग्दर्शन होता है

ज्ञान होता है

आत्मा औ

धर्म नहीं होता। अभेद एकरूप सामान्य आत्मा की अन्तरदृष्टि करना सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र
है

का सच्चा ज्ञान नहीं होता। सामान्य ज्ञानस्वभाव को अग्र-मुख्य किये बिना धर्म नहीं होता।

अन्तर्मुख दृष्टि कराने के लिये अभेद को मुख्य औ

है

जानने योग्य है

नहीं होता औ

अभेद को जानने पर भेद का ज्ञान होता ही नहीं ऐसा नहीं है
को वर्तमान में कर्मादि के साथ निमित्त-नै
जाने तो मिथ्यादृष्टि हो जाये औ
स्व का ज्ञान होने पर भेद यथार्थ रूप से जानने मे आते है

तथा कहीं निश्चय वर्णन भी होता है
क्रिया, जीव अनंत कहे-यह निश्चय से है
जान लेना चाहिये। अर्थात् सर्वज्ञ परमात्मा ने करणानुयोग के शास्त्र में जीवादि की संख्या का
वर्णन किया है
आकाश एक-एक है

यहाँ जीवों की अनंत संख्या कही इसलिये वह व्यवहार है
ऐसा नहीं है
अपेक्षा अनंत जीव है
प्रत्येक आत्मा असंख्य प्रदेशी है
समझना, असंख्य प्रदेश निश्चय से है
आत्मा औ
जाती है
एक में अनेक अथवा अनेक में एक मिल नहीं जाते। आकाश के जिस क्षेत्र में एक सिद्ध रहते
है
करणानुयोग में द्रव्यों की जितनी संख्या कही है
न नष्ट होते है
निर्मित्त नहीं कर देता।

इसलिये ये भेद यथासंभव जान लेना चाहिये।

....तथा करणानुयोग में जो कथन है
प्रत्यक्ष-अनुमानादिगोचर होते है
प्रकार जीव-पुद्गल के स्थूल बहुत कालस्थायी मनुष्यादि पर्यायें व घटादि पर्यायें
निरूपित कीं, उनके तो प्रत्यक्ष अनुमानादि हो सकते है

की अपेक्षा ज्ञानादिक के व स्निग्ध-रूक्षादिक के अंश निरूपित किये है
ही प्रमाण होते है

करणानुयोग में जो कथन है
होता है
गति में अमुक काल रहता है
उसमें समय-समय के परिणाम होते है
नहीं आता, उसे आज्ञा प्रमाण मानना चाहिये। वस्त्र, मकानादि इतने वर्ष रहते है
काल टिकने की अपेक्षा से कहा है
पर्याय उत्पन्न होती है
परिणमन छद्मस्थ के ख्याल में नहीं आता। यह आगम औ
की ज्ञानादि पर्याय प्रतिसमय परिणमति है
करता है चाहिये; उसे छद्मस्थ प्रत्यक्ष नहीं देख सकता। भगवान ने
करणानुयोग में कथन किया उसमें स्थूल परिणमन का अनुमान हो सकता है
परिणमन आज्ञानुसार मानना चाहिये।

....तथा करणानुयोग में छद्मस्थों की प्रवृत्ति के अनुसार वर्णन नहीं किया है
केवलज्ञानगम्य पदार्थों का निरूपण है
का विचार करते है
नहीं है
के व व्रतादिक के विचार रहित है
निर्विचार हो रहे है
सम्यक्त्वी व व्रती कहते है

करणानुयोग में छद्मस्थों की प्रवृत्ति के अनुसार वर्णन नहीं है
पदार्थों का वर्णन है
का पालन करता हो; परन्तु उसके अन्तरंग में सम्यक्त्व औ
उसको मिथ्यादृष्टि औ

तथा कोई जीव द्रव्यों के विचार से रहित है
 है
 का सद्भाव होने से उसको सम्यग्दृष्टि या व्रती कहते हैं
 करता हो; परन्तु अन्तर मे आत्मभान न हो तो वह समकिती नहीं है
 परिणामों के अनुसार कथन है

देखो! शब्द-शब्द में नये-नये न्याय आते हैं
 लगे कि हमने तो बहुत बार यह शास्त्र सुना है
 इधर-उधर देखा करे तो वह सत्य का अनादर करता है
 शास्त्र में न्याय के जो प्रकार आते हैं
 ने ग्यारह अंग कंठस्थ कर लिया तो भी सम्यग्ज्ञान नहीं हुआ। इस शास्त्र का वाचन दूसरी बार
 हो रहा है
 की क्या आवश्यकता है
 भावसूचक शब्द कह गये हैं
 समझकर पढ़ना।

अपने को तो कंठस्थ है
 दुर्लक्ष करता है
 होता ही नहीं। यह काल दुर्लभ है
 भी शास्त्र हो तो भी अरुचि नहीं होना चाहिये, ध्यान पूर्वक उसका श्रवण करना चाहिये।

....तथा किसी जीव के कषायों की प्रवृत्ति तो बहुत है
कषायशक्ति थोड़ी है
प्रवृत्ति तो थोड़ी है
कहते हैं
थोड़ी कषायशक्ति से पीत लेश्या कही है
करते दिखायी नहीं देते, तथापि उनके बहुत कषायशक्ति से कृष्णादि लेश्या कही है
तथा सर्वार्थसिद्धि के देव कषायरूप थोड़े प्रवर्तते हैं

असंयम कहा है

है

किसी जीव को कषाय की प्रवृत्ति बहुत है
थोड़ी है

परन्तु यदि उसकी अन्तरंग कषायशक्ति अधिक है

व्यंतरादि देव कषायों से नगर का नाश करते हैं
से पीतलेश्या कही है

कृष्ण, नील, कापोतलेश्या के निंद्य परिणाम वर्तते हैं
अवस्था का वर्णन करते हैं

के देव तैंतीस सागर की स्थिति वाले होते हैं

वाले हैं

थोड़ी है

है

चौ

रूपये का व्यापार-धंधा करता हो, परिग्रह रखता हो; तो भी उसको दो कषाय चौ
अभाव होने से देशसंयमी कहा है

इच्छा होती है

व्यापार-धंधा करता हो; तो भी आत्मभानपूर्वक कषाय मंदता हुई होने से उसको देशविरति
कहा है

अज्ञानी जीव बाहर से निवृत्ति लेकर बै
में आत्मभान नहीं होने से महाकषायी है

कोई अज्ञानी कहता है

इन दोनों की आयु पूर्ण होने पर ये स्वर्ग में जाते हैं
होता है

वह श्रावक का जीव स्वर्ग में से पहले निकलकर, मनुष्य होकर शीघ्र मोक्ष जा सकता है
इस अपेक्षा से श्रावकपना श्रेष्ठ है

वर्तमान पुरुषार्थ के आधीन है
नहीं जानता है

....तथा किसी जीव के मन-वचन-काय की चेष्टा थोड़ी होती दिखायी दे,
तथापि कर्माकर्षण शक्ति की अपेक्षा बहुत योग कहा है
दिखायी दे, तथापि शक्ति की हीनता से अल्प योग कहा है
क्रियारहित हुए, वहाँ भी उनके योग बहुत कहा है गमनादि करते
है

किसी जीव के मन-वचन-काय की चेष्टा कम दिखने पर भी कर्म ग्रहण शक्ति विशेष
हो तो इस अपेक्षा से बहुत योग कहा है
की हीनता से अल्पयोग कहा है
बालक बहुत दौ
कम है
परिणाम जानना चाहिये।

....तथा कहीं जिसकी व्यक्तता कुछ भासित नहीं होती, तथापि सूक्ष्मशक्ति के
सद्भाव से उसका वहाँ अस्तित्व कहा है
तथापि नववें गुणस्थान पर्यन्त मैं
व्यक्त नहीं है
जानना।....

तथा कहीं जिसकी व्यक्तता तो कुछ भासित नहीं होती; तो भी सूक्ष्म के सद्भाव से वहाँ
उसका सद्भाव कहा है
कषाय के उदय का नाश नौ
इसलिये उनके मैं
करणानुयोग की अपेक्षा से मैं
पर भी कदाचित असाता का उदय कहा है

नारकी के सुख का कारण व्यक्त नहीं होने पर भी कदाचित साता का उदय कहा है

भगवान ने सूक्ष्म परिणमन देखा वै
जीवों के साता का उदय होता है
भी साता का उदय होता है
देखा वै

....तथा करणानुयोग सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रादिक धर्म का निरूपण कर्मप्रवृत्तियों के उपशमादिक की अपेक्षा सहित सूक्ष्म शक्ति जै में निरूपण करता है सूक्ष्म भेदादि सहित करता है हो नहीं सकता, करणानुयोग में तो यथार्थ पदार्थ बतलाने का मुख्य प्रयोजन है आचरण कराने की मुख्यता नहीं है प्रवर्तन करे, उससे जो कार्य होना है उपशमादि करना चाहे तो कै करे, उससे स्वयमेव ही उपशमादि सम्यक्त्व होते है

एक अन्तर्मुहूर्त में ग्यारहवें गुणस्थान से गिरकर क्रमशः मिथ्यादृष्टि होता है चढ़कर केवलज्ञान उत्पन्न करता है नहीं होते। इसलिये करणानुयोग के अनुसार जै बुद्धिगोचर जै

करणानुयोग में ऐसा बतलाते है होता है का निरूपण कर्मप्रकृति की अपेक्षा सहित करते है पकड़ में नहीं आते, परन्तु करणानुयोग में ऐसा कथन किया है के अनुसार उद्यम करे तो नहीं हो सकता। जै करूँगा- तो वै नहीं सकता; परन्तु स्वभाव सन्मुख का पुरुषार्थ करने से स्वयं कर्म का नाश हो जाता है वस्तुस्थिति होने पर भी करणानुयोग में ऐसा कथन आता है

क्षायिक सम्यग्दर्शन होता है
 पुरुषार्थ करना चाहिये। वस्तुस्थिति तो यह है
 करता है
 नहीं पड़ता- ऐसा निमित्त-नै

यहाँ करणानुयोग में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का निरूपण कर्म के उपशमादि की
 अपेक्षा किया है
 करे तो वह नहीं हो सकता है
 का परिज्ञान कराने का प्रयोजन है
 के अनुसार प्रवृत्ति करे कि मैं
 अपने स्वभावानुसार श्रद्धा-ज्ञान-आचरण करे। सात तत्त्वों का विचार करना, राग रहित
 स्थिरता करना- यह चरणानुयोग अनुसार है

कोई कहता है
 होता है
 है
 क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त करता है
 अपने स्वभाव के आश्रय से क्षायिक सम्यक्त्व होने पर मोहनीय की सात कर्मप्रकृतियों का क्षय
 स्वयमेव हो जाता है

जीव स्वयं तत्त्वादिक के विचार का उद्यम करे कि मैं
 दया-दानादि के भाव पुण्य है
 हो जाता है
 है
 औ

विचार करे तो कर्म का उपशम अथवा क्षय हो जाता है

इसप्रकार करणानुयोग में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का निरूपण करते हुए कर्म के
 उपशमादि की सापेक्षता से वर्णन किया है

प्रकृति उपशमरूप हुई है
प्राप्त होता है
गुणस्थान में निरूपण करते है

तथा सम्यग्दर्शनादि के विषय का निरूपण सूक्ष्मता से करते है
सम्यग्दर्शन का विषय नहीं है
आत्मा है

कोई जीव एक अन्तर्मुहूर्त में ग्यारहवें गुणस्थान से गिरकर क्रम से मिथ्यादृष्टि होकर फिर वापिस श्रेणी चढ़कर केवलज्ञान उत्पन्न करता है
जाता है
सकता। कोई मिथ्यादृष्टि जीव अन्तर्मुहूर्त में सम्यक्त्व प्रगट करके केवलज्ञान प्राप्त कर लेता है
जान लेना चाहिये।

कोई जीव ग्यारहवें गुणस्थान से गिरता है
कर्म की बलजोरी नहीं है
कहते में आता है
वस्तुस्थिति ऐसी नहीं है

कोई मुनि अंतर में सम्यक्त्व का अभाव करके मिथ्यादृष्टि हो गया हो, उसके सूक्ष्म परिणामन का कथन करणानुयोग में आता है
सीधा या उल्टा पुरुषार्थ करता है

सम्यक्त्वादि के परिणाम बुद्धिगोचर नहीं होते- इसका अर्थ यह नहीं है
के कारण वै
है
के कारण निगोद में रहता है
आलू में अनंत जीव एक शरीर में रहते है
मरकर निगोद में जाता है

चाहिये।

इसलिये करणानुयोग अनुसार जै
वै

यहाँ चारों अनुयोगों में किस पद्धति से कथन होता है
कथन के उद्देश्य को समझे तो सम्यग्ज्ञान होता है

करणानुयोग के ग्रंथों में कर्म के उपशमादि से उपशम सम्यग्दर्शनादि होते हैं
आता है

जै

मै

करने से कर्म का उपशम स्वयं हो जाता है
अभाव होता है

काललब्धि है

स्वयं टल जाते हैं

आत्मा में राग पर्याय कथंचित् भिन्न है

से कथंचित् अभिन्न है

यहाँ कहते हैं

पर कर्मों का अभाव स्वयं हो जाता है

जाता है

है

कहा जाता है

‘णमों अरिहंताणं’ का ऐसा अर्थ किया कि भगवान ने कर्मों का नाश किया, तो क्या
आत्मा कर्मों का स्वामी है

सकता। जिससमय अरहन्त दशा-केवलज्ञानादिरूप दशा प्रगट हुई उससमय ज्ञानावरणादिरूप
कर्मों की कर्मरूप पर्याय मिट गई औ

नाश किया- ऐसा कहते हैं

कहा है

कर सकता। कर्म, कर्म के कारण नष्ट होते हैं
 इसकारण अरिहन्त ने कर्मों का नाश किया कहा जाता है
 का नाश किया- यह भी उपचार है
 ही न होने का नाम राग-द्वेष का नाश करना है

मनुष्य पर्याय पलटकर देवपर्याय उत्पन्न हुईं औ
 पलटने को मनुष्य गति का नाश होना कहा जाता है
 शरीर में नहीं। गतिरूप परिणाम औ
 अरूपी है
 नामकर्म के कारण गति का उदय नहीं है
 आत्मा अन्य क्षेत्र में अपनी योग्यता से जाता है
 जड़कर्म आत्मा को आधीन नहीं करता। प्रत्येक द्रव्य भिन्न-भिन्न है
 से नरक में जाता है

....तथा करणानुयोग में भी कहीं उपदेश की मुख्यता सहित व्याख्यान होता है
 उसे सर्वथा उसी प्रकार नहीं मानना। जै
 है
 उसे विभंगज्ञान कहा है
 से मिथ्यादृष्टि के सभी ज्ञान कुज्ञान है
 इसीप्रकार अन्यत्र जानना।....

करणानुयोग में उपदेश की मुख्यतापूर्वक व्याख्यान है
 लेना। जै
 का ज्ञान कुमतिज्ञान है
 को कुश्रुतज्ञान कहा है
 का अभ्यास छुड़ाने के लिये उसे कुमतिज्ञान कहा है
 ज्ञानी भी करते हैं
 है

शास्त्रों को पढ़ना चाहिये। वस्तुतः तो मिथ्यादृष्टि का समस्त ही ज्ञान कुज्ञान है
 पढ़ता हो तो भी कुज्ञान है
 में भी लिखा है
 इसप्रकार अपनी दृष्टि से पढ़ता है
 कथन का आशय तो यह है
 का स्वामी कर्म है
 कह देते हैं
 नहीं समझता, इसलिये उसका समस्त ज्ञान कुज्ञान है
 उसका ज्ञान सम्यग्ज्ञान है
 दृष्टि विपरीत है
 अज्ञान है

जीव राग करता है
 परमाणुओं में कर्मरूप होने की योग्यता है
 परिणामते। परमाणु कर्मरूप परिणामते है

इसी प्रकार रूखा आहार करने से वीर्य का नाश होता है
 है

....तथा कहीं स्थूल कथन किया हो उसे तारतम्यरूप नहीं जानना। जिस प्रकार
 व्यास से तीन गुनी परिधि कही जाती है
 है

तथा कहीं मुख्यता की अपेक्षा व्याख्यान हो उसे सर्वप्रकार नहीं जानना। जै
 मिथ्यादृष्टि औ
 वालों को पुण्यजीव कहा है
 पाप-पुण्य यथासम्भव पाये जाते है
 ऐसे ही औ

इसप्रकार करणानुयोग में व्याख्यान का विधान बतलाया।....

तथा कहीं स्थूल कथन किया हो तो उसको तारतम्यरूप नहीं जानना चाहिये। जै
से तीन गुनी परिधि कही है
अन्यत्र समझ लेना चाहिये।

तथा कहीं मुख्यता की अपेक्षा कथन होता है
चाहिये। जै
गुणस्थान वाले जीवों को पापीजीव कहा है
अभिनवेश महान पाप है
अविरति गुणस्थान वाले जीव को पुण्यजीव कहा है
है
से दोनों में यथासंभव पुण्य-पाप होते हैं
सम्यग्दृष्टि युद्धादि के भाव करता है
पुण्य है

इसप्रकार करणानुयोग में अनेकप्रकार की व्याख्यान पद्धति है
चाहिये। उसका विपरीत अर्थ करने से दृष्टि विपरीत हो जाती है

इसप्रकार करणानुयोग के व्याख्यान का विधान बतलाया।

चरणानुयोग के व्याख्यान का विधान-

....अब, चरणानुयोग में व्याख्यान का विधान बतलाते हैं

चरणानुयोग में जिसप्रकार जीवों के अपनी बुद्धिगोचर धर्म का आचरण हो
वै
साधनादिक उपचार से धर्म हैं
उपचार धर्म के भेदादिकों का इसमें निरूपण किया जाता है
तो कुछ ग्रहण-त्याग का विकल्प नहीं है
छूटता नहीं है
धर्मसाधनादि कार्यों को ग्रहण करने का उपदेश इसमें है

अब चरणानुयोग में किसप्रकार व्याख्यान है
पुरुषार्थसिद्धिउपाय आदि में व्याख्यान की पद्धति क्या है

चरणानुयोग में जिसप्रकार जीवों को अपने बुद्धिगोचर धर्म का आचरण हो वै
देते है

देह-मन-वाणी आदि से भिन्न है
ज्ञानी को भी अपूर्णदशा में राग आता है
निमित्तरूप साधन कहते है
आत्मा मे 'करण' नाम का गुण अनादि-अनंत है
करे तो व्रतादि के परिणाम को व्यवहार साधन कहते है

अंजनचोर को निःशंक अंग से समकित हुआ ऐसा कहा; वहाँ भविष्य में उसे अपने
स्वभाव के साधन से समकित होता है

चरणानुयोग में शुभभाव के भेदों को -जै
कह दिया है
धर्म नहीं है
होती है

परन्तु कब ? निश्चय से आत्मा का साधन करे तो अट्ठाईस मूलगुणों के पालन को उपचार
से साधन कहते है

ग्रहण-त्याग का विकल्प नहीं है

चौ

ग्रहण-त्याग का विकल्प नहीं है
विकल्प उत्पन्न होता है
छठवें गुणस्थान में तीन कषाय के अभावरूप वीतरागता हुई है
ग्रहण-त्याग का विकल्प नहीं है
अभी सम्पूर्ण निश्चय दशा (परिपूर्ण निर्मलता) नहीं हुई है
विरोधी कार्यों को छुड़ाने के लिये औ

है

(1) आत्मा के आश्रय से प्रगट होने वाले निश्चय श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र धर्म है

(2) आत्मा के आश्रय से जो वीतरागता प्रगट होती है

नहीं आता। अंदर जितनी स्थिरता हुई है

विकल्प नहीं है

विकल्प का अभाव हो जाये तो सातवाँ गुणस्थान व उससे ऊपर की दशा आ जाती है

जीव को राग आता है

है

शुभराग करने को चरणानुयोग कहता है

वहाँ वस्तुतः निश्चयरूप मोक्षमार्ग ही धर्म है

औ

न देखे तबतक किसप्रकार उपदेश देते है

....वह उपदेश दो प्रकार से दिया जाता है

है

वहाँ जिन जीवों के निश्चय का ज्ञान नहीं है

दिखायी देता ऐसे मिथ्यादृष्टि जीव कुछ धर्मसन्मुख होने पर उन्हें व्यवहार ही का उपदेश देते है

पर उनका ज्ञान होता दिखायी देता है

मिथ्यादृष्टि जीव उनको निश्चय सहित व्यवहार का उपदेश देते है

सर्व जीवों के उपकारी है

सो असंज्ञी जीव तो उपदेश ग्रहण करने योग्य नहीं है

ही किया कि औ

तथा जो जीव कर्म प्रबलता से निश्चयमोक्षमार्ग को प्राप्त नहीं हो सकते, उनका इतना ही उपकार किया कि उन्हें व्यवहारधर्म का उपदेश देकर कुगति के दुःखों के कारण पापकार्य छोड़ाकर सुगति के इन्द्रियसुखों के कारणरूप पुण्यकार्यों में लगाया।

वहाँ जितने दुःख मिटे उतना ही उपकार हुआ।

तथा पापी के तो पापवासना ही रहती है
निमित्त नहीं है
धर्मवासना रहती है
इसलिये परम्परा से सुख को प्राप्त करता है
मोक्षमार्ग को भी प्राप्त हो जाता है
पुण्यकार्यों में लगाते है

तथा जो जीव मोक्षमार्ग को प्राप्त हुआ व प्राप्त होने योग्य है
उपकार किया कि उनको निश्चयसहित व्यवहार का उपदेश देकर मोक्षमार्ग में
प्रवर्तित किया।

श्रीगुरु तो सर्व का ऐसा ही उपकार करते है
न बने तो श्रीगुरु क्या करें? - जै
से उपदेश देते है

चरणानुयोग में उपदेश की पद्धति दो प्रकार की है

(1) निश्चय पूर्वक व्यवहार का उपदेश, तथा (2) अकेले व्यवहार का उपदेश।

यहाँ तो उपदेश की शै
है

जिस जीव की धर्म प्राप्ति की योग्यता न देखे उस जीव को दया, दानादि तथा पूजनादि
करने का उपदेश देते है

उसमें लीन होना धर्म है

इसप्रकार जिस जीव को निश्चय का ज्ञान नहीं है
है

उपदेश देते है

उपदेश देते है

उसके चार गतियों का अभाव तो नहीं होता।

(यहाँ बारंबार उपदेश देते हैं
 सकता है
 है
 है
 का उपदेश देकर पुण्य में लगाते हैं
 ही नहीं।

जिसको निश्चय-व्यवहार का ज्ञान है
 देते हैं
 (योग्यता से) ज्ञान करता है

जिसमें समझने की योग्यता है
 व्यवहार का उपदेश देते हैं
 है
 पुण्य करने का उपदेश देते हैं
 मे आसक्तता नहीं करना चाहिये- इत्यादि कहते हैं
 आत्मा का भान करने वाले को होता है
 है
 है

परन्तु शिष्य स्वयं समझे तो गुरु ने उपकार किया-ऐसा कहा जाता है

तथा असंज्ञी जीव तो उपदेश ग्रहण करने योग्य ही नहीं है
 देना ? उनका तो इतना ही उपकार किया कि अन्य जीवों को उनकी दया पालन का उपदेश
 दिया, कहा कि उनको दुःख नहीं देना। परन्तु इस भाव से भी शुभभाव है

‘तथा जो जीव कर्म की प्रबलता से निश्चय मोक्षमार्ग को प्राप्त नहीं कर सकतें, -यह
 निमित्त का कथन है
 करता है
 स्वयं विकार करता है

(आत्मा के विकारी-अविकारी भावों का) कर्ता नहीं है
 जिसका पुरुषार्थ विपरीत है
 व्यवहार उपदेश देते है
 स्वर्गादिक में इन्द्रियसुख के कारणरूप पुण्य कार्यों में लगाते है
 अशुभभाव करे तो नरक में जाये। आत्मा का भान नहीं है
 ऐसे प्राणी को शुभभाव करने को कहते है
 इस प्रकार उसको पुण्यकार्य में लगाते है
 उतना ही उपकार हुआ।

माँस भक्षण करना, शिकार खेलना पापभाव है
 है

तथा पापी के तो पाप वासना ही रहती है
 धर्म का निमित्त नहीं है
 है

“अथवा कर्म शक्तिहीन हो जाये तो वह मोक्षमार्ग को प्राप्त हो जाता है
 कथन है

का आश्रय छोड़कर स्वभाव का आश्रय करे तो मोक्षमार्ग को प्राप्त कर लेता है
 नहीं करे तो धर्म को प्राप्त नहीं कर सकता। यहाँ बतलाते है
 श्रवण के निमित्त मिलते है

इसप्रकार व्यवहार के उपदेश से हिंसादि पापों से छुड़ाकर दयादि शुभभाव कराते है

तथा जो जीव सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र को प्राप्त हुए है
 यह उपकार किया कि उनको निश्चय सहित व्यवहार का उपदेश दिया है
 स्वभाव की दृष्टि होवे तो शुभराग को व्यवहार कहते है

तात्पर्य यह है
 का उपदेश होता है
 है

आराधना' शास्त्र में कथन है
विकल्प उत्पन्न हो तो अन्य मुनि उन्हें उपदेश देते हैं
अन्तर में पड़ा है
अभिलाषा का परित्याग कर दो औ

इसी प्रकार धर्मसन्मुख जीव को भी निश्चय सहित व्यवहार का उपदेश देते हैं
जीव को धर्मदशा प्रगट होती है
पाँचवें गुणस्थान में बारह अणुव्रतादि का विकल्प होता है
का उपदेश देकर जीवों को मोक्षमार्ग में प्रवर्तन कराते हैं

इस प्रकार श्रीगुरु तो सबका ऐसा ही उपकार करते हैं
उपकार नहीं करता। धर्मी जीव स्वयं समझता है
अज्ञानी को आपने ही आत्मा दिया -ऐसा कहकर विनयभाव दर्शाता है
सिद्धान्तचक्रवर्ती आचार्य भी कहते हैं
प्रसाद से मैं
हूँ
के प्रति ऐसा ही बहुमान का विकल्प आता है
अन्तर निश्चय स्वभाव के विनय बिना (गुरु आदि का) यथार्थ विनय नहीं हो सकता है
'पंचास्तिकाय' शास्त्र की टीका में कहा है
है

इसप्रकार जब शिष्य अपनी योग्यता से समझता है
परन्तु किसी जीव का ऐसा उपकार न हो तो वहाँ श्रीगुरु क्या करें? उन्होंने तो जै
उपाय ही किया है

इसप्रकार चरणानुयोग में दो प्रकार से उपदेश देते हैं
आधीन नहीं है

....वहाँ व्यवहार उपदेश में तो बाह्य क्रियाओं की ही प्रधानता है
से जीव पापक्रिया छोड़कर पुण्यक्रियाओं में प्रवर्तता है

परिणाम भी तीव्रकषाय छोड़कर कुछ मन्दकषायी हो जाते हैं
इसप्रकार है

बाह्य क्रियाओं का उपदेश देते हैं

तथा निश्चयसहित व्यवहार के उपदेश में परिणामों की ही प्रधानता है
उपदेश से तत्त्वज्ञान के अभ्यास द्वारा व वै
परिणाम के अनुसार बाह्य क्रिया भी सुधर जाती है
सुधरती ही है

अब व्यवहार के उपदेश में बाह्य क्रिया की प्रधानता है
उपदेश है

हिंसा, झूठ, चोरी आदि परिणाम करता हो उससे कहते हैं
परन्तु वहाँ जीव जड़ की क्रिया छोड़ सकता है
है

क्रिया छोड़कर पुण्य क्रिया करने को कहते हैं
इससे कहीं शुभराग से धर्म नहीं हो जाता। धर्म तो आत्मा की पहिचान करने पर ही होता है
मौ

करे तो मौ

परन्तु उपदेश की ऐसी पद्धति है
करते हैं

अब ज्ञानी, ज्ञानी को उपदेश देते हैं
देते हैं

नुकसान नहीं होता। रागादि निश्चय से तेरे परिणाम है
निश्चय-व्यवहार का उपदेश देते हैं

आत्मा स्वयं अपने परिणाम का कर्ता है
आत्मा है

सम्प्रदान आदि छह कारक आत्मा के हैं

चाहिये। निमित्तकर्ता, निमित्तकर्म, निमित्त साधन-करण, निमित्त सम्प्रदान इत्यादि छह कारकों का उपचार कर्म में आता है

है

कर्म विकार का करण (साधन) व्यवहार से है

से है

है

छह सामान्यगुण, चार अभाव औ
जाता है

जै

की पीली झाँई अपनी योग्यता से हुई है

कहा जाता है

का आधार है

कारक स्वतंत्र है

यहाँ निश्चय सहित व्यवहार के उपदेश की बात चलती है

स्वयं तत्त्वज्ञान का अभ्यास करके, राग घटाने का अभ्यास करके अपने परिणाम सुधारते हैं

अहो! मैं

नहीं है

सुधर जाते हैं

परन्तु भाई! सत्य बात सुनने से तो परिणाम सुधरते हैं

सुधरते हैं

मुनिदशा होती है

है

सकता। अहिंसा पालन का भाव हो तब किसी को मारने के लिये हाथ में छुरी ले ऐसा नहीं होता।

तात्पर्य यह है

....इसप्रकार दो प्रकार के उपदेश में जहाँ व्यवहार का ही उपदेश हो वहाँ सम्यग्दर्शन के अर्थ अरहन्तदेव, निर्ग्रन्थगुरु, दया-धर्म को ही मानना, औ मानना; तथा जीवादिक तत्त्वों का व्यवहार स्वरूप कहा है शंकादि पच्चीस दोष न लगाना; निःशंकितादि अंग व संवेगादिक गुणों का पालन करना इत्यादि उपदेश देते है

तथा सम्यग्ज्ञान के अर्थ जिनमत के शास्त्रों का अभ्यास करना, अर्थ-व्यंजनादि अंगों का साधन करना इत्यादि उपदेश देते है व सर्वदेश हिंसादि पापों का त्याग करना, व्रतादि अंगों का पालन करना इत्यादि उपदेश देते है आखड़ी आदिक का ही उपदेश देते है ग्वाले को नमस्कार मन्त्र जपने का उपदेश दिया, गृहस्थ को चै कार्य का उपदेश देते है

इसप्रकार चरणानुयोग में दो प्रकार के उपदेश में जहाँ व्यवहारनय का ही उपदेश हो वहाँ (सम्यग्दर्शन के लिये कहा जाता है में उनको मानना पुण्य है की भेद सहित श्रद्धा करने को कहते है दानादि पुण्यास्रव है पुण्य होता है सहित श्रद्धा को साधन कहा जाता है पुण्य बंध होता है श्रद्धा से अथवा व्यवहार करते-करते धर्म होगा। ऐसा मानने वाला चरणानुयोग को नहीं समझा है

तथा शंकादि पच्चीस दोष नहीं लगाना ऐसा कहते है मानना तथा उनको मानने वालों को भी नहीं मानना; क्योंकि वे अनायतन है नहीं मानने से शुभभाव होता है

करना, कांक्षा नहीं करना- इत्यादि श्रद्धा से शुभभाव होता है
 चरणानुयोग में अशुभ छुड़ाने औ
 को मानने वाले को विशिष्ट प्रकार का पुण्य होता है
 चै

दशा नहीं होती। जीव ने अनंतबार अट्ठाईस मूलगुणों का पालन किया है
 सन्मुख नहीं हुआ- इस कारण धर्म नहीं हुआ। इसलिये शुभराग साधन नहीं है
 बंध का कारण है

अरहंत देव-निर्ग्रन्थ गुरु को मानना व्यवहार समकित है
 वह व्यवहार व्यवहाराभास है

यहाँ दो प्रकार के उपदेश में अकेले व्यवहार की बात चलती है
 माननेरूप अशुभभाव छोड़ता है
 शुद्ध स्वभाव प्रगट करे तो शुभ को निमित्त कहा जाता है
 हेय मानता है

शुभराग को उपचार से कारण कहते है
 भाव से बंध होता है
 शुभराग को तथा तीर्थकर प्रकृति को हेय मानता है

अब व्यवहार सम्यग्ज्ञान की बात करते है
 षटखंडागम आदि व्यवहार के शास्त्र है
 अभ्यास करना शुभभाव है
 शास्त्रों का अभ्यास तो व्यवहार धर्म का कारण भी नहीं है
 भगवान के ज्ञान में आया औ
 अभ्यास करने के लिये कहते है
 होते है

तथा जिसके निमित्त से ज्ञान प्राप्त हुआ हो उसकी विनय करना चाहिये, भगवान के
 शास्त्र की विनय करना चाहिये- ऐसा उपदेश में आता है

भी कहे कि हमारे शास्त्र में भी ऐसी ही बात है
निश्चय-व्यवहार दोनों है
नहीं होने से निश्चय का चोर तो है
उपदेश आता है

अब सम्यक्चारित्र के उपदेश की कथन पद्धति कहते हैं
का पालन करो। देखो, जिनेन्द्र भगवान के मत के अलावा अन्यमत का आचरण तो व्यवहार
आचरण भी नहीं है
को बारह व्रत के पालन का तथा उपवासादि करने का कथन है
है
धर्म नहीं होता।

भगवान द्वारा कथित चरणानुयोग की ऐसी पद्धति है
जिनसे व्यवहार सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र न हो सकें ऐसे जीवों को कोई भी प्रतिज्ञा लेने
को कहते हैं
माँस त्यागो, भैं
नमस्कार मंत्र जपने को कहा, उससे पुण्य होता है

चिदानंद आत्मा का आदर करने से धर्म होता है
है
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र को भी नहीं समझते उनसे कहते हैं
चाहिये। तथा प्रभावना करने के लिये कहते हैं
सबसे पुण्यबंध होता है
की क्रिया हुई इसलिये शुभभाव हुआ- ऐसा भी नहीं है
परिणामों को जानना व्यवहार है

अज्ञानी कहता है
सकता है
रूपये खर्च करो। यदि वहाँ कषायों की मंदता करे तो पुण्य है

करे तो पाप होता है
है

सत्यमार्ग तो जो है
इसके साथ कोई संबंध नहीं है
धर्म होता है
अकेले व्यवहार की बात की।

....तथा जहाँ निश्चय सहित व्यवहार का उपदेश हो, वहाँ सम्यग्दर्शन के अर्थ
यथार्थ तत्त्वों का श्रद्धान कराने का
व्यवहारस्वरूप है
परद्रव्य में रागादि छोड़ने के प्रयोजन सहित उन तत्त्वों का श्रद्धान करने का उपदेश
देते हैं
स्वयमेव उनका मानना छूट जाता है
के अर्थ संशयादि रहित उन्हीं तत्त्वों को उसी प्रकार जानने का उपदेश देते हैं
जानने को कारण जिनशास्त्रों का अभ्यास है
जिनशास्त्रों का भी अभ्यास स्वयमेव होता है
सम्यक्चारित्र के अर्थ रागादि दूर करने का उपदेश देते हैं
तीव्ररागादिक का अभाव होने पर उनके निमित्त से जो एकदेश व सर्वदेश पाप क्रिया
होती थी वह छूटती है
मंदराग का भी अभाव होने पर शुद्धोपयोग की प्रवृत्ति होती है

तथा यथार्थ श्रद्धान सहित सम्यग्दृष्टियों के जै
या भक्ति होती है
उपदेश देते हैं

इसतरह दो प्रकार से चरणानुयोग में उपदेश जानना।....

अब निश्चय पूर्वक व्यवहार के उपदेश की बात करते हैं
लिये तत्त्वार्थों का यथार्थ श्रद्धान करने को कहते हैं

ज्ञायक मूर्ति है

इत्यादि प्रकार से सात तत्त्वों का यथार्थ श्रद्धान कराते है

देव-शास्त्र-गुरु की श्रद्धा व्यवहार समकित है

सर्वप्रथम सत्य समझने की जिज्ञासा होना चाहिये । भूल तो अनादि से चली ही आ रही है

तो भूल कभी नहीं मिट सकती ।

आत्मा ज्ञानस्वरूप है

स्वरूप की श्रद्धा करना निश्चय है

अभाव पूर्वक वीतरागता होना निश्चय है

उपचार है

है

देव, निर्ग्रन्थ गुरु औ

उनकी श्रद्धा छूट जाती है

है

अब सम्यग्ज्ञान की बात करते है

जो आत्मा का ज्ञान होता है

व्यवहार है

पुण्यबंध का कारण है

आत्मा उपदेश नहीं दे सकता, वाणी वाणी के कारण निकलती है

है

शास्त्र की लिखनेरूप अवस्था शास्त्र के कारण से होती है उसमें (जीव का) शुभ विकल्प निमित्त होने से जीव ने शास्त्र लिखा ऐसा कहा जाता है

देखो,कर्त्ता के दो प्रकार है

है

(जीव) स्वयं है

कर्तागुण है

कर्ताबुद्धि अथवा पर्यायबुद्धि हो जाती है

होता। स्वभावदृष्टि होने पर भी कमजोरी (अस्थिरता) के राग का परिणमन होता अवश्य है
वह परिणमन मेरा है

नहीं है

‘मै

क्या ? तो भी इस राग को करूँ – ऐसी पर्यायबुद्धि होने पर मिथ्यादृष्टि होता है

– ऐसी बुद्धि वाले को ‘जानू’ –ऐसा नहीं रहता। जिस समय जो राग होता है
का मेरा स्वभाव है

है

है

इसप्रकार यहाँ कहा है

का अभ्यास व्यवहार ज्ञान है

करने से पुण्य परिणाम होते हैं

सम्यग्ज्ञान होने पर जै

सहित व्यवहार का उपदेश देते हैं

अब सम्यक्चारित्र के लिये दिये जाने वाले उपदेश की बात करते हैं

का राग छोड़ो औ

चारित्र नहीं है

त्याग है

आदि के परिणामरूप प्रवृत्ति होती है

मुनि को तीन कषाय चौ

वह व्यवहार है

आत्मा ज्ञानानंद स्वरूप है

से नहीं आता। पूर्ण शुद्धता ही मुक्ति है

मै
है

राग का अभाव हो गया है
महाव्रतों को उपचार से आचरण कहते हैं

* सम्यग्दर्शन होने पर कुदेवादिक की श्रद्धा छूटकर सुदेवादिक की श्रद्धा रह जाती है
* सम्यग्ज्ञान हुआ इसलिये मिथ्याशास्त्रों का उपदेश/अभ्यासादि छूट जाता है
शास्त्रों का अभ्यास रह जाता है

* सम्यक्चारित्र होने से पाप की प्रवृत्ति छूट जाती है
है

तथा वस्त्र-पात्रादि रखने के राग का अभाव हो जाता है
रह जाता है

बारह व्रतों का विकल्प औ
है

जिस जीव को सम्यग्दर्शन है
सहित-व्यवहार का उपदेश दिया जाता है
उसमें नहीं रह सके तब भक्ति पूजादि के परिणाम आते हैं
कोई प्रश्न पूछता है
हो?

उत्तर:- आत्मा मन्दिर अथवा मानस्तंभादि जड़ की क्रिया का स्वामी नहीं है
को स्वभाव का भान होने पर भी जब वह उसमें स्थिर नहीं हो पाता तबतक शुभराग आता है
परन्तु उससे धर्म नहीं होता तथा शुभभाव के कारण जड़ की क्रिया भी नहीं होती। जड़ की
क्रिया आत्मा कर सकता है
कषाय की मंदता करता है
कराते हैं

जीव ने मन्दिर बनाया- यह व्यवहार का कथन है
था इसकी पहिचान कराने के लिये ऐसा कथन योग्य है
है

ज्ञानी को यह भान होने पर भी कि शरीरादि की क्रिया जड़ की है
राग शेष होने के कारण पूजा-भक्ति का शुभभाव आता है
शुभभाव धर्म के लिये बेकार-व्यर्थ है
कहते हैं
चरणानुयोग में ऐसा उपदेश आता है
शुभभाव आता है
बनवाता है
खर्च करना चाहिये। सम्यग्दृष्टि को भान है
दया, दानादि का भाव संसार का कारण है
उन्हें छोड़कर प्रभावना करो, जिन चै
धर्मी जीव को सच्चे देव-शास्त्र-गुरु के प्रति प्रमोदभाव आये बिना नहीं रहता; तो भी वह
समझता है
व्रतादि करो, भक्ति-पूजा करो, स्वाध्याय करो, एकान्त स्थान में निर्विकल्प अनुभव करो-
इत्यादि।

इसप्रकार चरणानुयोग मे आचरण कराने का उपदेश दो प्रकार का दिया जाता है
जीव धर्म को नहीं समझता उसको अकेले व्यवहार का उपदेश देते हैं
है
की क्रिया होती है
हो जाता। तथा सम्यग्दृष्टि या सम्यग्दर्शन पाने के योग्य जीव को निश्चय सहित व्यवहार का
उपदेश देते हैं

**....तथा चरणानुयोग में तीव्रकषायों का कार्य छुड़ाकर मंदकषायरूप कार्य
करने का उपदेश देते हैं
जानकर जितने कषाय घटें उतना ही भला होगा - ऐसा प्रयोजन वहाँ जानना। जै**

- जिन जीवों के आरम्भादि करने की व मन्दिरादि बनावाने की, व विषय सेवन की व क्रोधादि करने की इच्छा सर्वथा दूर होती न जाने, उन्हें पूजा-प्रभावनादिक करने का व चै

करने का व धर्मात्मा पुरुषों की सहाय आदि करने का उपदेश देते है परम्परा कषाय का पोषण नहीं होता। पापकार्यों में परम्परा कषाय का पोषण होता है

छूटता जाने उतना पापकार्य छुड़ाकर उन्हें सम्यक्त्व व अणुव्रतादि पालने का उपदेश देते है

पूजादिक कार्य व सर्व पापकार्य छुड़ाकर महाव्रतादि क्रियाओं का उपदेश देते है तथा किंचित् रागादिक छूटते जानकर उन्हें दया, धर्मोपदेश, प्रतिक्रमणादि कार्य करने का उपदेश देते है

इसलिये उन्हें कुछ उपदेश ही नहीं है

तथा चरणानुयोग में कषायी जीवों को कषाय उत्पन्न करके भी पाप को छुड़ाते है

भयकषाय उत्पन्न करके पापकार्य छुड़वाते है

दिखाकर उन्हे लोभकषाय उत्पन्न करके धर्मकार्यों में लगाते है इन्द्रियविषय, शरीर, पुत्र, धनादिक के अनुराग से पाप करता है रहता है

अरतिकषाय कराते है

पुत्रादिक को धनादिक के ग्राहक बतलाकर वहाँ द्वेष कराते है

मरण, क्लेशादिक का कारण बतलाकर वहाँ अनिष्टबुद्धि कराते है

से विषयादि में तीव्रराग दूर होने से उनके पापक्रिया छूटकर धर्म मे प्रवृत्ति होती है

तथा नामस्मरण, स्तुतिकरण, पूजा, दान, शीलादिक से इस लोक में दारिद्र्य कष्ट दूर होते है

उत्पन्न करके उन धर्मकार्यों में लगाते है

इसप्रकार अन्य उदाहरण जानना।....

तथा चरणानुयोग में हिंसा, झूठ, चोरी आदि के तीव्र पापपरिणाम छुड़ाने के लिये दया, दानादि के मंद कषायरूप भाव करने का उपदेश देते हैं ही है
 कषाय छुड़ाने के लिये दया, दानादि के करने का उपदेश है
 जितनी कषाय घटे उतना तो भला होगा- ऐसा प्रयोजन वहाँ जानना चाहिये।

जै

विषय सेवन की बुद्धि नहीं छूटी है
 दया-दान में धन खर्च करो, पाठशाला बनाओ, चै
 तो क्या वहाँ आत्मा जड़ की क्रिया कर सकता होगा ? नहीं; आत्मा जड़ की क्रिया नहीं कर सकता; परन्तु शुभ परिणाम में रहने के लिये ऐसा कहते हैं
 इत्यादि बनाने को कहते हैं
 कमाकर आता है
 चेष्टा करता है
 नृत्यादि करने को कहते हैं
 घूँघरू बांधकर नृत्य करता है
 भक्ति करता है
 बालक की तरह नृत्य करता है
 भी ऐसा शुभभाव आये बिना नहीं रहता। देखो ! एक औ
 नाचना चाहिये औ
 व्यक्ति चँवर लेकर नृत्य करता है
 को कहते हैं

भगवान को अथवा जिनप्रतिमा को देखकर धर्मी को प्रमोद आये बिना नहीं रहता- ऐसा उपदेश चरणानुयोग में आता है
 -हे नाथ ! जब आपका जन्म होता है
 फिर आपकी स्तुति करने पर यह शरीर सुन्दर हो जाए इसमें क्या आश्चर्य है

साता का का उदय आता है
 इन्द्र भी भगवान की स्तुति करते हैं
 शुभभाव का ज्ञान कराते हैं

संसार के सगे-संबंधियों की सहायता का भाव आता है
 का उपदेश दिया जाता है
 ऐसा कहा जाता है
 कोई एक दूसरे की सहायता नहीं कर सकता; यद्यपि यह बात तो यथार्थ ही है
 शुद्धस्वभाव में स्थिर न रह सके तब साधक को भी ऐसा शुभभाव आता है

यद्यपि शुभराग भी है
 कहते हैं
 शुभभाव आता ही नहीं ऐसा समझने वाला भी मूढ़ है

धर्मात्मा जीवों को निर्धन जीवों का अनादर नहीं करना चाहिये; अपितु उनकी मदद
 करना चाहिये- ऐसा उपदेश (चरणानुयोग में) देते हैं
 सहायता नहीं कर सकता; तथापि अशुभराग छुड़ाने औ
 है

चरणानुयोग में यात्रा करने, जिनमन्दिर बनवाने इत्यादि का उपदेश देते हैं
 कषायों का पोषण नहीं है
 यहाँ कथन की अपेक्षा समझना चाहिये। तीव्र कषाय की अपेक्षा से मंदकषाय को ठीक कहा
 है

राग पर है
 पापकार्यों में परम्परा कषायों का पोषण होता है
 में लगाया जाता है
 अणुव्रत पालन का उपदेश देते हैं

तथा मुनियों के संसार छूट गया है
 पूजादि कार्य तथा समस्त पापकार्य छुड़ाकर महाव्रतादिरूप कार्यों का उपदेश देते हैं

जिनको किंचित् रागादि छूटते जानते है
 उपदेश देते है
 है
 नहीं है

चरणानुयोग में कषायी जीवों को कषाय उत्पन्न कराकर भी धर्म में लगाते है
 का फल नरक के दुःख बतलाकर भय उत्पन्न कराकर पाप छुड़ाते है
 नरक में जाओगे औ
 काटे-मारे जाओगे -इसप्रकार भय बताकर पुण्य में लगाते है
 ऐसा कहते है
 है
 लोभ बताकर शुभपरिणाम में लगाते है

धनादि की तृष्णा वाले को दया, दानादि का उपदेश देते है
 विषय, शरीर, पुत्र औ
 इन्द्रिय विषयों को मरण औ
 जीव चौ
 कहते है
 की अवस्था क्षीण होगी। स्त्री, पुत्र आदि सब ठगों की टोली है
 कहकर अरति उत्पन्न कराकर शुभभावना कराते है
 परन्तु यहाँ धर्म नहीं है

इसप्रकार यहाँ आचरण कराने के उपदेश की पद्धति दर्शाते है
 है

आत्मा ज्ञानानंद स्वभावी है
 नहीं है
 धर्मात्मा को भी अपूर्णदशा में इसप्रकार का राग आता है
 शरीर अशुचि है

दिया जाता है
 शरीर हाड़-माँस से भरा है
 धर्म नहीं है
 है
 कराते है
 धर्म तो आत्मा के आश्रय से होता है
 संसार में आश्चर्य है
 की मंदता कराते है
 ऐसा भय बताते है
 है
 परन्तु इससे धर्म हो जाता है
 अज्ञानी पुण्य को धर्म मानता है
 किसी निमित्त से, राग से, अथवा बाहर से धर्म नहीं होता ।

भगवान की भक्ति करो, ब्रह्मचर्य का पालन करो इससे दरिद्रता नष्ट होगी- ऐसा भी
 चरणानुयोग की उपदेश पद्धति में कहते है
 नष्ट होती है
 का प्रयोजन है
 है
 इसीप्रकार अन्य उदाहरण भी जानना चाहिये ।

....यहाँ प्रश्न है

समाधान:- जै

शीतांग से मरण होता जाने, वहाँ वै
 ज्वर होने के पश्चात् उसके जीने की आशा हो तब बाद में ज्वर को भी मिटाने का
 उपाय करता है
 से पापकार्य होता जाने, वहाँ श्रीगुरु उनको पुण्यकार्य के कारणभूत कषाय होने का

उपाय करते है

मिटाने का उपाय करते है

प्रश्न:- कोई कषाय छुड़ाकर कोई अन्य कषाय कराने का क्या प्रयोजन है

उत्तर:- जै

जाने तो वै

कहता है

का पानी व बर्फ लगाने को कहता है

विषय भोग के भाव भी बुरे है

पुण्यकार्य के कारणभूत कषाय मंदता करने को कहते है

बै

का परिज्ञान कराया कि धर्म शुद्ध चिदानंद आत्मा के आश्रय से होता है

जीव को शुभराग में ही रखने का प्रयोजन नहीं है

करते है

काम करता हो, तो उससे कहते है

करना- इत्यादि करने को कहते है

इसप्रकार यहाँ प्रयोजन जानना चाहिये।

....तथा चरणानुयोग में जै

द्वारा वर्णन करते है

समझाते है

लक्ष्मी को कमलवासिनी कही व समुद्र में विष औ

विष की भगिनी कही है

वहाँ कितने ही उदाहरणादि झूठे भी है

है

यहाँ कोई कहे कि झूठ का तो दोष लगता है

उसका उत्तर:- यदि झूठ भी है
नहीं कहते। तथा सच भी है

अलंकार-युक्ति-नामादिक में वचन अपेक्षा झूठ-सच नहीं है
झूठ-सच है
परन्तु शोभा के प्रयोजन का पोषण करता है
में छत्र को ही दंड है
पाया जाता है
प्रयोजन का पोषण करता है
लिखा है
इनका अक्षरार्थ है
इसलिये झूठ नहीं है

इसप्रकार अन्य मतादिक के उदाहरणादि देते हैं
का तो श्रद्धान कराना है
है

चरणानुयोग में जीव जिस प्रकार पाप को छोड़कर धर्म में लगे- ऐसे अभिप्राय पूर्वक
अनेक युक्तियों से वर्णन करते हैं
समझाते हैं
यह बात सत्य नहीं है
लक्ष्मी को विष की बहिन कहा है
है
उपमा दी है
के कारण मरता है
सच्चे प्रयोजन का पोषण करता है

कोई कहे कि यहाँ झूठ का दोष तो लगता है
सच्चा है

पोषण करे तो झूठ है
नहीं है

जै

वहाँ शोभा बतलानी है
चाहिये।

....तथा चरणानुयोग में छद्मस्थ की बुद्धिगोचर स्थूलपने की अपेक्षा से लोकप्रवृत्ति की मुख्यता सहित उपदेश देते हैं अपेक्षा नहीं देते; क्योंकि उसका आचरण नहीं हो सकता। यहाँ आचरण करने का प्रयोजन है

जै

क्रियाओं में त्रसहिंसा होती है
परन्तु इसके त्रस मारने का अभिप्राय नहीं है
उसे नहीं करता है

तथा मुनि के स्थावरहिंसा का भी त्याग कहा है
गमनादि करते हैं
अवगाहना इतनी छोटी होती है
जलादि में ही है
भी जानते हैं
लोक में भूमि खोदना तथा अप्रासुक जल से क्रिया करना इत्यादि प्रवृत्ति का नाम स्थावर हिंसा है
नहीं करते; इसलिये मुनि को सर्वथा हिंसा का त्याग कहते हैं
असत्य, स्तेय, अब्रह्म, परिग्रहका त्याग कहा है

केवलज्ञान के जानने की अपेक्षा तो असत्यवचनयोग बारहवें गुणस्थानपर्यन्त कहा है
उदय नववें गुणस्थान पर्यन्त है

समवसरणादि केवली के भी होता है
 नहीं है
 कुशील सेवन करता है
 नहीं है

तथा जिस प्रकार मुनि के मूलगुणों में पंचेन्द्रियों के विषय का त्याग कहा है
 परन्तु इन्द्रियों का जानना तो मिटता नहीं है
 हो तो यथाख्यातचारित्र हो जाये सो हुआ नहीं है
 अभाव हुआ है
 इन्द्रियविषय का त्याग कहा है

इसप्रकार अन्यत्र जानना ।....

चरणानुयोग में छद्मस्थ के ख्याल में आवे ऐसी अपेक्षा से लोकप्रवृत्ति की मुख्यता सहित
 उपदेश देते है
 उसका आचरण नहीं हो सकता औ
 को त्रसहिंसा का त्याग कहा है
 सेवनादि में त्रसहिंसा तो होती है
 में भी कोई त्रसजीव मर जाता है
 भी जानता है
 त्रसजीव को मारा -ऐसा लोक में कहा जाता है
 त्रसहिंसा का त्याग कहा है

तथा मुनि के स्थावरहिंसा का त्याग कहा है
 उनमें एकेन्द्रिय जीव है
 में उतरते है
 जिसे हिंसा कहते है
 पर भी वे अन्दर चले जाते है
 नहीं होती । तथा उनकी स्थिति पृथ्वी व जलादि में ही होती है

अवधिज्ञान से जानते हैं
हैं

सर्वज्ञ तीर्थकर भगवान के परमौ
नहीं होती। किन्ही परिहारविशुद्धि चारित्रवंत मुनि के शरीर के निमित्त से भी हिंसा नहीं होती।

यहाँ कहते हैं
का भाव नहीं है
जिसको लोक में हिंसा कहते हैं
पानी को गर्म नहीं किया जाये तबतक वह सचित्त कहलाता है
के पत्तों आदि में जीव है
स्थूल जीवों को नहीं मारने को हिंसा का त्याग कहते हैं
औ

मुनिराज झूठ नहीं बोलते, इस अपेक्षा से उनको सत्यवादी कहा है
से बारहवें गुणस्थान तक असत्य वचनयोग है
तथापि योग का निमित्त है
ग्रहण कहा है
हैं

हैं

तथा (चरणानुयोग में) मुनि को ब्रह्मचारी कहा है
पूर्वक वेद का उदय होने पर भी ब्रह्मचारी कहा है
है
परिग्रह है
अभिप्राय नहीं है
है
का त्याग कहा है
यह कथन नहीं है

तथा मुनि के मूलगुणों में पाँच इन्द्रिय के विषयों का त्याग कहा है

जानना तो मिटता नहीं है
 चाहिये; परन्तु वह नहीं है
 औ
 है
 चाहिये। मुनिराज को आत्मा का अवलम्बन है
 प्रमाद है
 इन्द्रिय के विषयों का त्याग कहा गया है

**....तथा व्रती जीव त्याग व आचरण करता है
 अनुसार व लोकप्रवृत्ति के अनुसार त्याग करता है
 त्याग किया, वहाँ चरणानुयोग में व लोक में जिसे त्रसहिंसा कहते है
 किया है
 ही नहीं। वहाँ जिस त्रसहिंसा का त्याग किया, उसरूप मन का विकल्प न करना
 सो मन से त्याग है
 प्रवर्तना सो काय से त्याग है
 पद्धति सहित ही होता है**

व्रती जीव त्याग व आचरण करता है
 के अनुसार ही करता है
 लोक में जिसको त्रसहिंसा कहते है
 नहीं हो सकता। जल में औ
 है
 मन से त्याग है
 प्रवर्तना वह काया से त्याग है
 (कृत-कारित-अनुमोदना) से नवकोटि से - त्याग होता है
 त्याग-ग्रहण होता है

....यहाँ प्रश्न है

वहाँ छठवें, गुणस्थान में सर्वथा बारह अविरतियों का अभाव कहा, सो किस प्रकार कहा ?

उत्तर:- अविरति भी योगकषाय में गर्भित थी, परन्तु वहाँ भी चरणानुयोग की अपेक्षा त्याग का अभाव उसहीका नाम अविरति कहा है

है

स्वेच्छाचारी मन की पापरूप प्रवृत्ति के अभाव से मन-अविरति का अभाव कहा है ऐसा जानना।....

प्रश्न:- जड़ औ

केवलज्ञान की अपेक्षा तारतम्यरूप कथन है
अविरति का सर्वथा अभाव कहा है

उत्तर:- अविरति भी योग कषाय में गर्भित थी। छहकाय के जीवों की हिंसा का भाव अविरतिभाव है

की स्वेच्छाचारीरूप प्रवृत्ति नहीं होती, इसलिये अविरति का त्याग कहा है

सम्यग्दर्शन के उपरांत जिनको राग घट गया है

ग्रहण करते हैं

उग्रदशा वर्तती है

वह अलग बात है

होते हैं

मुनि को किंचित् राग होता है

परन्तु तीन कषाय चौ

उग्रता का प्रयोग करते हैं

....तथा चरणानुयोग में व्यवहार-लोक-प्रवृत्ति की अपेक्षा ही नामादिक कहते

है

जिसके जिनदेवादिक का श्रद्धान पाया जाये वह तो सम्यक्त्वी, जिसके उनका श्रद्धान नहीं है

चरणानुयोग के ही सम्यक्त्व मिथ्यात्व ग्रहण करना। चरणानुयोग की अपेक्षा सम्यक्त्व-मिथ्यात्व ग्रहण करने से वही जीव ग्यारहवें गुणस्थान में था वही अन्तर्मुहूर्त में पहले गुणस्थान में आये, तो वहाँ दातार पात्र-अपात्र का कै

तथा द्रव्यानुयोग की अपेक्षा सम्यक्त्व-मिथ्यात्व ग्रहण करने पर मुनिसंघ में द्रव्यलिंगी भी है

कठिन है

चिह्न द्वारा ठीक (निर्णय) हो जाये औ

होगा कि इसकी भक्ति क्यों नहीं की? इस प्रकार उसका मिथ्यादृष्टिपना प्रगट हो तब संघ में विरोध उत्पन्न हो; इसलिये यहाँ व्यवहार सम्यक्त्व-मिथ्यात्व की अपेक्षा कथन जानना।....

चरणानुयोग में व्यवहार लोकप्रवृत्ति की अपेक्षा नामादिक कहते है

पात्र तथा मिथ्यादृष्टि का अपात्र कहा है

आचरण है

परीक्षा की है

चाहिये। इसका कारण यह है

मिथ्यात्व भी चरणानुयोग की अपेक्षा कहते है

या मिथ्यात्व ग्रहण किये जायें तो जो जीव ग्यारहवें गुणस्थान में हो वही वापिस अन्तर्मुहूर्त में पहले गुणस्थान में आ जाता है

पलट जाये तो उसके अंतरंग परिणामों को दातार कै

में देव-शास्त्र-गुरु की श्रद्धा हो उसको पात्र जानकर दान दिया जाता है

इसी प्रकार यदि वहाँ द्रव्यानुयोग की अपेक्षा से सम्यक्त्व-मिथ्यात्व ग्रहण किये जायें तो मुनि संघ में द्रव्यलिंगी भी हैं

परन्तु अन्तरंग में मिथ्या परिणाम हों तो उसका पता अन्य को कै

चरणानुयोग के अनुसार तो नहीं हो सकती; परन्तु द्रव्यानुयोग के अनुसार भी सत्य निर्णय होना कठिन है

चिह्न द्वारा यह निर्णय हो भी जाये कि अमुक द्रव्यलिंगी मुनि की बाह्य दशा तो सही है
 अन्तरंग में सूक्ष्म मिथ्यात्व है
 हो जाता है
 करता है

सूक्ष्म परिणामों के द्वारा पात्र-अपात्र की परीक्षा नहीं हो सकती। किसी समकिति जीव को द्रव्यानुयोग के अनुसार किसी द्रव्यलिंगी मुनि की श्रद्धा में शंका हो जाये; यहाँ द्रव्यलिंगी अर्थात् नग्न दिगम्बर मुनि की बात है पर ख्याल में आ जाये कि इसकी सूक्ष्म भूल है हो तो सम्यग्दृष्टि भी उसकी विनय करता है

मुनि की बाह्य प्रवृत्ति समान है
 बात में भूल है
 है
 में विरोध हो, इसलिये प्रगट नहीं करते। स्थूल भूल नहीं है
 से वै
 से कथन जानना चाहिये।

....यहाँ कोई प्रश्न करे- सम्यक्त्वी तो द्रव्यलिंगी को अपने से हीनगुणयुक्त मानता है

**समाधान:- व्यवहारधर्म का साधन द्रव्यलिंगी के बहुत है
 व्यवहार ही है
 अपेक्षा बड़ा जानकर उसका सत्कार करता है
 है
 मानकर उसकी भक्ति करता है
 करे उसे तपस्वी कहते है
 तपस्वी है
 तपस्वी कहते है**

ऐसे ही अन्य प्रकार सहित चरणानुयोग में व्याख्यान का विधान जानना।....

प्रश्न:- सम्यग्दृष्टि जीव को आत्मा का भान है
हीनगुण सहित मानता है

उत्तर:- द्रव्यलिंगी के व्यवहार सच्चा (सही) होता है
है
विरोध नहीं करता। द्रव्यलिंगी के सनातन जै
आदि साधन बहुत होता है
द्रव्यलिंगी के आगम प्रमाण (चरणानुयोग की पद्धति के अनुसार) समकित अथवा व्यवहार
ज्ञान है
धनवान हो; परन्तु कुल में जो कोई बड़ा हो तो कुल की अपेक्षा से उसको बड़ा जानकर सत्कार
किया जाता है
सर्वज्ञ की आज्ञानुसार धर्म में प्रधान हो तो व्यवहारधर्म की अपेक्षा से गुण अधिक मानकर
उसकी भक्ति करता है
ऐसा जानना। यहाँ व्यवहार सही होना चाहिये। साधारण (सूक्ष्म) भूल को तो बाहर प्रसिद्ध
नहीं किया जाता; परन्तु महान भूल नहीं चल सकती। जिसका व्यवहार सर्वज्ञ के कथनानुसार
सही हो उसकी भक्ति समकित करती है
अधिक है

इसी तरह चरणानुयोग में, जो जीव बहुत उपवास करता है
सच्चे देव-शास्त्र-गुरु की श्रद्धा सहित राग घटाने वाले का बाह्य आचरण चरणानुयोग
अनुसार कहा जाता है
यद्यपि उत्कृष्ट तपस्वी है
तपस्वी है
आत्मा अनाहारक स्वभावी ऐसा मानता हो तो वह तपस्वी है
की प्रधानता है
नामादिक भी समझना।

इसीतरह अन्य अनेक प्रकार सहित चरणानुयोग में व्याख्यान का विधान जानना चाहिये।

द्रव्यानुयोग के व्याख्यान का विधान

....अब, द्रव्यानुयोग में व्याख्यान का विधान कहते हैं

जीवों के जीवादि द्रव्यों का यथार्थ श्रद्धान जिस प्रकार हो उस प्रकार विशेष, युक्ति, हेतु दृष्टान्तादिक का यहाँ निरूपण करते हैं कराने का प्रयोजन है

द्वारा व्यवहार से द्रव्य-गुण-पर्यायादिक के भेदों का निरूपण करते हैं कराने के अर्थ अनेक युक्तियों द्वारा उपदेश देते हैं देते हैं

देते हैं

अब द्रव्यानुयोग में व्याख्यान की पद्धति बतलाते हैं

इस विश्व में (जाति अपेक्षा) छह द्रव्य हैं

पर्यायें हैं

अन्य से नहीं होती। आत्मा व्यवहार से भी जड़ की पर्याय को नहीं कर सकता है आँख से नहीं देखता, ज्ञान से देखता है

परन्तु आँख औ

सामान्य से होता है

छहों द्रव्य भिन्न हैं

पुद्गल अनंतानंत हैं

पुद्गलद्रव्य सिद्ध नहीं हो सकते। वस्तुतः कोई किसी का उपकार या अपकार करने में समर्थ नहीं हैं

मानादिक के परिणाम नहीं होना शुभराग हैं

की असेवा औ

महापाप हैं

पदार्थ का क्या कर सकता है

शब्द गुड़ पदार्थ को बतलाता है

द्रव्यानुयोग ऐसी स्वतंत्रता का द्विद्वौ

प्रत्येक पदार्थ भिन्न-भिन्न कार्य करता है
 एक दूसरे में मिलकर कार्य करें तो भिन्न-भिन्न नहीं रह सकते। इस अंगुली के प्रत्येक
 परमाणु का कार्य स्वतंत्र होता है
 यथार्थ श्रद्धान्द्रव्यानुयोग का अभ्यास करने से होता है
 यथार्थ श्रद्धान्द्रव्य करके सम्यग्दृष्टि होना योग्य है

तथा कोई जीव भगवान की वाणी सुनने गया, तो भी क्या? यदि अपने में (धर्मरूप)
 नै
 (धर्मरूप दशा को प्राप्त नहीं करने से) केवली भगवान के पास जाकर भी कोरा रह गया है
 जै

जीवादिक द्रव्य स्वतंत्र है
 अधिकरण गुण हैं
 है
 किसी के कारण नहीं है
 दर्शाते है
 उपचरित कथन है
 अनादि-अनंत साधन गुण है
 साधन से नरक में नहीं जाता है
 है

आत्मा औ
 अपने में है
 औ

गुणों के समूह को द्रव्य कहते है
 अवस्थाओं में रहते है
 एक-एक शरीर में अनंत निगोदिया जीव है

है

वह क्षेत्र है

इसप्रकार प्रत्येक द्रव्य अपने द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से अभेद है

द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से भेदरूप है

व्यवहार से द्रव्य-गुण-पर्याय के भेद द्रव्यानुयोग प्ररूपित करता है

पुद्गल है

द्रव्यानुयोग में छह द्रव्य औ

साधन औ

करता तो सब व्यर्थ है

करते है

समयसार में भेदा-भेद वस्तु कही; वहाँ अभेद की दृष्टि सम्यग्दर्शन का कारण है

पर्याय को अभूतार्थ कहा है

रागी जीव को भेद के लक्ष्य से आत्मानुभव नहीं होता, इसलिये भेद को गौ

तथा एकांत अभेद कहो तो गुण-पर्याय का नाश होता है

गुण-पर्याय भिन्न नहीं होते, परन्तु भेद कल्पना से द्रव्य-गुण-पर्याय के भेद से वर्णन करते है

जीव के असंख्य प्रदेश है

इस प्रकार भेद से समझाते है

हैं

पर भी उनकी संख्या कम नहीं होती। द्रव्य गुण-पर्यायों का पिण्ड है

पर्याय क्षणिक है

के लिए भेद करते है

जानते है

यहाँ मोक्षमार्गप्रकाशक में दूसरी पद्धति है

क्षेत्र एक ही है

करके व्यवहार कहा है

के प्रदेश अभेद है
को गौ
समयसार में गौ
से अभेदता है

तथा समयसार में स्वभावसन्मुख होने वाली पर्याय को द्रव्य के साथ अभेद कह देते हैं
जै

द्रव्य-गुण-पर्याय के भेद पाड़ते है

समयसार में यह कहना है

इसलिये भेद को गौ

भेदाभेद स्वरूप वस्तु को जानता है

अभेद में भेद नहीं दिखते इस अपेक्षा से दृष्टि प्रधान कथन में गुण-पर्याय के भेद को
अवस्तु कहा गया है

है

से अभेद है

तथा प्रतीति कराने के लिये अनेक युक्तियाँ देते है

सामान्य स्वभाव द्रव्यार्थिकनय का विषय है

दोनो पहलूओं का ज्ञान कराने वाला प्रमाण है

अनुमान कराते है

प्रदेश प्रत्यक्ष नहीं दिखते; परन्तु अनुमान होता है

वस्तु की प्रतीति कराने के लिये सुवर्ण का दृष्टान्त देते है

है

....तथा यहाँ मोक्षमार्ग का श्रद्धान कराने के अर्थ जीवादि तत्त्वों का विशेष,
युक्ति, हेतु, दृष्टान्तादि द्वारा निरूपण करते है

प्रकार हो उस प्रकार जीव-अजीव का निर्णय करते है

प्रकार हो उस प्रकार आस्रवादिक का स्वरूप बतलाते हैं

ज्ञान-वै

मोक्षमार्ग का श्रद्धान कराने के लिये द्रव्यानुयोग में सात तत्त्वों का कथन हेतु औ
 से करते है
 भिन्न-भिन्न है
 नहीं है
 स्वरूप है
 (संयोग) संबंध होने से कथंचित् एक कहलाते हैं
 शरीर के घनिष्ट निमित्त-नै
 है
 समझना चाहिये । निश्चय यथार्थ है
 परन्तु वास्तविक नहीं है
 नहीं कर सकता । जड़ की पर्याय जड़ से होती है
 भिन्नता बताकर भेदविज्ञान कराया जाता है
 है

इसप्रकार स्व-पर की प्रथकता का ज्ञान हो-ऐसा उपदेश द्रव्यानुयोग में किया जाता है
 अब आस्रवादि के निरूपण में क्या प्रयोजन है
 दया, दानादि के परिणाम पुण्य है
 आस्रव है
 पुण्यभाव है
 छोड़कर पाप कराने का प्रयोजन नहीं है कहते है
 पुण्य-पापभाव धर्म के लिये व्यर्थ है

इसप्रकार रागादि की अपेक्षा छूटकर वीतरागभाव प्रगट हो- ऐसा कथन करते है
 तात्पर्य यह है
 आस्रवादि के निरूपण में भी हेतु पुण्यभाव कराने का नहीं है
 भाई ! द्रव्यानुयोग में जै
 समझना चाहिये ।

प्रश्न:- परन्तु हमें तो नयातिक्रान्त होना है

उत्तर:- पहले निश्चय औ

इसलिये पहले यथार्थ ज्ञान करना चाहिये।

सीताजी जंगल में गई तब किंचित रूदन आ गया, क्योंकि पर्याय में कमजोरी है अन्तरदृष्टि (सम्यग्दृष्टि) का अभाव नहीं हुआ। उन्होंने रामचंद्रजी को संदेश भिजवाया कि सीता को छोड़ दिया, परन्तु अपने आत्मा के धर्म को मत छोड़ देना- इसप्रकार दृष्टान्त में भी वीतरागभाव का प्रयोजन है

मूल चीज आत्मा की दृष्टि है

सत्समागम के बिना द्रव्यानुयोग समझमें नहीं आ सकता।

समयसारादि शास्त्रों में कहते है

पुण्य-पाप रहित वै

आकुलतारूप है

है

औ

छोड़ देना तो मोहगर्भित वै

प्रश्न:- ज्ञान आवे (आत्मज्ञान हो) औ

उत्तर:- प्रकाश होवे औ

प्रकाश होता है

अभाव से वै

आत्मा के अनुभव से ज्ञान-वै

किया; परन्तु उसका कोई मूल्य नहीं है

औ

अपना अनुभव करे तभी ज्ञान-वै

नहीं है

होता है

इस प्रकार यहाँ दो बातें की है

* जीव-अजीव का भेदज्ञान कराकर श्रद्धा करायी।

* आस्रवादि का स्वरूप संवर-निर्जरारूप वीतरागभाव होने के लिए बताया। इनमें आस्रव-बंध हेय औ

इसप्रकार द्रव्यानुयोग में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप मोक्षमार्ग के स्वरूप की श्रद्धा करायी।

....तथा द्रव्यानुयोग में निश्चय अध्यात्म-उपदेश की प्रधानता हो, वहाँ व्यवहारधर्म का भी निषेध करते है

बाह्य क्रियाकाण्ड में मग्न है

को व्रत-शील-संयमादिक का हीनपना प्रगट करते है

इनको छोड़कर पाप में लगना; क्योंकि उस उपदेश का प्रयोजन अशुभ में लगाने का नहीं है

आत्मा चिदानंद स्वरूप है

लक्ष्य करो- इसप्रकार द्रव्यानुयोग में महिमा गाई जाती है

अध्यात्म उपदेश की प्रधानता है

जीव दया, दानादि में ही धर्म मानता है

में पुण्य का निषेध कराते है

सम्यग्दृष्टि के पुण्य का भी निषेध करते है

धर्म होता है

जो जीव आत्मा का अनुभव नहीं करता औ

उदासीन कराते है

को अधर्म कहते है

आत्मकल्याण के लिये व्यर्थ है

आदर नहीं करे; परन्तु इस बात को अज्ञानी नहीं समझता। इसलिये निर्विकल्प प्रतीति कराने के लिये पाँच महाव्रत, शील, संयम को हीन कहते है

चाहिये कि पुण्य परिणाम छोड़कर पाप परिणाम करना चाहिये औ
 दया, दानादि के भावों से परम्परा धर्म होगा- इस मान्यता का भी निषेध करते है
 प्रयोजन शुभपरिणाम छोड़ाकर अशुभ कराने का नहीं है
 दृष्टि कराने का है

एक बार गाँधीजी ने श्रीमद् राजचन्द्रजी से प्रश्न किया कि कोई मनुष्य अपने कमरे में
 स्नान कर रहा हो औ
 न हो तो उस व्यक्ति को सर्प का क्या करना चाहिये ?

श्रीमद्जी ने जवाब दिया कि आर्य पुरुष को सर्प को मारने का भाव नहीं हो सकता । सर्प
 शरीर का अर्थी है
 जाये कि सर्प को मार देना चाहिये । इसी प्रकार यहाँ पुण्य से धर्म होता है
 जाये ?

शुभाशुभ भाव तो अपने कालक्रम में आयेंगे; अब तुझे किस तरफ रुचि करना है
 शुभाशुभ परिणाम क्रमसर होते है
 यहाँ कहते है
 बताते है
 परिणामों को छोड़ाने का है आशय पाप के
 परिणाम में लगाने का नहीं; परन्तु पुण्य से भी छोड़ाकर शुद्ध में लाने का है

....यहाँ कोई कहे कि अध्यात्मशास्त्र में पुण्य-पाप समान कहे है
शुद्धोपयोग हो तो भला ही है

उत्तर :- जै
से जाट कुछ उत्तम है
अपेक्षा पुण्य-पाप समान है
है
जानना ।

तथा जो जीव जिनबिम्ब भक्ति आदि कार्यों में ही मग्न है
कराने को 'देह मे देव है
लेना कि भक्ति छोड़कर भोजनादिक से अपने को सुखी करना; क्योंकि उस उपदेश
का प्रयोजन ऐसा नहीं है

इसीप्रकार अन्य व्यवहार का निषेध वहाँ किया हो उसे जानकर प्रमादी नहीं
होना। ऐसा जानना कि जो केवल व्यवहारसाधन में ही मग्न है
कराने के अर्थ व्यवहार को हीन बतलाया है

प्रश्न:- अध्यात्म शास्त्रों में पुण्य-पाप को समान कहा है
अपेक्षा से समान कहा है
करना शुद्धोपयोग है
दानादि में लगो या हिंसा, झूठ आदि में लगो; दोनो एक ही है

उत्तर:- जै
चाण्डाल की अपेक्षा जाट की जाति उँची है
मर्यादा है
राग-द्वेष होते है
है
कल्याण नहीं है
इस कथन का आशय पुण्य छोड़कर पाप करने का नहीं है

अन्तरंग में मंदकषाय के परिणाम से पुण्य होता है
करते-करते धर्म का अवसर मिलेगा- ऐसा भी नहीं है
की रुचि नहीं की है
व्रत, तप, जप आदि धर्म का कारण नहीं है
वीतराग न हो तबतक (भूमिकानुसार) पुण्य-पाप के भाव आयेंगे; परन्तु उनकी रुचि
छोड़कर निश्चय की रुचि कराने के लिये व्यवहार को हीन बतलाया है
छोड़कर पाप में लगना योग्य नहीं है

क्रिया तीन प्रकार की है
पुण्य-पाप के भाव विकारी क्रिया है
करना धार्मिक क्रिया है

जड़ सत् है
की क्रिया जड़ से होती है
महापाप लगता है
वे भाव नहीं होते। वे भाव चिदानंद स्वभाव की पर्याय में उपाधि है
अनंतबार पुण्य-पाप के भाव किये है मैं
हूँ- ऐसे भाव का भासन नहीं होने के कारण धर्म नहीं हुआ है

जबतक पूर्ण वीतराग न हो तबतक ज्ञानी को भी शुभविकल्प आता है
मुनिराज को अट्ठाईस मूलगुण होते है
के कारण है
आस्रव है

जीव ने मुनि होकर पंचमहाव्रतों का पालन किया, तथा कठिन अभिग्रह धारण किये;
परन्तु क्रिया से रहित आत्मा की बात रुचि न होने से धर्म नहीं हुआ। इन्द्रियों का संयम किया,
अथाह वै
आदि से भिन्न है
अभाव नहीं हुआ।

अध्यात्म में ऐसा उपदेश आता है
नहीं है

आत्मा परपदार्थों की अवस्था नहीं कर सकता। शरीरादि जड़ है
ध्रुव जड़ से होते है
सकता। अज्ञानी जीव मात्र अभिमान करता है
उससमय पर के सामान्य ने क्या किया? अतः आत्मा पर का कार्य कर सकता है
माननेवाला मिथ्यादृष्टि है

पूर्व पर्याय का व्यय होता है
है
मिटता है

का नाम जानने के लिए उपवास करे, पच्चीस लाख रुपये खर्च करे तो नाम ज्ञात नहीं होता ।
इसीप्रकार कोई आत्मा को जानने के लिये लाखों रुपये खर्च करे या उपवास करे तो भी आत्मा
का ज्ञान नहीं होता । (आत्मस्वभाव में) अन्तर्मुख होकर अनुभव करने से ही आत्मा ज्ञात होता है

यहाँ तो कहते है
न हो वहाँतक कमजोरीवश राग आता है
समस्त पदार्थ सत् हैं
शुभाशुभभाव अधर्म है

आत्मस्वभाव विकार रहित ज्ञानमय है
वर्षोत्प करे, यात्रा करे- यह सब रण मे पीठ दिखाने के समान व्यर्थ है
रुचि नहीं करे औ
करते है

भगवान की पूजा-भक्ति आदि में पुण्य है
में होती है
धर्म नहीं मानता । अज्ञानी जीव यात्रा आदि में धर्म मानता है
तो पुण्य है
करे तो पापबंध होता है
देह में देव है

**नहिं देव मन्दिर विषे, देव न मूर्ति चित्र ।
तन मन्दिर में देव जिन, समझ होय समचित्त ।।**

योगसार, दोहा

यह कहकर जो जीव मन्दिर में अथवा भक्ति के भाव में धर्म मानता है

श्रद्धा करने को कहते हैं
 एकान्त धर्म मानना भूल है
 जानता है
 जीव उसमें धर्म मानता है
 की भक्ति आदि को हीन बतलाते हैं
 कदापि नहीं है
 आशय यह है
 होती। पुण्य-पाप की क्रिया से रहित आत्मा की श्रद्धा करना निश्चय भक्ति है
 व्यवहार भक्ति है

कोई कहता है

यह भी भ्रम है

है

करना धर्म है

रागादिक के परिणामों से भिन्न है

है

सकता है

है

शुभराग की रुचि छोड़ाकर आत्मा की दृष्टि कराने के लिये भक्ति की हीनता बतलाते हैं
 वहाँ भक्ति के शुभभाव छोड़ाकर पाप कार्य कराने का अभिप्राय नहीं है

आत्मा की पर्याय में दया, दानादि के परिणाम होते हैं
 धर्म के कारण नहीं। इसका यह अर्थ नहीं है

द्रव्य की औ

परमेश्वरता है

फिर उस (सत्) के ज्ञानानंद परमेश्वर औ

पदार्थ प्रभु है

है

यह सत् है

अपनी पर्याय में होने वाले विकार से स्वाभाविक परमेश्वरता उत्पन्न नहीं होती। दया, दानादिक में भी पर्याय की प्रभुता है

हीनता बताते हैं

पदार्थ असत् हैं

दानादिकभाव स्वयं करता है

राग को हीन बताया है

प्रभुता है

अन्य दुःखी जीवों के कारण नहीं होता, अपनी पर्याय में अपने कारण से शुभराग होता है

अज्ञानी जीव विकार होना पर के कारण मानता है होता। अपनी दशा में होनेवाला शुभराग पर से नहीं, स्वयं से होता है बाद स्वभाव की रुचि कराने के लिये उसे हीन बताते हैं

समस्त पदार्थ सत् है

होता है

में होनेवाला राग भी सत् है

धर्म की योग्यता नहीं है

यहाँ कहते हैं

पर की अपेक्षा से वर्तमान राग सत् है

है

शान्ति नहीं मिलती; इसलिये राग को हेय समझकर ध्रुव स्वभाव की दृष्टि कर तो शान्ति की प्राप्ति होगी।

आत्मा पर की क्रिया तो कर ही नहीं सकता। रागादि परिणाम (भी) पर्याय में होते हैं उस राग का निषेध करके स्वभाव की श्रद्धा कराते हैं होना चाहिये। इसमें ज्यादा बुद्धि का काम नहीं है

पदार्थ है
आशय यह है

मेढक को ज्ञान का अधिक क्षयोपशम नहीं है
पर्याय में होने वाले विकार जितना ही मैं
है

प्रत्येक द्रव्य उत्पाद-व्यय-ध्रुव सत् है
मुझसे है
नहीं है

मैं
परस्पर विरुद्ध है
से नहीं है
अशुभभाव हो जाता है
निषेध करके यहाँ सुलटे स्वभाव की श्रद्धा-ज्ञान कराते हैं
लिये क्षणिक सत् का निषेध कराते हैं

....तथा उन्हीं शास्त्रों में सम्यग्दृष्टि के विषय-भोगादिक को बन्ध का कारण नहीं कहा, निर्जरा का कारण कहा; परन्तु यहाँ भोगो का उपादेयपना नहीं जान लेना। वहाँ सम्यग्दृष्टि की महिमा बतलाने को जो तीव्रबन्ध के कारण भोगादिक प्रसिद्ध थे, उन भोगादिक के होने पर भी श्रद्धानशक्ति के बल से मन्द बन्ध होने लगा उसे गिना नहीं औ

बन्ध का कारण नहीं कहा, निर्जरा का कारण कहा। विचार करने पर भोग निर्जरा के कारण हों तो उन्हें छोड़कर सम्यग्दृष्टि मुनिपद का ग्रहण किसलिये करे? यहाँ इस कथन का इतना ही प्रयोजन है
भी अपने गुण को नहीं कर सकते हैं

इसीप्रकार अन्य भी कथन हों तो उनका यथार्थपना जान लेना।....

मैं

को हेय माननेवाला सम्यग्दृष्टि जीव संसार में होने पर भी निर्जरा करता है
मुनि को प्रथकता का भान नहीं होने से निर्जरा नहीं है

किसी समय सम्यग्दृष्टि को लड़ाई, भोग आदि के परिणाम होने पर भी निर्जरा का
कारण कहा है

पर ही उसकी दृष्टि है

मुझसे पर प्रथक् है

हूँ, मैं

है

छियानवै

विकार की दृष्टि नहीं थी- इसकारण क्षण-क्षण निर्जरा कही है

उपादेय नहीं समझना चाहिये। सम्यग्ज्ञानी को संयोग औ

स्वभाव की रुचि हुई है

अशुभ परिणाम होने पर भी केवल श्रद्धा शक्ति के बल से मंद बंध होने लगा है

परपदार्थों में मेरा अधिकार नहीं है

परपदार्थों पर से दृष्टि छूट गई है

ज्ञायक हूँ- इसप्रकार त्रिकाली शक्ति का आदर वर्तता होने से अशुभ के मंद बंध को नहीं गिना
है

का कारण कहा है

छोड़कर सम्यग्दृष्टि जीव मुनिपद क्यों अंगीकार करता है

सम्यग्दृष्टि भावना भाता है

पर में नहीं है

अशुभभाव छूट जाता है

अशुभभाव मिट जाता है

यहाँ तो इस कथन का इतना ही प्रयोजन है

बल से भोग भी अपने गुण को नहीं कर सकते। भगवान आत्मा सत् परमेश्वर है स्वीकार करने से भोग भी अपने गुण को नहीं कर सकते। अर्थात् वे बंध नहीं कर सकते। ज्ञानी अस्थिरताजन्य राग का स्वामी नहीं होता, त्रिकाली स्वभाव का स्वामी होता है इसप्रकार नहीं देखनेवाला बाह्यदृष्टिवंत बहिरात्मा है

इसीप्रकार अन्य कथन भी हों तो उनका यथार्थ आशय समझ लेना चाहिये।

....तथा द्रव्यानुयोग में भी चरणानुयोगवत् ग्रहण-त्याग कराने का प्रयोजन है इसलिये छद्मस्थ के बुद्धिगोचर परिणामों की अपेक्षा ही वहाँ कथन करते हैं विशेष है

द्रव्यानुयोग में आत्मपरिणामों की मुख्यता से निरूपण करते हैं सूक्ष्मवर्णन नहीं करते। उसके उदाहरण देते हैं

उपयोग के शुभ,अशुभ,शुद्ध- ऐसे तीन भेद कहे हैं परिणाम वह शुभोपयोग, पापनुरागरूप व द्वेषरूप परिणाम वह अशुभोपयोग औ राग-द्वेषरहित परिणाम वह शुद्धोपयोग - ऐसा कहा है बुद्धिगोचर परिणामों की अपेक्षा यह कथन है अपेक्षा गुणस्थानादि में संक्लेशविशुद्ध परिणामों की अपेक्षा निरूपण किया है विवक्षा यहाँ नहीं है

करणानुयोग में तो रागादि रहित शुद्धोपयोग यथाख्यातचारित्र होने पर होता है वह मोह के नाश से स्वयमेव होगा; निचली अवस्थावाला शुद्धोपयोग का साधन कै

वहाँ छद्मस्थ जिस काल में बुद्धिगोचर भक्ति आदि व हिंसा आदि कार्यरूप परिणामों को छोड़कर आत्मानुभवनादि कार्यों में प्रवर्ते उसकाल उसे शुद्धोपयोगी कहते हैं

नहीं की, अपनी बुद्धिगोचर रागादिक छोड़ता है

इसीप्रकार स्व-पर श्रद्धानादिक होनेपर सम्यक्त्वादि कहे, वह बुद्धिगोचर अपेक्षा से निरूपण है

करणानुयोग में पाया जाता है

इसलिये द्रव्यानुयोग के कथन की विधि करणानुयोग से मिलाना चाहे तो कहीं तो मिलती है

अपेक्षा शुद्धोपयोग है

शुद्धोपयोग होता है

से शुद्धोपयोग नहीं है

तत्त्वज्ञान के अथवा द्रव्य-गुण-पर्याय के अधिकार में (द्रव्यानुयोग में) चरणानुयोग की तरह शुद्ध का ग्रहण औ बुद्धिगोचर परिणामों की अपेक्षा से ही कथन किया जाता है

इतना विशेष है

द्रव्यानुयोग में आत्मपरिणामों की मुख्यता से वर्णन करते हैं बात करते हैं

वहाँ करणानुयोग की अपेक्षा समय-समय के परिणाम की बात नहीं है अपेक्षा से शुद्धता बारहवें गुणस्थान में है से प्रारम्भ होती है

यहाँ आचरण के भेद की अपेक्षा से उपयोग की बात है विपरीत मान्यता, द्वेषादि अशुभ परिणाम है यह आचरण की अपेक्षा से उपयोग की बात है स्वभाव का ज्ञान करके स्थिरता करना शुद्धोपयोग है

मैं

का भाव छूटकर आंशिक शुद्धता होती है करणानुयोग की अपेक्षा से शुद्धोपयोग की बात नहीं है गुणस्थान को शुद्धोपयोग कहते हैं राग को छोड़कर शुद्ध को ग्रहण करना शुद्धोपयोग है दोनों अधर्म हैं

से कथन है
है

चौ
कहता है
होने पर शुद्धोपयोग होता है
नहीं कहलाता है
व्याख्या चलती हो वहाँ शुद्धोपयोग धर्म है
जड़पदार्थों को त्याग नहीं सकता। उपवासादि में आहार के प्रति राग की मंदता होना पुण्य है
धर्म नहीं औ
ही है

ज्ञानी शुद्धोपयोग की भावना करता है
परन्तु निमित्त लाने अथवा राग करने की भावना धर्मी को नहीं होती; कारण कि वह तो आस्रव
की भावना है

आत्मा ज्ञानानंद है
को शुद्धोपयोग कहते है
कषाय चौ
करके आत्मा में स्थिरता करना शुद्धोपयोग है
है
आता।

प्रश्न:- समकिति जब शुद्धोपयोग लाना चाहे तब ला सकता है

उत्तर:- 'मै
शुद्धोपयोग नहीं आता। स्वभाव सन्मुख होने पर इच्छा छूट जाती है
अकषाय परिणमन है
चौ
लीन होनेपर बुद्धिपूर्वक राग का अभाव होना शुद्धोपयोग है

कालक्रम में शुद्धोपयोग आता है
 शुद्धोपयोग को लाऊँ- ऐसा लोभ नहीं है
 सदा नहीं है

स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा, गाथा-397 मे लोभ के चार प्रकार कहे गये है
 के लोभ को भी लोभ कहा है
 होता है
 पर्याय के क्रम को बदलूँ- यह दृष्टि मिथ्यादृष्टि की है
 है
 स्वभाव के आश्रय से शुद्धोपयोग सहज ही हो जाता है
 है

‘पंचाध्यायी’ गाथा-862 में कहा है
 है
 पुरुषार्थ है
 इच्छा से हे महाप्रज्ञ ! तुझे दुःख ही होगा ।’

स्व में आऊँ तो ही लाभ होगा- ऐसी हठ नहीं करना । ज्ञान का स्वभाव स्व-परप्रकाशक
 है
 शुद्धोपयोग सहज आ जाता है
 है

बुद्धिपूर्वक शुभाशुभ छूटकर आत्मा में सहज लीनता होना शुद्धोपयोग है
 शुद्ध उपयोग बारहवें गुणस्थान में है
 अन्तर में लीनता करता है
 गुणस्थान में निर्विकल्पदशा मे शुद्ध उपयोग है
 तीन प्रकार के कषाय बाकी है
 लेता हो तब शुद्धोपयोग कहा है
 किया है

ज्ञानी राग का तथा निमित्त का तो कर्ता नहीं है
 अटकने पर स्वभाव में लीनता करता है
 पकड़ नहीं सकता। आत्मा औ
 अपेक्षा से वर्णित सूक्ष्म राग को नहीं जान सकता।

जिसमें द्रव्य-गुण-पर्याय की यथार्थ बात हो ऐसे द्रव्यानुयोग में स्थूल अपेक्षा से कथन
 है

कोई द्रव्यानुयोग औ
 मिलती। बारहवें गुणस्थान में शुद्धोपयोग दोनों अनुयोग अपेक्षा से होता है
 की अपेक्षा से चौ
 होता है
 (अनंतानुबंधी व अप्रत्याख्यानावरण) का औ
 (अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण) का अभाव करके जो शुद्ध परिणति हुई
 है
 कभी ही होता है

यहाँ यह कहना है
 गुणस्थान में कदाचित होता है
 चौ

शुद्धोपयोग ग्यारहवें औ

* कोई कहता है
 द्रव्यानुयोग की अपेक्षा से वहाँ शुद्धोपयोग है

* कोई कहता है
 ऐसा भी नहीं है

* करणानुयोग की अपेक्षा से चौ
 नहीं है

शुद्धोपयोग हठ के लाना नहीं है
दृष्टि होकर पर्यायदृष्टि छूटने से स्वभाव तरफ गमन होता है
अन्य मुनिराज ऐसा उपदेश देते है

हे मुनि! समाधिमरण समीप है
उसका लक्ष्य छोड़ो।' -ऐसा उपदेश देते हैं
सहनशीलता नहीं देखे तो अन्य मुनि उपदेश देकर जागृत करते है
यह देह शीघ्र छूट जायेगी; इसलिये अन्तर में लीन होओ। मुनि को समझाने का विकल्प आता
है
आता है

प्रश्न:- पुरुषार्थ तो क्रमबद्ध होता है

उत्तर:- क्रमबद्धपर्याय का निर्णय स्वभावसन्मुख होनेपर होता है

औ
अमुक प्रकार से आती है
निर्णय भी आ जाता है

इसप्रकार द्रव्यानुयोग में कहा है
स्वभाव में लीनता होना शुद्ध उपयोग है

....तथा द्रव्यानुयोग में परमत में कहे हुए तत्त्वादिक को असत्य बतलाने के अर्थ
उनका निषेध करते है
श्रद्धान कराने का प्रयोजन जानना।

इसी प्रकार औ

इसप्रकार चारों अनुयोग के व्याख्यान का विधान कहा । वहाँ किसी ग्रन्थ में
एक अनुयोग की किसी में दो की, किसी में तीन की औ
सहित व्याख्यान होता है

द्रव्यानुयोग में सर्वज्ञ भगवान द्वारा जाने हुए तत्त्व का निरूपण करते हुए अन्यमत के

तत्त्वों का निषेध करते हैं
 कहनेवाला अज्ञानी है
 कहते हैं

प्रत्येक आत्मा परिपूर्ण है
 होता है

भगवान किसी को पार नहीं कर देते। यदि भगवान ने परिभ्रमण कराया हो तब तो
 भगवान का दोष हुआ; परन्तु जीव स्वयं अपने अपराध से परिभ्रमण करता है
 करके तिरता है

है

आत्मारूप से है

सकता। शरीर शरीररूप से है

शक्कर चिरायते की तरह कड़वी नहीं है

भी ज्ञान कराना पड़ता है

का निषेध करना पड़ता है

अनादि-अनंत है

स्वरूप से है

पुत्र से कहते हैं

समीप बै

मिथ्याज्ञान की प्ररूपणा करते हैं

प्ररूपणा कर रहे हैं

है

चै

पुण्य से धर्म मानना- ये सब मिथ्या प्ररूपणायें हैं

अनादर नहीं करना; परन्तु विपरीत प्ररूपणा का निषेध है

औ

करनेवाले का निषेध नहीं करनेवाले को मिथ्यादृष्टि समझना । पुण्य औ
धर्म मानना अनंत संसार का कारण है
समझाना है
उसके प्रयोजन को बताते है
अभाव का प्रयोजन है

इसप्रकार चारों अनुयोगों के व्याख्यान का विधान कहा है
अनुयोग, किसी में दो, किसी में तीन औ
जहाँ जै

अनुयोगों के व्याख्यान की पद्धति

....अब, इन अनुयोगों में कै

प्रथमानुयोग में तो अलंकार शास्त्र की व काव्यादि शास्त्रों की पद्धति मुख्य है
क्योंकि अलंकारादि से मन रंजायमान होता है
लगता जै
को कुछ अधिकतापूर्वक निरूपण किया जाये तो उसका स्वरूप भली-भाँति भासित
होता है

तथा करणानुयोग में गणित आदि शास्त्रों की पद्धति मुख्य है
द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव के प्रमाणादिक का निरूपण करते है
आम्नाय से उसका सुगम जानपना होता है

तथा चरणानुयोग में सुभाषित नीतिशास्त्रों की पद्धति मुख्य है
आचरण कराना है
आचरण करता है

तथा द्रव्यानुयोग में न्यायशास्त्रों की पद्धति मुख्य है
का प्रयोजन है

इसप्रकार अनुयोगों में मुख्य पद्धति है
इनमें पाये जाते है

प्रथमानुयोग में जो तीर्थकर, चक्रवर्ती, गणधरादि महापुरुष हो गये हैं
हैं

अलंकारिक वर्णन साधारण मनुष्यों को रुचिकर होता है

आती है

झूलनेवाले मुनियों ने ऐसा अलंकारिक वर्णन क्यों किया? भाई! यह सब बात आती है

चक्रवर्ती के पुण्य की बात आती है

छियानवें हजार रानियां, चौ

है

नहीं बंधता। मिथ्यादृष्टि जीव तीर्थकर अथवा बलदेव नहीं होता।

यहाँ प्रथमानुयोग की पद्धति क्या है

अलंकार करते हैं

कि जै

दूसरे, परोक्ष बात का कुछ अधिकता पूर्वक निरूपण करते हैं
विस्तृत करके निरूपण करते हैं

है

को कै

है

मुनियों को राग का रस होने के कारण ऐसी कथा करते हैं

जाननेवाले हैं

के कारण आता है

ज्ञान आया है

तीव्र राग है

यहाँ ज्ञानी की बात है

हो- ऐसे अभिप्रायवाले को कर्ताबुद्धि है

ज्ञान होता है

जीवों की सभा है

है

प्रतिसमय अपनी योग्यता अनुसार होती है

मिथ्यादृष्टि है

ज्ञानपर्याय क्रमसर होती है

है

श्रीखण्ड का भोजन नहीं कराया जाता, अपितु ऋतुनुकूल भोजन कराया जाता है

दृष्टान्त देकर अज्ञानी कहता है

चाहिये, समय देखकर धर्मोपदेश करना चाहिये; परन्तु भाई! क्या धर्म समय के कारण होता

है

माननेवाला मिथ्यादृष्टि है

मुनिराज ऐसी वार्ता-उपदेश पर के लिये नहीं करते। देखो! कुन्दकुन्दाचार्य को द्रव्यानुयोग

का औ

इसलिये वे हल्के औ

नहीं है

लकड़ी के समान है

सहित कथा कहते है

करणानुयोग में कर्म औ

द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव प्रमाणादि का निरूपण करते है

ज्ञानपना सुगमरूप से होता है

चरणानुयोग में व्रत, तप आदि की बात आती है

मुख्य है

आचरण करता है

द्रव्यानुयोग में न्यायशास्त्र की पद्धति मुख्य है

है

निश्चय अबाधित युक्ति लागू पड़ने को न्याय कहते हैं
 बंधन होता है
 के बिना चारित्र नहीं होता। न्यायशास्त्र में निर्णय करने का उपदेश देते हैं
 परतन्त्रता नहीं बताते। अज्ञानी कहता है
 उसमें आता है
 असर होता है
 ऐसा अज्ञानी कहता है
 में नहीं है

इसप्रकार इन अनुयोगों में पद्धति की मुख्यता है
 व्याख्यान इनमें होता है

....यहाँ कोई कहे- अलंकार, गणित, नीति, न्याय का ज्ञान तो पण्डितों के होता
 है

उत्तर:- शास्त्र है
 है

तुच्छबुद्धि है

सीधा की कथन कहें। परन्तु ग्रन्थों में सीधा कथन लिखने से विशेष बुद्धि जीव
 उनके अभ्यास में विशेष नहीं प्रवर्ते, इसलिये अलंकारादि आमनाय सहित कथन करते हैं

इसप्रकार इन चार अनुयोगों का निरूपण किया।

तथा जै

प्रश्न:- अलंकार, गणित, नीति औ
 जीव यह सब नहीं समझ सकते। तब- धर्मकथा में अलंकार, करणानुयोग में गणित के सूक्ष्म
 हिसाब, चरणानुयोग में नीति के वचन औ
 किया ?- यह सब तो पण्डित जानते हैं
 ही कथन क्यों नहीं किया ?

उत्तर:- शास्त्र है

यदि अलंकारादि न हो तो उनका मन अभ्यास में नहीं लग सकता, औ है

से विशेष बुद्धिमान जीव उनके अभ्यास में नहीं प्रवर्तते- इसकारण अलंकारादि आमनाय सहित कथन करते हैं

बहुत से लोग समयसार की टीका आदि पढ़ते हैं के न्याय ज्यों के त्यों न समझे तो क्या काम का ?

इसप्रकार चारों अनुयोगों का निरूपण किया। जै अनुयोगों में गर्भित है भी जै

व्याकरण-न्यायादि शास्त्रों का प्रयोजन

....तथा व्याकरण, न्याय, छन्द, कोषादिक शास्त्र व वै शास्त्र भी जिनमत में पाये जाते हैं

व्याकरण-न्यायादिक का अभ्यास होनेपर अनुयोगरूप शास्त्रों का अभ्यास हो सकता है

प्रश्न:- भाषारूप सीधा निरूपण करते तो व्याकरणादि का क्या प्रयोजन था ?

उत्तर:- भाषा तो अप्रभंशरूप अशुद्धवाणी है महंत पुरुष शास्त्रों में ऐसी रचना कै अर्थका निरूपण होता है आमनाय से वर्णन किया है करके अनुयोगरूप प्रयोजनभूत शास्त्रों का अभ्यास करना।

तथा वै

भी बने; अथवा जो जीव लौ होकर पश्चात् सच्चा धर्म प्राप्त करके अपना कल्याण करें- इत्यादि प्रयोजन सहित वै

यहाँ इतना है

लगना। यदि बहुत बुद्धि से इनका सहज जानना हो औ
रागादिक विकार बढ़ते न जाने, तो इनका भी जानना होओ। अनुयोगशास्त्रवत् ये
शास्त्र बहुत कार्यकारी नहीं है
नहीं है

प्रश्न:- यदि ऐसा है

उत्तर:- पूर्वोक्त किंचित् प्रयोजन जानकर इनकी रचना की है
धनवान कदाचित् अल्पकार्यकारी वस्तु का भी संचय करता है
धनवाला उन वस्तुओं का संचय करे तो धन तो वहाँ लग जाये, फिर बहुत
कार्यकारी वस्तु का संग्रह काहे से करे? उसी प्रकार बहुत बुद्धिमान गणधरादिक
कथंचित् अल्पकार्यकारी वै
बुद्धिमान उनके अभ्यास में लगे तो बुद्धि तो वहाँ लग जाये, फिर उत्कृष्ट कार्यकारी
शास्त्रों का अभ्यास कै

तथा जै

नहीं होता; परन्तु तीव्र रागी वै
प्रकार मंदरागी गणधरादिक है
नहीं होते; परन्तु तीव्र रागी उनके अभ्यास में लग जाये तो रागादिक बढ़ाकर पापकर्म
को बाँधेंगे- ऐसा जानना।

इसप्रकार जै

व्याकरण-न्यायादि का अभ्यास होनेपर अनुयोगरूप शास्त्रों अभ्यास हो सकता है
इसलिये व्याकरणादि शास्त्र कहे गये है
तो व्याकरणादि का क्या प्रयोजन रहता? उसका समाधान यह है
वाणी देश-देश में अन्य-अन्य है
वाले गुजराती नही समझते- इसकारण महापुरुषों ने एक ही भाषा में शास्त्रों की रचना की है
तथा उनमें व्याकरणादि की आम्नाय से वर्णन किया है
थोड़ा-बहुत अभ्यास करके अनुयोगरूप प्रयोजनभूत शास्त्रों का अभ्यास करना चाहिये।

तथा वै

प्रभावना का अंग जानकर दवा बतावे; परन्तु मुनि विकल्प के स्वामी नहीं है का अभ्यास हुआ जिससे अन्यमतवाले का मान गलाने का प्रसंग बन जाता है को ऐसा अभ्यास था। बाहर में प्रभावना का कारण हो तो बनता है कह दें कि अमुक जाति का पत्ता अमुक भाग तरफ रखने से फोड़ा पक जाता है भाग तरफ रखने से फूट जाता है से उपकार भी होता है

जै

शास्त्र कहे गये है

में बहुत नहीं लगना चाहिये। यदि बहुत बुद्धि से उनका सहज जानना हो तथा उनको जाननेपर अपना राग बढ़ता न जाने तो उनका जानना भी भले हो जाये; परन्तु अनुयोगशास्त्रवत् वे शास्त्र कार्यकारी नहीं है

प्रश्न- यदि ऐसा है

उत्तर:- पूर्वोक्त किंचित् प्रयोजन जानकर उनकी रचना की है किसीसमय अल्पकार्यकारी वस्तु का संचय करता है संचय किया करे तो धन तो वहीं खर्च हो जायेगा औ सकेगा। इसीप्रकार बहुत ज्ञानवाले अल्पकार्यकारी शास्त्र पढ़ते हैं हो वह यदि अप्रयोजनभूत में बुद्धि लगायेगा तो बुद्धि वहीं रुक जायेगी तब फिर उत्कृष्ट कार्यकारी शास्त्रों का अभ्यास किस प्रकार करेगा ?

जै

परन्तु यदि तीव्ररागी श्रृंगार का निरूपण करे तो पाप ही बांधेगा। इसी प्रकार मंदरागी गणधरादि है तीव्ररागी उनके अभ्यास में लग जाये तो राग बढ़ाकर पापकर्मों का ही बंधन करेगा- ऐसा समझना चाहिये।

इसप्रकार जै

अनुयोगों में दोष-कल्पनाओं का निराकरण

अब, उनमें कोई दोष-कल्पना करता है

प्रथमानुयोग में दोष-कल्पना का निराकरण

....कितने ही जीव कहते हैं

बहुत कथन करते हैं

नहीं करना था, व ऐसा कथन सुनना नहीं।

उनसे कहते हैं

चाहिये; तथा यदि अलंकारादि द्वारा बढ़ाकर कथन करते हैं

तो युक्ति सहित ही निकलते हैं

औ

बढ़ाकर कथन किसलिये किया?

उसका उत्तर यह है

भासित नहीं होता तथा पहले तो भोग-संग्रामादि इस प्रकार किये, पश्चात् सबका त्याग करके मुनि हुए; इत्यादि चमत्कार तभी भासित होंगे जब बढ़ाकर कथन किया जाये।

तथा तुम कहते हो- उसके निमित्त से रागादिक बढ़ जाते हैं

चै

पापकार्य करे तो चै

पुराणादि में श्रृंगारादि का वर्णन किया; वहाँ उनका प्रयोजन रागादिक कराने का तो है

ही बढ़ाये तो श्रीगुरु का क्या दोष है

कोई जीव कहता है

किया है

कहते हैं

अलंकार सहित कथन करते हैं

प्रश्न:- संबंध मिलाने के लिए सामान्य कथन करना था; किन्तु बढ़ाकर किसलिए किया ?

उत्तर:- परोक्ष कथन को बढ़ाकर कहे बिना उसका स्वरूप भासित नहीं होता। कथा के समय बहुत विस्तार करते हैं करके मुनि हुए।

हनुमान कामदेव पुरुष थे। उनका शरीर बहुत सुंदर था। आसमान में तारे को खिरता हुआ देखकर उनको वै मेरा समय शरीर की रक्षा में व्यर्थ जा रहा है केवलज्ञान प्रगट करूँगा-ऐसा विचार करके वै आती है के लिये नहीं है दर्शाने के लिये है ध्रुव है का है हजार बै तू कहता है बनाता है करे तो मंदिर बनवानेवाले का क्या दोष है उसमें प्रयोजन धर्म में लगाने का है

....यदि तू कहे कि रागादिक का निमित्त हो ऐसा कथन ही नहीं करना था।

उसका उत्तर यह है

इसलिये जिस प्रकार बालक को बताशे के आश्रय से औ सरागी को भोगादि कथन के आश्रय से धर्म में रुचि कराते है

यदि तू कहेगा- ऐसा है
योग्य नहीं है

उसका उत्तर यह है
सुननेपर रागादि उत्पन्न ही नहीं होते। वे जानते हैं
की पद्धति है

फिर तू कहेगा- जिनको श्रृंगारादि का कथन सुननेपर रागादि हो आये, उन्हें तो
वै

उसका उत्तर यह है
पोषण करते हैं
सुनकर भी जो बहुत रागी हुआ तो वह अन्यत्र कहाँ विरागी होगा? वह तो पुराण
सुनना छोड़कर अन्य कार्य भी ऐसे ही करेगा जहाँ बहुत रागादि हों; इसलिये उसको
भी पुराण सुनने से थोड़ी-बहुत धर्मबुद्धि हो तो हो। अन्य कार्यों से तो यह कार्य
भला ही है

प्रश्न:- जो रागादिक के निमित्त हों ऐसे कथन करना ही नहीं थे?

उत्तर:- सरागी जीवों का मन केवल वै
(दवा) देना हो तो पेड़ा देने की बात कहकर चिरायता दिया जाता है
को भोगादि के कथन के आश्रय से धर्म में रुचि कराते हैं
जीव राजकुमार होता है
कराते हैं

प्रश्न:- यदि ऐसा है

उत्तर:- जिसके अंतरंग में राग नहीं है
होता। कारण कि निमित्त राग नहीं कराता है
नहीं है
प्रथमानुयोग में कथन करने की यही पद्धति है

प्रश्न:- जिसको श्रृंगारादिक के कथन सुनकर राग हो जाता है
सुनना योग्य नहीं है

उत्तर:- जहाँ धर्म का ही प्रयोजन है
कथन किया है
छोड़कर दुकान पर बै
इसलिये उसको भी पुराण सुनने पर थोड़ी-बहुत धर्मबुद्धि हो तो हो; अन्य कायो^१ से तो यह
भला ही है

**....तथा कोई कहे- प्रथमानुयोग में अन्य जीवों की कहानियाँ है
क्या प्रयोजन सधता है**

उससे कहते है
प्रेम बढ़ता है **की प्रीति**
विशेष होती है

प्रश्न:- प्रथमानुयोग में तो अन्य जीवों की कथायें है

उत्तर:- जै
इसीप्रकार धर्मीपुरुष को धर्मात्माओं की कथा सुननेपर धर्म के प्रति विशेष प्रीति बढ़ती है
तीर्थकर नेमिनाथ ब्रह्मचारी थे। उन्होंने पशुओं का क्रंदन देखकर विवाह के विकल्प का त्याग
करके मुनिपना अंगीकार कर लिया, रथ को वापिस मोड़कर गिरनार की तरफ गमन कर
दिया। यह बात सुनकर वै
था। शास्त्र में उनकी कथा आती है
मुनिराज पधारते हैं
सम्बोधित करते हुए कहते है
नही देता। मुनिराज का ऐसा उपदेश सुनकर सिंह की आंखों में आंसु आ जाते हैं
वै
वै

करणानुयोग में दोष-कल्पना का निराकरण

....तथा कितने ही जीव कहते हैं

कर्मप्रकृतियों का कथन किया व त्रिलोकादिक का कथन किया; सो उन्हें जान लिया कि 'यह इस प्रकार है

व्रत-दानादि करें, या आत्मानुभवन करें- इससे अपना भला हो।

उनसे कहते हैं

करते नहीं हैं

हैं

इसलिये इसका फल अति उत्तम होता है

बाह्यनिमित्त के साधन है

जाये तब रागादिक दूर होते हैं

विशेष कार्यकारी है

सर्वोत्तम कार्य है

तब अन्य विकल्प होते हैं

उपयोग को लगाता है

यह विचार वर्तमान भी रागादिक घटाता है

कारण है

जीव-कर्मादिक के नानाप्रकार से भेद जाने, उनमें रागादिक करने का प्रयोजन नहीं है

होता है

प्रश्न:- करणानुयोग में गुणस्थान, मार्गणास्थान औ कथन किया है

अथवा आत्मा का अनुभव करें तो भला होता है

समाधान:- परमेश्वर तो वीतराग हैं

परन्तु भक्ति करने से अपने परिणाम मंदकषायरूप होते हैं

होता है

इसकारण इसका फल उत्तम है

तथा व्रतादिक तो कषाय घटाने के बाह्य निमित्त साधन हैं
करता है

उपयोग लग जाये तब रागादिक दूर होते हैं

करणानुयोग का अभ्यास विशेष कार्यकारी है

करे तो मंदकषाय भी बराबर नहीं होती। इसलिये (शास्त्राभ्यास में) प्रमाद करना योग्य नहीं
है

तथा आत्मा का अनुभव तो धर्मी का मुख्य कार्य है
करणानुयोग का अभ्यास करना ही चाहिये ऐसा नहीं कहना है
विशेष काल नहीं रहा जा सकता औ
करणानुयोग का अभ्यास करना योग्य है

तत्त्वज्ञान के बिना अकेले करणानुयोग के अभ्यास में रुक जाये तो धर्म नहीं होता।

करणानुयोग के अभ्यास से श्रद्धा विशेष निर्मल होती है
वर्तमान रागादिक घटाता है
करणानुयोग के अभ्यास में उपयोग लगाना चाहिये।

मोह औ

है

शास्त्र पढ़-पढ़कर क्या करना है

पालन करना चाहिय, जीओ औ

(वस्तुस्थिति यह है

है

अहिंसा है

निकालता है

उसकी दृष्टि करके अंतर स्थिरता करने के लिये यहाँ भी कहा जाता है

प्रश्न:- अंतिम परावर्तन शेष रहे तभी मार्गानुसारीपना आता है

उत्तर:- जिसकी दृष्टि संसार पर है
में परिभ्रमण का भाव है
तक रहेगा, अहित के कारणों का सेवन करता है
ऐसे भान बिना राग औ
ज्ञानगुण की प्रतीति होती है

जिसको मेरा संसार दीर्घकाल तक है
रहित स्वभाव की प्रतीति नहीं है

गोम्मटसार आदि ग्रंथों में मोहनीय आदि कर्मों की स्थिति बहुत बतलाई हो तो भी उतनी
स्थिति में अटकाने का उद्देश्य नहीं है
बतलाना है
कर्मादिक का ज्ञान सच्चा है
प्रचुर भावकलंक परिणाम के कारण निगोद में रहता है
जीव मनुष्य होकर केवलज्ञान प्राप्त कर लेता है
लिये है

....यहाँ कोई कहे- कोई कथन तो ऐसा ही है
योजनादि का निरूपण किया उनमें क्या सिद्धि है

उत्तर:- उनको जाननेपर उनमें कुछ इष्ट-अनिष्ट बुद्धि नहीं होती, इसलिये
पूर्वोक्त सिद्धि होती है

फिर वह कहता है
को भी जानते हुए वहाँ इष्ट-अनिष्टपना नहीं मानते, इसलिये वह भी कार्यकारी
हुआ।

उत्तर:- सरागी जीव रागादि प्रयोजन बिना किसी को जानने का उद्यम नहीं
करता; यदि स्वयमेव उनका जानना हो तो अंतरंग रागादिक के अभिप्रायवश वहाँ से

उपयोग को छुड़ाना ही चाहता है
 वहाँ उपयोग लगाता है
 में इस लोक का कोई प्रयोजन भासित हो जाये तो रागादिक हो आते है
 द्वीपादिक में इस लोक सम्बन्धी कार्य कुछ नहीं है

यदि स्वर्गादिक की रचना सुनकर वहाँ राग हो, तो परलोक सम्बन्धी होगा;
 उसका कारण पुण्य को जाने तब पाप छोड़कर पुण्य में प्रवर्ते इतना ही लाभ होगा;
 तथा द्वीपादिक को जाननेपर यथावत् रचना भासित हो तब अन्यमतादिक का कहा
 झूठ भासित होने से सत्य श्रद्धानी हो औ
 उपयोग की निर्मलता हो; इसलिये वह अभ्यास कार्यकारी है

प्रश्न:- कोई कथन तो ऐसा ही है
 किया है

उत्तर:- अहो! भगवान ने असंख्यद्वीप, समुद्र जाने है
 मेरा ज्ञान भी इतनी ही सामर्थ्य वाला है
 नहीं होती। जीव असंख्यद्वीप समुद्रों में जन्म धरता है
 कर लेता है
 पूर्व संस्कार के स्मरण से ज्ञान (आत्मज्ञान) प्राप्त करते है
 का कारण होता है
 छूटकर परलोक की बुद्धि (आत्महित करने की बुद्धि) होती है

प्रश्न:- यदि ऐसा है
 इष्ट-अनिष्टपना नहीं मानते इसलिये वह भी कार्यकारी हुआ।

उत्तर:- सरागी जीव रागादि प्रयोजन बिना किसी को भी जानने का उद्यम नहीं करता;
 परन्तु यदि स्वयं उनका जानना हो तो अंतरंग रागादि अभिप्राय के वश से वहाँ से उपयोग को
 छुड़ाना ही चाहता है
 में) उपयोग लगता है
 रागादि होते है

असंख्यात द्वीप व समुद्रादि को जाननेपर उनमें असंख्यात पंचम गुणस्थानवर्ती श्रावक
हैं

असंख्यात है

भासे तो राग होता है

परन्तु समुद्र आदि का पानी या पत्थर आदि का यहाँ कोई उपयोग नहीं है

के ज्ञान से राग नहीं होता। तथा स्वर्गादिक का वर्णन सुनकर यह मंद कषाय का फल है
जाने औ

अपेक्षा पुण्य परिणाम करता है

तथा द्वीपादि को जाननेपर यथावत् रचना भासित होती है
हुआ मिथ्या है

मिट जाता है

तीर्थकर होते हैं

कथित है

का अभ्यास भी कार्यकारी है

....तथा कितने ही कहते हैं

अभ्यास में खेद होता है

उनसे कहते हैं

है

उपयोग लग जाता है

अभ्यास होता जाने उसका अभ्यास करना, तथा जिसका अभ्यास हो ही न सके
उसका कै

तथा तू कहता है

से सुखी रहे वहाँ तो पाप ही होता है

ऐसा विचार करके करणानुयोग का अभ्यास करना।....

प्रश्न:- करणानुयोग में कठिनता बहुत है

उत्तर:- जो वस्तु शीघ्र जानने में आती है
हुई वस्तु को बारंबार जानने का उत्साह भी नहीं होता है
करना योग्य है

के बजाय विचार करने से, शास्त्राभ्यास करने से मंदकषाय तो होती है
नहीं करें तो अकेला पापभाव होता है

तथा तू कहता है
पाप होता है
अभ्यास करना योग्य है

चरणानुयोग में दोष-कल्पना का निराकरण

....तथा कितने ही जीव ऐसा कहते हैं
उपदेश है
चाहे जै

उनसे कहते हैं
। है
कोई क्रिया होती है
औ

आश्रय पाकर परिणाम हो सकते हैं
निषेध करना समयसारादि में कहा है
बाह्य ऐसे श्रावक-मुनिधर्म होते हैं
करनेपर पाँचवे-छठवें आदि गुणस्थानों में रागादि घटनेपर परिणामों की प्राप्ति होती है

तथा यदि बाह्यसंयम से कुछ सिद्धि न हो तो सर्वार्थसिद्धिवासी देव सम्यग्दृष्टि
बहुत ज्ञानी है
गुणस्थान होता है

किसलिये संयम ग्रहण करें? इसलिये यह नियम है
परिणाम निर्मल नहीं हो सकते; इसलिये बाह्य साधन का विधान जानने के लिये
चरणानुयोग का अभ्यास अवश्य करना चाहिये।....

कोई जीव कहता है
कुछ सिद्धि नहीं है
विचारकर वह इस उपदेश से विमुख रहता है
उससे कहते हैं
बाह्य क्रिया अपने भाव पूर्वक होती है
है
छद्मस्थ जीव के भाव औ
परिणाम बिना भी क्रिया होती है
शरीर गिर जाता है
जीव को अशुभभाव-हरितकाय (सब्जी आदि) काटने का भाव होता है
आदि के कटने की क्रिया होती है
वस्तु को हाथ में लेता है
के लिये लिया है
पूर्वक हुई है
पर भी हमारा भाव नहीं था ऐसा कहनेवाला मिथ्यादृष्टि है
के लिये परवस्तु के छोड़ने का उपदेश आया है
निमित्त-नै

मुनि के परिणाम निर्दोष आहार ग्रहण करने के होते हैं
क्रिया होती है
मारने की क्रिया हो ऐसा नहीं होता। जिसको हिंसा का भाव न हो उसको बाह्य में किसी को
न मारनेरूप बाह्य क्रिया निमित्तरूप होती ही है
वर्तती है

पै

के परिणाम औ

परिणाम नहीं होते, परन्तु परिणाम औ

हम श्रावक हैं

नहीं हो सकता। बाह्य क्रिया अच्छी हुई इसलिये परिणाम अच्छे हुए ऐसा नहीं है

अच्छे होते हैं

करे उसके निमित्त-नै

कोई मुनि प्रमाद रहित होने पर भी उनके पै

परवशता से होता है

जाता है

झुका दे, यह बात अलग है

करता औ

कुदेवादिक को नमन करनेवाले को मिथ्यात्व परिणाम का सद्भाव है

अन्यमत के देवादि को माननेवाला तो गृहीत मिथ्यादृष्टि है

क्रिया होनेपर भी अपने को सम्यग्दृष्टि कहनेवाले की बात मिथ्या है

परिणामवाले को बारह व्रतादि की क्रिया होती है

व्रतादि की क्रिया हो औ

परिणाम औ

अथवा सदोष आहार ले ऐसा नहीं होता।

जिनमंदिर में यक्ष की मूर्ति स्थापित करनेवाला सम्यग्दृष्टि नहीं हो सकता। पहले

देवलोक का इन्द्र सम्यग्दृष्टि है

संसार के लिये क्षेत्रपाल की मान्यता करते हैं

औ

मान्यतावाले को अंतर में संसार की रुचि विद्यमान है

कि परिणाम उसरूप नहीं है

बाह्य पदार्थ निमित्त है
 होते; परन्तु निमित्त के आश्रय से परिणाम होते हैं
 छह अनायतनों का निषेध किया गया है
 किया है
 है
 होता। जिनके अंतर में वीतरागता प्रकट हुई है
 ही नहीं। कोई कहता है
 विद्यमान हैं
 मुझको मिथ्यात्व के परिणाम क्रमसर होते हैं
 मद्य, मांसादि छोड़ने को कहा है
 परिणाम होते है
 सत्समागम करो-ऐसा उपदेश आता है
 नहीं होते; परन्तु उपदेश ऐसा आता है

श्रीमद् राजचन्द्रजी से एक व्यक्ति ने पूछा कि आप व्यवहार को उड़ाते हो? श्रीमद्जी ने उत्तर दिया कि भगवान महावीर जिसको व्यवहार कहते हैं परिचय (समागम) करो तो तुम्हे इस बात का पता पड़ेगा। अब परिचय करने से अर्थात् पर से उसकी समझ में आयेगा? नहीं। वह समझेगा तो अपनी ही योग्यता से; परन्तु हम क्या कहना चाहते है भानपूर्वक ऐसे उपदेश वक्तव्य आते हैं आत्मा के अधिकार की बात नहीं है करो। वहाँ कहने का आशय यह है हो वहाँ ब्रह्मचारी को एकान्त में नहीं बै लिये स्त्रीसंग का निषेध किया है भोजन तो जड़ है गरिष्ठ) भोजन निमित्त है परिणाम है

तथा सम्यग्दर्शन पूर्वक बाह्य में बारह व्रतादि ले औ
 आवे-ऐसा हो सकता है
 धारण करते हैं
 प्रभु, मेरे आत्मा के उपकार के लिये मुझे भावलिंग औ
 धारण कर ले, पश्चात भावलिंगपना-मुनिपना आता है
 मुनिपना अंगीकार करने का विकल्प प्रथम आता है
 नहीं है
 वीतरागता बढ़ती है
 वह द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव देखता है
 बाह्य से मुनिपना लेने के पश्चात अंतर में सातवां गुणस्थान आता है
 निमित्त-नै

सर्वार्थसिद्धि के देव एकावतारी है
 संयम नहीं है
 घटाने से पाँचवाँ गुणस्थान आता है
 देव को पाँचवाँ गुणस्थान आ जाना चाहिये। तथा शांतिनाथ आदि तीन तीर्थकर चक्रवर्ती थे,
 वे यह मानते थे कि हमारा धन तो ज्ञानानंद स्वरूप है
 उनके स्वामी नहीं है

बाह्य संयम साधन बिना अंतरंग परिणाम निर्मल नहीं होते। बाह्य प्रवृत्ति वै
 हो औ
 भी कहे कि हमको मुनिपना है
 है
 मद्य-मांसादि के भक्षण की क्रिया नहीं होती है

अंतर में रागादि घट जानेपर बाहर में भी उसके योग्य क्रिया होती है
 गुणस्थान हुआ हो औ
 भी पाँच महाव्रतादि के परिणाम होते है

संयम ग्रहण किया है
संबंध है

परिणामों के निमित्त-नै

इसप्रकार चरणानुयोग का अभ्यास भी करना योग्य है

द्रव्यानुयोग में दोष-कल्पना का निराकरण

....तथा कितने ही जीव कहते हैं

का हीनपना प्रगट किया है

कहा है

इसलिये इनका पढ़ना सुनना योग्य नहीं है

उससे कहते है

छोड़ेंगे; उसीप्रकार विपरीतबुद्धि अध्यात्मग्रन्थ सुनकर स्वच्छन्द हो जाये तो विवेकी तो अध्यात्मग्रन्थों का अभ्यास नहीं छोड़ेंगे। इतना करे कि जिसे स्वच्छन्द होता जाने, उसे जिस प्रकार वह स्वच्छन्द न हो उस प्रकार उपदेश दे। तथा अध्यात्मग्रन्थों में भी स्वच्छन्द होने का जहाँ-तहाँ निषेध करते है

तो स्वच्छन्द होता नहीं; परन्तु एक बात सुनकर अपने अभिप्राय से कोई स्वच्छन्द हो तो ग्रन्थ का तो दोष है

तथा यदि झूठे दोष की कल्पना करके अध्यात्मशास्त्रों को पढ़ने-सुनने का निषेध करें तो मोक्षमार्ग का मूल उपदेश तो वहाँ है

मोक्षमार्ग का निषेध होता है

है

करना; उसीप्रकार सभा में अध्यात्म-उपदेश होनेपर बहुत से जीवों को मोक्षमार्ग की प्राप्ति होती है

अध्यात्मशास्त्रों का तो निषेध नहीं करना।

तथा अध्यात्मग्रंथो से कोई स्वच्छन्द हो; सो वह तो पहले भी मिथ्यादृष्टि था, अब भी मिथ्यादृष्टि ही रहा। इतना ही नुकसान होगा कि सुगति न होकर कुगति होगी। परन्तु अध्यात्म-उपदेश न होनेपर बहुत जीवों के मोक्षमार्ग की प्राप्ति का

अभाव होता है

अध्यात्म-उपदेश का निषेध नहीं करना।....

कोई जीव कहता है
अभ्यास नहीं करना चाहिये। समयसार आदि में तो व्रतादि का उड़ाया है
व्यवहार आता है
तथा सम्यग्दृष्टि के विषय-भोग को निर्जरा का कारण कहा है
समस्त क्रियायें संसार के लिये हैं
निर्जरा होती हैं
प्रवर्तित होता है
द्रव्यानुयोग में दोष बताता है

देखो! पण्डितजी ने यह बात लिखी है
विरोध करने वाले जीव थे औ
आदि ग्रंथ नहीं पढ़ना चाहिये, अपितु महाबंध ग्रंथ पढ़ना चाहिये, कारण कि बंध का ज्ञान करने
से बंध का नाश होता है
पण्डितजी कहेंगे कि सर्वप्रथम द्रव्यानुसार का अभ्यास करना चाहिये।

जै

इसीप्रकार कोई विपरीतदृष्टि जीव अध्यात्म ग्रंथ सुनकर स्वच्छंदी हो जाये तो इससे विवेकी
जीव तो अध्यात्म ग्रंथों का अभ्यास नहीं छोड़ता। समयसार आदि द्रव्यानुयोग के शास्त्रों में
आत्मज्ञान की मुख्यता से रागादिक का अभाव करने का ही उपदेश होता है
कराने का अभिप्राय नहीं है

आत्मा के परिणाम में अज्ञानी स्वच्छंदी होकर पापभाव करे, तो उसको छुड़ाने का
उपदेश भी देते हैं

परन्तु (अपने अपराध से) कोई जीव स्वच्छंदी होवे तो इसमें शास्त्र का कुछ दोष नहीं है

जै

यदि 'पड़ेगा तो मरेगा' ऐसा कहने में उसका आशय बचाने का था; परन्तु उस बालक की माँ

ने 'मरेगा' यह शब्द पकड़कर झगड़ा किया, तो वह उस महिला के आशय को नहीं समझी; इसीप्रकार कोई जीव द्रव्यानुयोग के कथन को यथार्थरूप से नहीं समझे औ स्वच्छंदता से पकड़ ले तो इससे शास्त्र का दोष नहीं है

यदि मिथ्यादोष-कल्पना से अध्यात्म शास्त्रों के पठन-श्रवण का निषेध किया जाये तो मोक्षमार्ग का मूल उपदेश तो वहाँ ही है
धर्म का निषेध होता है
मूलधर्म का उपदेश नहीं है
वाले ने तो मोक्षमार्ग का ही निषेध किया कहलायेगा। इसलिये सभा में अध्यात्म शास्त्र पढ़ना चाहिये।

शिष्य का प्रश्न है
स्वच्छंदी होना संभव है
भाई! जो द्रव्यानुयोग सम्यग्दर्शन का मुख्य कारण है
उसका निषेध करने से मोक्षमार्ग का निषेध होता है
नहीं होता।

लोग यह मानते हैं
मोक्षमार्ग नहीं है
उसका उपदेश तो द्रव्यानुयोग में ही मुख्य है
भूलकर बाहर में खोजता था; इसीप्रकार अज्ञानी चिदानंद स्वरूप आत्मा को भूल गया है
अपने ज्ञान से जाने तो प्राप्त हो। समयसारादि ग्रंथों में तीर्थकर के मुख से प्रवाहित वाणी का सार है
का त्याग अथवा ग्रहण नहीं कर सकता। वर्तमान रागादि चिदानंद आत्मा का स्वरूप नहीं है
दया, दान, भक्ति का भाव आता है
है
में आती है
नहीं होता।

बहुत से लोग तो कहते हैं
 है
 द्रव्यानुयोग का उपदेश करना योग्य है
 कदाचित किसी को हानि होती हो तो कहीं वर्षा का निषेध नहीं होता; इसीप्रकार सभा में
 अध्यात्म उपदेश देने से बहुत जीवों को मोक्षमार्ग की प्राप्ति होती है
 अपनी स्वच्छन्दता से पाप में प्रवर्ते तो इससे अध्यात्म उपदेश का निषेध करना योग्य नहीं है
 जै

जीवों का कल्याण होता है
 है

‘आत्मा बोल नहीं सकता’ जब यह बात बाहर आई तो अज्ञानी मूढ़ कहता है
 नहीं बोलता तो क्या इसका बाप बोलता है
 ज्ञाता-दृष्टा है
 होते हैं
 से समझने पर कल्याण होता है
 भी मिथ्यादृष्टि ही था औ
 कुछ अन्तर नहीं पड़ा; परन्तु हाँ इतना होता है शुभपरिणाम के बदले अशुभपरिणाम करता
 है ।

अध्यात्म उपदेश न होनेपर तो बहुत जीवों को मोक्षमार्ग की प्राप्ति का अभाव होता है
 इससे बहुत जीवों का अहित होता है
 अज्ञानी उपदेश देता है
 करते-करते धर्म हो जायेगा; परन्तु इससे तो बहुत जीवों का बुरा होता है
 दिया जाये तो बहुत जीवों का बहुत बुरा होता है
 निषेध करना योग्य नहीं है

....तथा कितने ही जीव कहते है
 उत्कृष्ट है
 व्रतसंयमादिक का ही उपदेश देना योग्य है

उनसे कहते है
 होते है
 अभ्यास करनेपर होता है
 सम्यग्दृष्टि हो, पश्चात् चरणानुयोग के अनुसार व्रतादिक धारण करके व्रती हो। -
 इसप्रकार मुख्यरूप से तो निचलीदशा में ही द्रव्यानुयोग कार्यकारी है
 जिसे मोक्षमार्ग की प्राप्ति होती न जाने उसे पहले किसी व्रतादिक का उपदेश देते है
 इसलिये ऊँची दशावालों को अध्यात्म-अभ्यास योग्य है
 दशावालों को वहाँ से पराङ्मुख होना योग्य नहीं है

तथा यदि कहोगे कि ऊँचे उपदेश का स्वरूप निचली दशावालों को भासित नहीं होता।

उसका उत्तर यह है
 प्रगट करे, वह योग्य नहीं है
 अपनी बुद्धि अनुसार थोड़ा-बहुत भासित हो; परन्तु सर्वथा निरुद्यमी होने का पोषण करे वह तो जिनमार्ग का द्वेषी होना है

तथा यदि कहोगे कि यह काल निकृष्ट है
 की मुख्यता नहीं करना।

तो उनसे कहते है
 आत्मानुभवनादिक द्वारा सम्यक्त्वादिक होना इस काल में मना नहीं है
 आत्मानुभवनादिक के अर्थ द्रव्यानुयोग का अवश्य अभ्यास करना।

वही षट्पाहुड़ (मोक्षपाहुड़ में) कहा है

अज्ज वि तिरयणसुद्धा अप्पा भारुण जंति सुरलोए।

लयंतियदेवत्तं तत्थ चुआ णिव्वुदिं जंति।।77।।

अर्थ :- आज भी त्रिरत्न से शुद्ध जीव आत्मा को ध्याकर स्वर्गलोक को प्राप्त होते है

बहुरि... । इसलिये इस काल में भी द्रव्यानुयोग का उपदेश मुख्य चाहिये ।....

प्रश्न:- द्रव्यानुयोगरूप अध्यात्म उपदेश है
जीवों को ही कार्यकारी है
योग्य है
तो उसका नुकसान होता है
है
निचलीदशावालों को तो पुण्य आदि करने का उपदेश देना योग्य है

समाधान:- जिनमत में तो यह परिपाटी है
सम्यग्दर्शन हुए बिना व्रत, संयमादि यथार्थ नहीं होते । त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेव के पंथ में तो यह
क्रम है
पता नहीं है
हो उसको ही सच्चे व्रतादि होते हैं
भेदज्ञान होना चाहिये ।

वह सम्यक्त्व स्व-पर का यथार्थ श्रद्धान होनेपर होता है
अभ्यास करनेपर होता है
होता है

इसप्रकार द्रव्यानुयोग के अनुसार श्रद्धान करके सम्यग्दृष्टि होता है
चरणानुयोग के अनुसार व्रतादि धारण करके व्रती होता है

आत्मा में राग होता है
अध्यात्म ग्रंथों के अभ्यास से ही होता है
नवीनता नहीं है
का अभ्यास प्रथम करना योग्य है
जाता है
करना योग्य है
अन्य हो-ऐसा नहीं है

इसप्रकार मुख्यरूप से तो निचलीदशावाले को ही द्रव्यानुयोग कार्यकारी है होनेपर भी कोई लौ अनादि से अनंतबार किया है कुछ भी कार्यकारी नहीं है कार्यकारी है सुनना ही नहीं वह तो सम्यग्दर्शन का निषेध करता है

जो सम्यग्दर्शन के लायक ही न हो- ऐसा जाने तो उसको ब्रतादि का उपदेश देते हैं उससे कल्याण नहीं होता। जिसको धर्म समझने की ही दरकार न हो औ आग्रह करता हो, तो फिर उससे कहते हैं परन्तु धर्म नहीं होगा।

अतः उच्चदशावालों को अध्यात्म उपदेश कार्यकारी है अध्यात्म उपदेश से पराङ्मुख होना योग्य नहीं है सुनना चाहिये।

प्रश्न:- उत्कृष्ट उपदेश का स्वरूप निचलीदशावालों को भासित नहीं होता। अतः ऐसी बात हमको समझ में नहीं आती। यह एल.एल.बी. औ है नहीं है

उत्तर:- अन्य तो अनेक प्रकार की चतुराई जाने औ नहीं है चलता है नहीं है

संसार की रुचिवाला होने से संसार के सब काम जानता है सकते-ऐसा कहता है चतुराई बताते हैं कार्य होने पर भी उसका हल निकालता है

कहता है
 रुचि होती है
 तो वह हमे समझमें नहीं आता ऐसा कहता है
 के लिये मेहनत करता है
 अपने ज्ञान के क्षयोपशमानुसार तत्त्व भासित हुए बिना न रहे। जो अध्यात्म शास्त्रों के अभ्यास
 का ही निषेध करता है

द्रव्यानुयोग में कहते हैं
 होता। तब शिष्य ने शंका की कि यह तो ऊँचा उपदेश है
 के लिये नहीं है
 बताता है

संसार में महिलायें एक घड़ा लेने जाये या कपड़ा लेने जाये तो वहाँ भलीभाँति परीक्षा
 करती है है
 है इसप्रकार संसार के
 काम में तो चतुराई बताता है
 में चतुराई बताता है
 वह तो अपनी अरुचि बताता है
 उघाड़ हो, आत्मा की रुचि करके उस अनुसार पुरुषार्थ करे तो समझमें आ सकता है
 सर्वथा निरूद्यमी होकर प्रमाद करनेवाला तो जै

वस्तु को यथार्थ समझने के लिए अध्यात्मादि ग्रंथों का अभ्यास नहीं करनेवाला प्रमादी
 है
 हुआ है
 इसलिये प्रथम जिसमें तत्त्वज्ञान है

प्रश्न:- यह काल निकृष्ट अर्थात् हल्का है
 मुख्यता करना योग्य नहीं है
 उपदेश करो, यह योग्य नहीं है

देखो ! अज्ञानी सारे दिन पर की चिंता किया करता है
 नहीं मिलता । बाहर में तो जो होना हो वह होता है
 सकता- ऐसा वस्तु का स्वभाव है
 समाधान होता है
 नहीं होती है
 चाहिये ।

उत्तर:- यह काल साक्षात् मोक्ष न होने की अपेक्षा से हल्का है
 लिये सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट होना अभी निषिद्ध नहीं है
 द्रव्यानुयोग का अभ्यास अवश्य करना चाहिये । वर्तमान में भावलिंगी मुनियों का भी निषेध
 नहीं है
 अभ्यास करना योग्य है
 गया है

कुन्दकुन्दाचार्य ने अष्टपाहुड़ में कहा है
 ध्याकर स्वर्गलोक अथवा लौ
 होकर मोक्ष जाते हैं
 ध्याकर स्वर्गादि में जा सकते हैं
 स्वर्ग से निकलकर मनुष्य होकर मोक्ष प्राप्त करते हैं
 का अभ्यास मुख्य करना चाहिये । इस काल में यही करने योग्य है
 का उपदेश ही मुख्य देना चाहिये-ऐसा कहते हैं

यह बात सुनकर भी अज्ञानी ऐसा कहता है
 सकता-ऐसा मानने से तो एकांत हो जाता है
 हो जाता है

से एकांत

....कोई कहता है
 का उपदेश दिया वह तो कार्यकारी भी बहुत है
 द्रव्य-गुण-पर्यायादिक का व प्रमाण-नयादिक का व अन्यमत के कहे तत्त्वादिक के

निराकरण का कथन किया, सो उनके अभ्यास से विकल्प विशेष होते हैं बहुत प्रयास करनेपर जानने में आते हैं

उनसे कहते हैं

जानता है

घटते हैं

इसप्रकार चारों अनुयोगों में दोष-कल्पना करके अभ्यास से पराङ्मुख होना योग्य नहीं है

प्रश्न:- स्व-पर का भेदविज्ञान करना तो सरल है

करना कठिन पड़ता है

भी विकल्प बहुत होते हैं

विकल्प आते हैं

यह सत्यमार्ग है

अध्यात्म शास्त्रों में आये बिना नहीं रहती।

कारणशुद्धपर्याय, क्रमबद्धपर्याय, की सूक्ष्म बात भी द्रव्यानुयोग में आती है

सुनकर अंदर में प्रमोद आना चाहिये, उसके बदले विकल्प हो जाता है

है

का क्षेत्र अत्यन्त छोटा है

समान है

अपेक्षा से दोनों समान है

अंतर है

अरुचि नहीं होती। ज्ञान का विकास होनेपर भी यह बात समझने के लिए निवृत्त नहीं होता,

इसलिये समझना कठिन पड़ता है

करना चाहिये। अब उसका उत्तर देते हैं

समाधान:- सामान्य जानने से विशेष जानना बलवान है

सामान्य से विशेष बलवान है

तात्पर्य यह है

विशेष दृढ़ता होती है

द्रव्य-गुण-पर्याय आदि का जितना-जितना अधिक ज्ञान होता है

निर्मल होता है

तीनों की बात ली है

इसप्रकार चारों अनुयोगों के शास्त्रों का अभ्यास करना, परन्तु उनमें दोष निकालना योग्य नहीं है

व्याकरण-न्यायादि शास्त्रों की उपयोगिता

....तथा व्याकरण-न्यायादिक शास्त्र है

क्योंकि उनके ज्ञान बिना बड़े शास्त्रों का अर्थ भासित नहीं होता। तथा वस्तु का स्वरूप भी इनकी पद्धति जाननेपर जै

भासित नहीं होता; इसलिये परम्परा कार्यकारी जानकर इनका भी अभ्यास करना; परन्तु इन्हीं में फँस नहीं जाना। इनका कुछ अभ्यास करके प्रयोजनभूत शास्त्रों के अभ्यास में प्रवर्तना।

तथा वै

व्यवहारधर्म के अभिप्राय से बिना खेद के इनका अभ्यास हो जाये तो उपकारादि करना, पापरूप नहीं प्रवर्तना; औ नहीं है

इसप्रकार जिनमत के शास्त्र निर्दोष जानकर उनका उपदेश मानना।....

व्याकरण-न्यायादि शास्त्रों का भी थोड़ा-बहुत अभ्यास करना, कारण कि इनके ज्ञान बिना महान शास्त्रों का अर्थ भासित नहीं होता। आचार्यों ने संस्कृतादि ग्रंथों में अनेक न्याय प्रतिपादित किये हैं

के अभ्यास को परम्परा कार्यकारी कहा है

का किंचित अभ्यास करके प्रयोजनभूत शास्त्रों के अभ्यास में प्रवर्तना चाहिये। द्रव्यानुयोग के अभ्यास बिना अकेला न्याय-व्याकरण का अभ्यास कार्यकारी नहीं है

दूसरे वै

व्यवहारधर्म के अभिप्राय से खेद रहितपने से उनका अभ्यास बन जाये तो उपकारादि करना परन्तु पापरूप नहीं प्रवर्तना। तथा यदि उनका अभ्यास न हो तो नहीं हो, उससे कुछ बिगाड़ नहीं है

इसप्रकार सनातन मार्ग के शास्त्रों को निर्दोष जानकर उनका उपदेश मानना चाहिये। तथा चारों अनुयोगों में कहीं दोष नहीं निकालना चाहिये।

अनुयोगों में दिखाई देनेवाले परस्पर विरोध का निराकरण

....अब, शास्त्रों में अपेक्षादिक को न जानने से परस्पर विरोध भासित होता है उसका निराकरण करते हैं

प्रथमादि अनुयोगों की आमनाय के अनुसार यहाँ जिसप्रकार कथन किया हो, वहाँ उसप्रकार जान लेना; अन्य अनुयोग के कथन को अन्य अनुयोग के कथन से अन्यथा जानकर सन्देह नहीं करना। जै

कांक्षा, विचिकित्सा का अभाव कहा; कहीं भय का आठवें गुणस्थान पर्यन्त, लोभ का दसवें पर्यन्त, जुगुप्सा का आठवें पर्यन्त उदय कहा; वहाँ विरुद्ध नहीं जानना। सम्यग्दृष्टि के श्रद्धानपूर्वक तीव्र शंकादिक का अभाव हुआ है

सम्यग्दृष्टि शंकादि नहीं करता, उस अपेक्षा चरणानुयोग में सम्यग्दृष्टि के शंकादिक का अभाव कहा है

गुणस्थान पर्यन्त पाया जाता है

कहा है

पहले अनुयोगों के उपदेश विधान में कई उदाहरण कहे है अपनी बुद्धि से समझ लेना।....

अब, शास्त्रों की अपेक्षा नहीं समझने के कारण परस्पर विरोध भासित होता है निराकरण करते हैं

प्रथमानुयोग आदि चारों अनुयोगों में आमनाय अनुसार जहाँ जै

वै

अनुयोग के कथन से अन्यथा जानकर वहाँ संदेह नहीं

करना चाहिये। द्रव्यानुयोग में कहते हैं
 नहीं कहना औ
 कुशील कहा गया है
 प्रथमानुयोग में पुण्य करने योग्य है
 चरणानुयोग में शुभभाव करना ऐसा कहा है
 हुए बिना नहीं रहता। जिस -जिस अनुयोग में जिस प्रकार कथन किया हो उसे भलीभांति
 समझ लेना चाहिये। चरणानुयोग में शुभपरिणाम करने का अनुमोदन नहीं है
 अकेले अशुभभाव में प्रवर्तता हो औ
 का कथन किया होता है

जै

भय का औ
 तक कहा, तो वहाँ विरोध नहीं जानना चाहिये। कारण कि सम्यग्दृष्टि के श्रद्धानपूर्वक तीव्र
 शंकादि का अभाव हुआ है
 से सम्यग्दृष्टि के शंकादि का अभाव है
 किया होता है
 सम्यग्दृष्टि के बुद्धिपूर्वक जुगुप्सा नहीं होती। इसीप्रकार सर्वत्र समझ लेना।

इस आत्मा को पूर्ण शुद्धदशा होना मोक्ष है
 उन्हें यथावत समझाने के लिये शास्त्रों में अपेक्षा के कथन किया होता है
 समझना चाहिये।

आत्मा ज्ञानानंदमूर्ति है
 अज्ञानी जीव देव-शास्त्र-गुरु की प्रतीति को ही सम्यग्दर्शन मानता है
 सम्यग्दृष्टि को तीव्र शंकादि नहीं होते-यह बात चलती है
 शंकादि नहीं करता है
 धर्म होगा-ऐसी तीव्र शंका सम्यग्दृष्टि को नहीं होती। वह यह मानता है
 भिन्न है
 आदि से पुण्य होता है

सम्यग्दृष्टि को चरणानुयोग की अपेक्षा मुख्यपने शंकादि नहीं होते, परन्तु करणानुयोग की अपेक्षा से आठवें गुणस्थान तक भयादि के परिणाम होते हैं चाहिये। इसीप्रकार पूर्व में चारों अनुयोग के उपदेश के विधान में कितने ही दृष्टान्त कहे हैं वे अपेक्षा पूर्वक अपनी बुद्धि से समझ लेना चाहिये।

....तथा एक ही अनुयोग में विवक्षावश अनेकरूप कथन करते हैं में प्रमादों का सातवें गुणस्थान में अभाव कहा, वहाँ कषायादिक प्रमाद के भेद कहे; तथा वहीं कषायादिक का सद्भाव दसवें आदि गुणस्थान पर्यन्त कहा, वहाँ विरुद्ध नहीं जानना; क्योंकि यहाँ प्रमादों में तो जिन शुभाशुभभावों के अभिप्राय सहित कषायादिक होते हैं

है

दसवें आदि गुणस्थान पर्यन्त सद्भाव कहा है

तथा चरणानुयोग में चोरी, परस्त्री आदि सप्तव्यसन का त्याग पहली प्रतिमा में कहा है

क्योंकि सप्तव्यसन में तो चोरी आदि कार्य ऐसे ग्रहण किये हैं

है

है

जानना। इसीप्रकार अन्यत्र जानना।

तथा नाना भावों की सापेक्षता से एक ही भाव का अन्य-अन्य प्रकार से निरूपण करते हैं

महाव्रतादिक होनेपर भी द्रव्यलिंगी को असंयमी कहा, वहाँ विरुद्ध नहीं जानना; क्योंकि सम्यग्ज्ञान सहित महाव्रतादिक तो चारित्र है होनेपर भी असंयमी ही है

तथा जिसप्रकार पाँच मिथ्यात्वों में भी विनय कहा है में भी विनय कहा है

उनकी भी विनय करके धर्म मानना वह तो विनय मिथ्यात्व है विनय करने योग्य है

तथा जिसप्रकार कहीं तो अभिमान की निन्दा की, औ
 विरुद्ध नहीं जानना; क्योंकि मान कषाय से अपने को ऊँचा मनवाने के अर्थ
 विनयादि न करे वह अभिमान तो निंद्य ही है
 वह अभिमान प्रशंसा योग्य है

तथा जै
 जानना; क्योंकि माया कषाय से किसी को ठगने के अर्थ चतुराई करे वह तो निंद्य
 ही है
 इसीप्रकार अन्यत्र जानना।

तथा एक ही भाव की कहीं तो उससे उत्कृष्ट भाव की अपेक्षा निन्दा की ही,
 औ
 जै
 शुद्धभाव की अपेक्षा जानना, औ
 अशुभक्रिया की अपेक्षा जानना। इसीप्रकार अन्यत्र जानना।

तथा इसीप्रकार किसी जीव की ऊँचे जीव की अपेक्षा निन्दा की हो वहाँ सर्वथा
 निन्दा नहीं जानना औ
 प्रशंसा नहीं जानना; परन्तु यथासम्भव उसका गुण-दोष जान लेना।

इसीप्रकार अन्य व्याख्यान जिस अपेक्षा सहित किये हों उस अपेक्षा से उनका
 अर्थ समझना.....

एक ही अनुयोग में विवक्षावश से अनेकरूप कथन किये जाते हैं
 में, भावलिंगी मुनिराज के सातवें गुणस्थान में प्रमाद नहीं होता-ऐसा कहा है
 कषाय दसवें गुणस्थान तक होती है
 गुणस्थान में भी जितना व्रतादि का भाव आता है

आत्मा में अहिंसादि के व उपदेशादि के परिणाम होते हैं
 है
 बुद्धिपूर्वक प्रमाद नहीं होता है

स्थूल राग नहीं होता। इसलिये वहाँ अभिप्रायपूर्वक राग नहीं होने के कारण वह प्रमाद औ कषाय नहीं है होती है

तथा चरणानुयोग में चोरी, परस्त्रीगमनादि सात व्यसनों का त्याग पहली प्रतिमा में कहा है

समझना चाहिये। श्रावकदशा में सम्यग्दर्शन पूर्वक सातों व्यसनों का त्याग होता है प्रतिमा में भी उनका त्याग कहा है जिससे दंडादिक प्राप्त होते है त्याग करने योग्य कहे गये है ऐसा अर्थ समझना। इसीप्रकार सर्वत्र समझ लेना चाहिये।

तथा नाना प्रकार के भावों की सापेक्षता से एक ही भाव को अन्य प्रकार से निरूपण किया जाता है महाव्रतादि होने पर भी द्रव्यलिंगी को असंयमी कहा है कि सम्यग्दर्शन सहित व्रतादिक को चारित्र कहा, परन्तु अज्ञान पूर्वक व्रतादि होने पर भी वह असंयमी ही है करते-करते धर्म हो जायेगा-ऐसी उसकी मान्यता होने से वह त्यागी होने पर भी मूढ़, अज्ञानी, असंयमी है रहित अंतर स्वरूप में लीनता हुई हो वही चारित्र है समझना चाहिये।

शास्त्र में आता है क्रिया भी अनंतबार की है नहीं होने पर भी वह द्रव्यलिंगी की अपेक्षा अनंतगुना ऊँचा है को जड़ मानता है

अज्ञानी अनादिकाल से मैं संबंधी भूल है

है

होने पर भी असंयमी है

मोह-राग-द्वेष प्रत्यक्ष दुःखदायक हैं
संबंधी भूल है
लाभदायक माननेवाले को आस्रव तत्त्व का पता नहीं है

अज्ञानी पुण्यभाव को भला औ
है

संवर तत्त्व संबंधी भूल है
दुःखरूप मानता है
धर्म दुःखदायक नहीं होता, सुखरूप ही होता है
उसकी आसातना करता है

आत्मा में रमणता करना चारित्र है
करने को चारित्र मानता है
निर्जरा तत्त्व की भूल है
मानता है

इसलिये वहाँ सुख नहीं है
हमें ऐसे सिद्ध नहीं चाहिये- ऐसा कहता है
यह पता नहीं है

बुद्ध किसी का भला नहीं करते, अतः

बुद्ध प्रभु आकुलता रहित है

तथा जै

है

करके उसमें धर्म मानना तो विनय मिथ्यात्व है
उनका यथायोग्य विनय करना विनयतप है
विनयमिथ्यात्व भी कहा है

है

धर्मों के साथ समन्वय करना विनयमिथ्यात्व है

परन्तु अभी जिसका गृहीत मिथ्यात्व भी नहीं छूटा है

आत्मा का धर्म तो अपूर्व है

आदि में धर्म मानता है

जिसको वीतरागमार्ग की व्यवहार से भी श्रद्धा नहीं है
नहीं है

धर्मी जीवों की यथायोग्य विनय करना विनयतप है

अपेक्षा से यथावत् समझना चाहिये। इन कथनों में विरोध नहीं है

औ

में नहीं पड़ना चाहिये, यथार्थ परीक्षा करके अपेक्षा समझनी चाहिये।

तथा जै

विरोध नहीं समझना चाहिये। कारण कि मान कषाय से अपने को उच्च मनवाने के लिये

विनयादि नहीं करना तो अभिमान है

नहीं करनेरूप अभिमान प्रशंसनीय है

‘ रघुकुल रीति ऐसी चली आई

प्राण जाय पर वचन न जाई ’

ऐसी उत्तम कुल की रीति है

स्थान पर वनवास हो जाता है

दिया हुआ वचन परिवर्तित नहीं होता। इसीतरह धर्म की नीति है

मानना, राग से धर्म नहीं मानना—यह रीति है

के पोषण के लिये चतुराई करे तो वह निंद्य है

लेना चाहिये; परन्तु उलझन में नहीं पड़ना चाहिये।

शास्त्र में अनेक प्रकार के कथन आते हैं

है

मिथ्यादृष्टि को नमस्कार नहीं करूंगा— ऐसा अभिमान (दृढ़ता) प्रशंसनीय है

कोई स्वच्छन्दी किसी को धक्का मारकर कहे कि यह तो शरीर की अवस्था है
 धक्का नहीं मारा है
 अभिमान नहीं होता। ज्ञान ज्ञान में रुकना चाहिये, इसके बदले ज्ञान राग औ
 है
 होना चाहिये; पर की पर्याय, शरीर की पर्याय अथवा राग पर्याय पर दृष्टि नहीं होना चाहिये।
 मै
 प्रकाशक ज्ञान सच्चा होता है

तथा जै
 समझना चाहिये। कारण कि माया कषाय से किसी को ठगने के लिये की जाने वाली चतुराई
 तो निंद्य ही है

तथा कहीं एक ही भाव की उससे उत्कृष्ट भाव की अपेक्षा से निन्दा की हो औ
 उससे हीन भाव की अपेक्षा प्रशंसा की हो तो वहाँ विरोध नहीं समझना चाहिये। जै
 शुभ क्रिया की निन्दा की हो तो वहाँ ऊँची शुभ क्रिया कराने का हेतु है
 में लगा रहता हो उसको स्वाध्याय, वाँचन, मनन आदि करने में लगाते है
 भान कर ऐसा कहते है
 का प्रयोजन है
 शुभभाव होता है
 हो वहाँ इससे नीची क्रिया अथवा अशुभ क्रिया की अपेक्षा से वै
 चाहिये। अन्यत्र भी ऐसा समझ लेना चाहिये।

दूसरे उच्च जीव की अपेक्षा किसी जीव की निन्दा की हो तो वहाँ उसकी सर्वथा निन्दा
 नहीं जानना चाहिये। किसी उच्च जीव अथवा मुनि की अपेक्षा से चौ
 हलका कहा है
 चाहिये। मिथ्यादृष्टि की अपेक्षा सम्यग्दृष्टि से कहते है
 दृष्टि के विषय की अपेक्षा से समकृति को अबंध कह देते है
 अपेक्षा निन्दा औ

लेना चाहिये। सम्यग्दृष्टि जीव भी अपने को पर्याय में पामर मानता है
मैं

....तथा शास्त्र में एक ही शब्द का कहीं तो कोई अर्थ होता है
होता है

सम्यग्दर्शन कहा, वहाँ दर्शन शब्द का अर्थ श्रद्धान है
शब्द का अर्थ वस्तु का सामान्य स्वरूप ग्रहणमात्र है
शब्द का अर्थ नेत्र द्वारा देखना मात्र है

वस्तुओं के प्रमाणादिक कथन में छोटे प्रमाणसहित हो उसका नाम सूक्ष्म, औ
प्रमाणसहित हो उसका नाम बादर- ऐसा होता है

में इन्द्रियगम्य न हो वह सूक्ष्म औ

जीवादिक के कथन में ऋद्धि आदि के निमित्त बिना स्वयमेव न रुके उसका नाम
सूक्ष्म औ

नाम सूक्ष्म औ

तथा प्रत्यक्ष शब्द का अर्थ लोकव्यवहार में तो इन्द्रिय द्वारा जानने का नाम
प्रत्यक्ष है

अपने में अवस्था हो उसका नाम प्रत्यक्ष है

वहाँ सर्वथा ज्ञान का अभाव नहीं जानना, सम्यग्ज्ञान के अभाव से अज्ञान कहा है
तथा जिस प्रकार उदीरणा शब्द का अर्थ जहाँ देवादिक के उदीरणा नहीं कही वहाँ
तो अन्य निमित्त से मरण हो उसका नाम उदीरणा है

उदीरणाकरण देवायु के भी कहा है

दिया जाये उसका नाम उदीरणा है

तथा एक ही शब्द के पूर्व शब्द जोड़ने से अनेक प्रकार अर्थ होते है
शब्द के अनेक अर्थ है

उसका नाम 'जिन' है

जानना। यहाँ कर्मशत्रु शब्दको पहले जोड़ने से जो अर्थ होता है

अन्य नहीं किया। तथा जै
जीवन-मरण का व्यवहार अपेक्षा कथन हो वहाँ तो इन्द्रियादि प्राण धारण करे वह
जीव है
करे वह जीव है
समय है
का नाम समय है
अर्थों में जै

तथा कहीं तो अर्थ अपेक्षा नामादिक कहते है
कहते है
परन्तु उसका जो रूढिरूप अर्थ हो वही ग्रहण करना। जै
वहाँ तो यह जीव को उत्तम स्थान में धारण करता है
तथा धर्मद्रव्य का नाम धर्म कहा वहाँ रूढि नाम है
परन्तु इस नाम की धारक एक वस्तु है
जानना।

तथा कहीं शब्द का जो अर्थ होता हो वह तो ग्रहण नहीं करना, परन्तु वहाँ जो
प्रयोजनभूत अर्थ हो वह ग्रहण करना। जै
वहाँ किंचित् सद्भाव पाया जाये तो वहाँ सर्वथा अभाव नहीं ग्रहण करना; किंचित्
सद्भाव को गिनकर अभाव कहा है
अभाव कहा, वहाँ इसी प्रकार अर्थ जानना। तथा नोकषाय का अर्थ तो यह है
'कषाय का निषेध'; परन्तु यह अर्थ ग्रहण नहीं करना; यहाँ तो क्रोधादि समान यह
कषाय नहीं है
इसीप्रकार अन्यत्र जानना।

तथा जै
समयसार कलश में यह कहा है
यावत् प्रवृत्ति को प्राप्त नहीं हुई तावत् यह अनुभूति प्रगट हुई"; सो यहाँ यह प्रयोजन

है

कोई कार्य हुआ हो, वहाँ ऐसा कहते हैं
हो गया। ऐसा ही प्रयोजन यहाँ ग्रहण करना। इसीप्रकार अन्यत्र जानना।

तथा जै

प्रयोजन हो वह जानना। ज्ञानार्णव में ऐसा कहा है
है
अन्यत्र जानना।

इसी रीति सहित औ

यथासम्भव जानना, विपरीत अर्थ नहीं जानना।....

शास्त्र में एक ही शब्द का कहीं कोई तो कहीं कोई अर्थ होता है
पहिचानकर उसका संभावित अर्थ समझना चाहिये। जै
दर्शन का अर्थ श्रद्धान है
अर्थ वस्तु का सामान्य ग्रहण होता है
पूर्व ज्ञेय तरफ सामान्य झुकाव होना दर्शन है
विषय अखण्ड, अभेद सामान्य स्वभाव है
है

द्धा का

लक्ष्मी का माहात्म्य आता है
नेत्र द्वारा भगवान के दर्शन किये वह ज्ञानोपयोग है

तथा सूक्ष्म औ

छोटा-बड़ा कहते हैं
उसका नाम बादर-ऐसा अर्थ होता है

पुद्गल स्कंधादि के कथन में जो इन्द्रियगम्य न हो वह सूक्ष्म कहलाता है
इन्द्रियगम्य हो वह बादर-ऐसा अर्थ होता है
स्वयं नहीं रुके उसका नाम सूक्ष्म है
पतला हो तो सूक्ष्म, जै
द्ध आदि के निमित्त बिना

बादर कहते हैं

नाम सूक्ष्म है

अब प्रत्यक्ष शब्द का अर्थ बताते हैं
है

प्रत्यक्ष कहते हैं

अनुभव कहते हैं

आत्मा में स्थिर होकर अनुभव करता है
चाहिये।

द्धपूर्वक राग-द्वेष छूटकर

तथा अवधिज्ञान द्वारा इस रूपी पदार्थ को जाना, वहाँ पर का ज्ञान यथार्थ होता है
पर को जानना तो व्यवहार है

व्यवहार है

प्रत्यक्ष कहा है

सीमंधर भगवान महाविदेहक्षेत्र में विराजमान हैं

स्पष्ट जानता है

आत्मा के अनुभव की अपेक्षा स्व में स्थिरता करना प्रत्यक्ष है
चाहिये।

तथा मिथ्यादृष्टि के अज्ञान कहा है
नहीं हो गया है

तथा उदीरणा शब्द का अर्थ जहाँ देवादिक के उदीरणा नहीं कही, क्योंकि देव की आयु
की उदीरणा नहीं होती, वहाँ तो अन्य निमित्त से मरण नहीं इसलिये उदीरणा नहीं कही है
दस करणों के कथन में देवों के भी उदीरणा करण कहा है

अपकर्षण, निद्धत, निकाचित आदि; इनमें उदीरणा भी एक करण है

को उदयावली में डालने का नाम उदीरणा है

आते; परन्तु भविष्य के कर्म का उदय पहले आया इसलिये उदीरणा कही है
कथन है

द्ध ही है

बताने के लिये उसे उदीरणा कहा जाता है

तथा कहीं अर्थ अपेक्षा, तो कहीं रूढ़ि अपेक्षा से नामादिक कहे जाते हैं
 अपेक्षा से नाम हो वहाँ उसका शब्दार्थ ग्रहण नहीं करना, उसका रूढ़ि अर्थ ग्रहण करना। जै
 कि आत्मा ज्ञानानंद है
 वीतरागी पर्याय को धार रखता है
 उत्कृष्ट वीतरागता बताई है
 में धरे उसका नाम धर्म है
 द्रव्य गति करे तब धर्मद्रव्य निमित्त है
 समझना चाहिये वहाँ धर्म नाम रूढ़ि से है

शास्त्र की कथन की पद्धति को नहीं समझे तो अज्ञान नहीं मिटता है

कहीं शब्द का जो अर्थ होता हो वह तो ग्रहण नहीं करना, परन्तु वहाँ जो प्रयोजनभूत अर्थ
 हो वह ग्रहण करना चाहिये। जै
 तो सर्वथा अभाव ग्रहण नहीं करना; परन्तु किंचित सद्भाव को नहीं गिनकर वहाँ अभाव कहा
 है
 का अर्थ नहीं समझे तो विपरीतता का अभाव नहीं हो सकता। यहाँ कहा कि सम्यग्दृष्टि के
 सम्यक् अर्थात् प्रशंसनीय दृष्टि है
 होनेवाले शुभाशुभ जितना मैं
 है
 में रागादि होते हैं
 सर्वथा राग नहीं है

द्ध हूँ- ऐसा ज्ञाता-दृष्टापना प्रगट

समकिति किसी समय युद्ध में होता है
 दृष्टि पलट गई है
 कारण श्रद्धा सम्यक् हुई है
 परन्तु स्वभाव की दृष्टि होने से उनका अभाव कहा है
 सम्यग्दृष्टि के संसार नहीं है
 मानता है द्ध चिदानंद हूँ, ऐसी दृष्टि के बल से अल्पराग को गिना नहीं है

राग का सर्वथा अभाव नहीं जानना । किसी समय पंचमगुणस्थानवर्ती श्रावक को भी रौ होता है

उपाधि रहित है

यहाँ कहा है

समयमात्र का कर्म परमाणुओं का आस्रव होता है

नहीं हैं

भी अधर्म समझता है

नहीं है

अज्ञानी शरीरादि को तथा राग को अपना स्वरूप मानता है

का पता नहीं है

मर्यादा में नहीं हैं

दानादि के परिणाम आते है

की अपेक्षा से उसको आस्रव-बंध नहीं है

आता है

भी उनके राग नही होता-ऐसा कहा है

लिये कही है

धर्मास्तिकाय का शब्दार्थ करो तो यह अर्थ नहीं होगा । पुण्य-पाप रहित वीतरागी शांति को धर्म कहते हैं

शब्दार्थ के अनुसार धर्मास्तिकाय का अर्थ करे तो अर्थ घटित नहीं होता । (धर्म तो वीतरागी शांति है

रूढ़ि अनुसार अर्थ समझना चाहिये ।

क्रोध,मान,माया, लोभ को कषाय कहते है

कहते हैं

निषेध नहीं समझना, अपितु वे कषायें क्रोधादि जै

नोकषाय कहा है

चाहिये ।

तथा कहीं युक्ति द्वारा कथन किया हो वहाँ उसका प्रयोजन ग्रहण करना चाहिये। जै श्री समयसार कलश में ऐसा कहा कि धोबी के दृष्टान्तवत् परभाव के त्याग की दृष्टि जहाँ तक प्रवृत्ति को प्राप्त नहीं हुई इतने में तो यह अनुभूति प्रगट होती है से दूसरा वस्त्र ले आया हो, तो वह वस्त्र अन्य का है देता है

ओढ़कर सो रहा है

तो ऐसा भान होनेपर विकार में परिणमन नहीं हुआ वहाँ सम्यक् दृष्टि हो गई।

वहाँ प्रयोजन यह है

सम्यक्त्व होगा-ऐसी मान्यता थी, उस परभाव का त्याग हुआ इतने में अनुभूति प्रगट हो गई। स्वभाव के सत्कार औ प्रगट होती है

लोक में भी किसी के आने के साथ ही कोई कार्य हुआ हो तो वहाँ ऐसा कहा जाता है कि तुम आये नहीं वहाँ तो यह कार्य हो गया! इसीतरह विभाव परिणमन नहीं हुआ वहाँ स्वभाव का कार्य हो गया। वहाँ विभाव पर दृष्टि नहीं; परन्तु स्वभाव की रुचि होनेपर विभाव की रुचि छूट जाती है

उसकी रुचि नहीं होने से उसका अभाव कहा जाता है

तथा कहीं कुछ प्रमाणादि कहे हों वे ही प्रमाणादि नहीं मान लेना; परन्तु उस कथन का जो प्रयोजन हो उसे जानना। जै

में दो तीन सम्यक्त्वी होते हैं

नियमपूर्वक इतने ही नहीं हैं

कथन का आशय समझना चाहिये।

इसीप्रकार अन्यत्र भी समझ लेना चाहिये। इसी पद्धति पूर्वक तथा अन्य भी अनेक प्रकार से शब्दों के अर्थ होते हैं

....तथा जो उपदेश हो, उसे यथार्थ पहिचानकर जो अपने योग्य उपदेश हो उसे अंगीकार करना। जै

परन्तु ग्रहण उन्हीं का करे जिनसे अपना रोग दूर हो। अपने को शीत का रोग हो तो उष्ण औ

को कार्यकारी है

परन्तु ग्रहण उसीका करे जिनसे अपना विकार दूर हो जाये। अपने को जो विकार हो उसका निषेध करने वाले उपदेश को ग्रहण करे, उसके पोषक उपदेश को ग्रहण न करे; यह उपदेश औ

यहाँ उदाहरण कहते है

व्यवहारपोषक उपदेश है

उपदेश का ग्रहण करके यथावत् प्रवर्ते, औ

व्यवहारपोषक उपदेश का ग्रहण करके यथावत् प्रवर्ते। तथा पहले तो व्यवहार श्रद्धान के कारण आत्मज्ञान से भ्रष्ट हो रहा था, पश्चात् व्यवहार उपदेश ही की मुख्यता करके आत्मज्ञान का उद्यम न करे; अथवा पहले तो निश्चयश्रद्धान के कारण वै

करके विषय-कषाय का पोषण करता है

बुरा ही होता है

तथा जै

लगाता है

तो गुणवान हो औ

को अंगीकार करना। तथा आप तो दोषवान है

गुणवान पुरुषों को नीचा दिखलाये तो बुरा ही होगा। सर्वदोषमय होने से तो किंचित! दोषरूप होना बुरा नहीं है

कहा है

होने के अर्थ यह उपदेश नहीं है

निन्दा है

यहाँ कोई कहे- ऐसा है

निगोद जाता है

उत्तर:- ऊँची पदवी धारण करके उस पद में सम्भवित नहीं है
करे तो प्रतिज्ञाभंगादि होने से महादोष लगता है
ऐसे गुण-दोष हों तो हों, वहाँ उसका दोष ग्रहण करना योग्य नहीं है

तथा उपदेशसिद्धान्तरत्नमाला में कहा है
क्रोध भी क्षमा का भंडार है
इस उपदेश से वक्ता क्रोध करता रहे तो उसका बुरा ही होगा। यह उपदेश श्रोताओं
के ग्रहण करने योग्य है
गुण ही मानेंगे। इसीप्रकार अन्यत्र जानना।

तथा जै
औ
तो दुःख ही पायेगा। उसीप्रकार किसी के किसी कार्य की अति मुख्यता हो उसके
अर्थ उसके निषेध का अति खींचकर उपदेश दिया हो; उसे जिसके उस कार्य की
मुख्यता न हो व थोड़ी मुख्यता हो वह ग्रहण करे तो बुरा ही होगा।

यहाँ उदाहरण- जै
का उद्यम ही नहीं है
शास्त्राभ्यास नहीं है
छोड़ दे औ

तथा जै
उसके अर्थ- 'यदि पृथ्वी उलट जाये तब भी हिंसा करने से पुण्यफल नहीं होता' -
ऐसा उपदेश दिया है

औ
हिंसा रहित सामायिकादि धर्म में लगे नहीं तब उसका तो बुरा ही होगा। इसीप्रकार
अन्यत्र जानना।

तथा जै
हित हो तबतक उसका ग्रहण करे; यदि शीत मिटने पर भी उष्ण औ

करता ही रहे तो उल्टा रोग होगा। उसीप्रकार कोई धर्मकार्य है जबतक उस धर्म कार्य से हित हो तबतक उसका ग्रहण करे; यदि उच्चदशा होनेपर निचलीदशा सम्बन्धी धर्म के सेवन में लगे तो उल्टा विकार ही होगा।

यहाँ उदाहरण- जै

आत्मानुभव होनेपर प्रतिक्रमणादि का विकल्प करे तो उल्टा विकार बढ़ेगा; इसी से समयसार में प्रतिक्रमणादिक को विष कहा है प्रभावनादि धर्मकार्य कहे है आरम्भ छोड़कर चै अन्यत्र भी जानना।

तथा जै

महादोष उत्पन्न हो, उसीप्रकार ऊँचा धर्म बहुत भला है न हों औ अपना अशुभ विकार भी नहीं छूटा हो औ उल्टा विकार बढ़ेगा; तथा भोजनादि विषयों में आसक्त हो औ को अंगीकार करे तो दोष ही उत्पन्न होगा। तथा जै छूटे नहीं औ इसीप्रकार अन्यत्र जानना।

इसीप्रकार औ

करना। बहुत विस्तार कहाँ तक कहें; अपने को सम्यग्ज्ञान होनेपर स्वयं ही को यथार्थ भासित होता है युगपत् नहीं कहे जाते; इसलिये उपदेश तो एक ही अर्थ की मुख्यतासहित होता है

तथा जिस अर्थ का जहाँ वर्णन है

मुख्यता करे तो दोनों उपदेश दृढ़ नहीं होंगे; इसलिये उपदेश में एक अर्थ को दृढ़ करे; परन्तु सर्व जिनमत का चिह्न स्याद्वाद है इसलिये जो उपदेश हो उसे सर्वथा नहीं जान लेना। उपदेश के अर्थ को जानकर वहाँ

इतना विचार करना कि यह उपदेश किस प्रकार है
जीव को कार्यकारी है
पश्चात् अपनी दशा देखे। जो उपदेश जिसप्रकार अपने को कार्यकारी हो उसे उसी
प्रकार अंगीकार करे; औ
इसप्रकार उपदेश के फल को प्राप्त करे।

यहाँ कोई कहे- जो तुच्छबुद्धि इतना विचार न कर सके वह क्या करे?

उत्तर :- जै

बहुत व्यापार करे, परन्तु नफा-नुकसान का ज्ञान तो अवश्य होना चाहिये। उसी
प्रकार विवेकी अपनी बुद्धि के अनुसार जिसमें समझे सो थोड़े या बहुत उपदेश को
ग्रहण करे, परन्तु मुझे यह कार्यकारी है
अवश्य होना चाहिये। सो कार्य तो इतना है
घटाना। सो यह कार्य अपना सिद्ध हो उसी उपदेश का प्रयोजन ग्रहण करे; विशेष
ज्ञान न हो तो प्रयोजन को तो नहीं भूले; इतनी तो सावधानी अवश्य होना चाहिये।
जिसमें अपने हित की हानि हो, उस प्रकार उपदेश का अर्थ समझना योग्य नहीं है

इसप्रकार स्याद्वाददृष्टि सहित जै
होता है

तथा जो उपदेश होता है
उपदेश औ
भक्ति आदि के शुभ परिणाम आते हैं
मै
इन्द्र औ
पर्व में) आठ दिन तक भक्ति करते हैं
आयु स्थिति लम्बी होने से महाविदेह में असंख्य तीर्थकरों के कल्याणक महोत्सव मनाते हैं
तथापि समझते है
जाते है

है

नहीं आता -इत्यादि निश्चय का उपदेश आता है
करना।

जै

दूर हो वै

औ

के उपदेश को जाने; परन्तु अपना विकार दूर हो औ
उपदेश को ग्रहण करे, परन्तु विकार के पोषक उपदेश का ग्रहण न करे, वह उपदेश अन्य को
कार्यकारी है

उदाहरण यह है

उपदेश है

दूसरी ओर बात आती है

यह पुण्य है

हूँ-ऐसा समझना। जो स्वच्छंदी है

परिणाम तेरे हैं

स्वच्छंदता का निषेध करते है

चाहिये।

वीतराग कथित शास्त्रों की कथन पद्धति किसप्रकार की है

किसे कहना ? दया,दान,व्रत,पूजा आदि के भाव होते है

आत्मा आनंदकंद ध्रुव है

में दो प्रकार का उपदेश आता है

उसको व्यवहार कब कहते हैं

स्वभाव का अनुभव होना सम्यग्दर्शन है

शुभराग को व्यवहार कहते हैं

जै

गहराई में बहुत अंतर होता है

वास्तविकता में बहुत अंतर है
 सच्चे देव-शास्त्र-गुरु के प्रति राग, पाँच महाव्रतों का राग भी जहर है
 के स्वाद को लूटनेवाला है
 पहिचान होना निश्चय है
 ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदि उसके गुण है
 व्यवहार भी किसको ? राग रहित आत्मा की श्रद्धा -ज्ञान करके उसमें लीनता करनेवाले के
 राग को व्यवहार कहते हैं

अनंतकाल में जीव निश्चय-व्यवहार के यथार्थ स्वरूप को नहीं समझा है
 समझता तो अंतर आनंद का अनुभव होता ही । देह,मन,वाणी, कर्म आदि जड़ है
 जगत के सत् पदार्थ है
 (परिणमन) होता है
 दुःखदायक है
 गुण-गुणी के भेद का विचार रहना व्यवहार है

दया-दानादि व्यवहार है
 निश्चय से भ्रष्ट है
 व्यवहार करेंगे तो आत्मज्ञान होगा- ऐसा माननेवाले आत्मज्ञान से भ्रष्ट है
 अवलम्बन से कभी सम्यग्दर्शन नहीं होता ।

मैं
 ग्रहण-त्याग कर सकना माननेवाला मूढ़ है
 विष्णु को जगत का कर्ता माननेवाले की तरह मिथ्यादृष्टि है

जै
 श्रद्धा करने से भ्रांति औ
 चिरायते की थै
 मात्र जै
 सकता । जगत के पदार्थ उत्पाद-व्यय-ध्रौ

होता, नयी पर्याय से उपजता औ
परपदार्थ की अवस्था बदल दूँ वह मूढ़ है

तथापि जो यह मानता है

जड़ पदार्थों का रूपांतर होना - क्रियांतर होना वह उनकी सत्ता की बात है
में चै

कोई किसी का कुछ कर सकता है

भाषा जड़ की अवस्था है
से निर्मित है

इसी प्रकार पुद्गल परमाणुओं की अनेक जातियां है

जाति भाषा बने ऐसी है

नहीं होती औ

ही नहीं है

उसको निश्चय-व्यवहार का पता नहीं है

भाषा जड़ की पर्याय है

आत्मा से भाषा बोलना माननेवाला विष्णु जगतकर्ता की मान्यतावाले की तरह मिथ्यादृष्टि है

भाषावर्गणा के परमाणु शब्दरूप परिणमते है

अतः उसके व्यवहार नहीं होता। भाषा औ

निश्चय है

जीव अनादि से व्यवहारमूढ़ है

होता है

आत्मस्वभाव राग से रहित है

कहा भी है

द्रव्यक्रिया रुचि जीवड़ा जी, भाव धर्म रुचिहीन;

उपदेशक भी ऐसे ही जी क्या करे जीव नवीन?

चन्द्रानन जिन सुनिये अरदास।।

जीव द्रव्यक्रिया में धर्म मानते हैं
 स्वभाव का भान नहीं है
 इसकारण वे आत्मा की श्रद्धा-ज्ञान किस तरह करें? अतः हे प्रभु: यह प्रार्थना सुनो!

“पहले निश्चय श्रद्धान द्वारा वै
 निश्चय उपदेश की ही मुख्यता करके विषय-कषाय का पोषण करता है
 हूँ ऐसी कल्पना करता है
 तथा हिंसा, झूठ, चोरी आदि के भाव ऐसे के ऐसे करता है
 नहीं है

जों विषय-कषायरूप पाप के परिणाम करनेपर भी पाप नहीं मानता वह निश्चय से भ्रष्ट
 है

दुःखरूप है
 भाव अपने होनेपर भी उन्हें स्वीकार नहीं करनेवाला औ
 मिथ्यादृष्टि है

आत्मा में अनंत परपदार्थों का अभाव है
 दूसरे तत्त्व (द्रव्य) का स्पर्श नहीं करता, स्पर्श नहीं किया औ
 भान बिना जंगल में जानेपर भी विकार में पड़ा है
 भी वह सदा जंगल में है

जै
 में काम नहीं आती; इसीतरह एक भी बात यथार्थरूप से समझे तो सब बात समझ में आती
 है

अज्ञानी कहता है
 का संग करने का भाव किसने किया है
 पुरुषार्थ नहीं है
 स्वभाव के आश्रय से राग नहीं घटानेवाले का बुरा ही होता है

तथा आत्मानुशासन में कहते हैं
होना था तो दोषमय ही क्यों न हुआ ? ' इस कथन का मर्म नहीं समझे तो वस्तु स्वरूप नहीं समझा जा सकता ।

अरे धर्मात्मा ! मुनि होकर दोष क्यों लगाता है
देता-ऐसा कहने का भाव है
तुझे दोषवान होना था तो दोषमय ही क्यों नहीं हुआ ? किंचित भी दोष करने योग्य नहीं है
उसके लिये यह शिक्षा है
नीचा दिखावे तो उसका बुरा ही होता है

चन्द्रमा को लक्ष करके कहते हैं
इसीतरह धर्मात्मा को कोई कहता है
परन्तु वहाँ हेतु अधिक दोष कराने का नहीं है
में दोष निकाले तो यह योग्य नहीं है
हैं
निकालता है
जिज्ञासा है
अन्य की भूल निकालता है
होना बुरा नहीं है

तथा वहाँ ऐसा कहा कि दोषमय ही क्यों नहीं हुआ ? यह तो तर्क किया है
सर्वदोषरूप होने के लिये नहीं कही गई है
भी निन्दा करता है
पर भी राग आ जाता है

प्रश्न:- यदि ऐसा है
जाता है
मुनि होकर वस्त्र रखे तो निगोद में जाता है
अज्ञानी करता है

उत्तर:- मुनि को आत्मा का भान होता है
 दिगम्बर होते हैं
 रखकर मुनिपना मनाना छोटा दोष नहीं है
 परिग्रह का ग्रहण) मन, वचन, काय से नहीं करते, नही कराते औ
 -ऐसी प्रतिज्ञा होती है
 रखकर) किंचित भी परिग्रह रखे तो निगोद में जाता है
 है
 है
 दोष नहीं है
 करनेवाला एक समय भोजन करता है
 प्रतिज्ञा लेकर उसका भंग करता है

धर्मात्मा में जरा सा दोष हो तो ग्रहण नहीं करना, तो फिर मुनि परिग्रह रखे तो निगोद में
 जाता है
 परिग्रह रखे, रखावे या रखने का अनुमोदन करे तो नौ
 रहता। वस्त्र-पात्र परिग्रह है
 निगोद में जाता है
 हैं
 उपकरण औ
 वस्त्र सहित मुनिपना मानने- मनानेवाले मिथ्यादृष्टि है
 हो सकती है

मुनि का ऊँचा पद धारण करके उस पद में असंभवित कार्य करना प्रतिज्ञाभंग है
 अज्ञानी को नौ
 अधःकर्मी आहार नहीं लेते, झूठ नहीं बोलते, चोरी नही करते, विषय सेवन नहीं करते, परिग्रह
 नहीं रखते-ये सब कार्य स्वयं नहीं करते, नहीं कराते तथा इनका अनुमोदन भी नही करते ।
 मुनि अन्य के लिये व्यवस्था नहीं कराते। उनके पास एक मोरपिच्छी, कमण्डलु औ

के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं होता । मुनिपना नहीं होनेपर भी मुनिपना मानना प्रतिज्ञा भंग है

है

में जायेगा । हम साधु हैं

वास्तविक मुनिपने का परिज्ञान नहीं है

उसको महादोष लगता है

समकृती को कदाचित युद्ध औ

है

आत्मा हूँ ऐसा भान है

जाता; इसलिये दोष ग्रहण करना योग्य नहीं है

श्रीमदजी ने कहा है

लहा स्वरूप न वृत्ति का गृहा व्रत अभिमान ।

ग्रहे नहीं परमार्थ को लेने लौ

जो वस्त्र रखता है

वस्त्र धारण करके मुनिपना मानने-मनवानेवाला मिथ्यादृष्टि है

निगोद है

क्रमशः निगोद है

स्थिति दो हजार सागर की है

विरोध करता है

श्रवण भी रुचता नहीं है

यहाँ तो उपदेश की पद्धति कै

है

है

को ग्रहण करने के लिये नहीं है

बात है
 ही होता है
 कि हमारे हित के लिये है
 इसीतरह अन्यत्र भी समझ लेना चाहिये।

तथा जै

उसको गर्म पेय अनुकूल नहीं होता, अपितु वह उससे दुःख पाता है
 किसी कार्य की अति मुख्यता हो उसके लिये उसके निषेध का अति दृढ़तापूर्वक उपदेश दिया
 होता है

उसका बुरा ही होता है

चौ

करता; तो उससे कहते हैं

-तो इस कथन का हेतु आत्मानुभव कराने का है

धर्म नहीं है

नहीं करे, सम्यग्दर्शन नही करे तो उससे कहते हैं

जो शास्त्रवाँचन की अति मुख्यता करता है

करना धर्म है

परन्तु उससे आत्मा को क्या लाभ है

उपदेश को सुनकर स्वच्छन्दी होता है

(इस उपदेश से छल ग्रहण करके) शास्त्राभ्यास छोड़ दे तो उसका बुरा होता है

शास्त्रकार का आशय भलीभाँति समझना चाहिये। अखण्डानन्द द्रव्यस्वभाव के अवलम्बन
 से अनुभव होता है

तथा कोई यज्ञ में औ

होता हो तब तो मछलियों को भी धर्म होना चाहिये -ऐसा उपदेश देते हैं

भी हिंसा करने से पुण्य नहीं होता; परन्तु भक्ति पूजा में पुण्यभाव है

नही है

एकेन्द्रिय जीवों की हिंसा मानकर पूजा छोड़ दे तो उसका बुरा होता है
 भूमिकानुसार यथायोग्य शुभराग आता है
 वहाँ (अभिप्राय) अनुकंपा का है
 अनुकंपा का है
 को धर्म मानना भी भूल है
 बहुत होता है
 उपयोग न लगाये तो बुरा होता है
 नहीं होती। सम्यक्त्व के बिना सामायिक, प्रौ
 होते। आत्मा शुद्ध चिदानंद है
 समझ लेना चाहिये।

सम्यक्त्व प्राप्त करना अपूर्व है
 दस रूपये की वस्तु सात में दे तो समझना चाहिये कि वह वस्तु चोरी की है
 मे सामायिक मानना भूल है

तथा जै
 वहाँतक ही उसका ग्रहण करते है
 करे तो उल्टा रोग होता है
 धर्म कार्य से हित हो वहाँतक ही उसका ग्रहण करना चाहिये; परन्तु यदि ऊँची दशा होनेपर भी
 यदि नीची दशा से संबंधी धर्मकार्य के सेवन में लगा ही रहे तो उल्टा बिगाड़ ही होता है
 आत्मा के ज्ञानपूर्वक प्रतिक्रमणादि कार्य में रहे तो वह शुभभाव है
 के समय कहे कि प्रतिक्रमण का समय हो गया इसलिए मुझे प्रतिक्रमण करना चाहिये; तो वह
 वस्तु स्वरूप को नहीं समझता। निर्विकल्प अनुभव के समय प्रतिक्रमण का राग करने योग्य
 नहीं है

मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय औ
 वापस हटना नहीं आता वह अव्रत से पीछे किसतरह हटेगा ? आत्मा ज्ञानानंद है
 विकार है

किसी वेषधारी साधु से पूछा गया कि क्षपक श्रेणी का काल आया हो तब तुम प्रतिक्रमण करोगे या नहीं ? उसने जवाब दिया कि प्रतिक्रमण तो नहीं छोड़ा जा सकता । देखो अज्ञानता ! क्षपक श्रेणी शुद्धता है

चाहिये ऐसा माननेवाले को तत्त्व का पता नहीं है

भावलिङ्गी संत को भी प्रतिक्रमण का शुभराग आता है समझते हैं

पड़ा रहकर आत्मा का अनुभव नहीं करे तो उसको विवेक नहीं है वै

पाप मिटाने के लिए धर्म कार्य कहे हैं कार्य है

शुभपरिणाम ज्ञानी को भी आये बिना नहीं रहते; परन्तु उसी में रुक जाए औ करे, तो वह वस्तु स्वरूप को नहीं समझता । स्वरूप के अनुभव के समय जाप जपने का अथवा प्रतिक्रमण करने का शुभभाव नहीं होता । आत्मा का भान होने के पश्चात् श्रावक अथवा मुनि को प्रतिक्रमण का शुभराग आता है है

रहस्य का अज्ञानी को पता नहीं होने से वह शुभराग को ही धर्म मान बै

जो स्वरूप में लीन है निर्विकल्प अनुभव में नहीं रह सके उसको भक्ति आदि व्यवहार धर्म करने को कहा जाता है

तथा व्यापार धंधा छोड़कर, स्त्री-परिवार छोड़कर मंदिर या स्वाध्याय भवनादि बनाने में देखरेख रखना औ

मंदिर बनाने का शुभभाव करता है का अधिकारी हो तो यह कै

जै वह निरोगी जीव के लिए उपयुक्त है विकारभाव दूर न हुआ हो औ

व्यापारादि का अशुभभाव न छूटा हो औ
है

चाहता है

प्रकार ध्यान नहीं हो सकता। इसलिये उसको शास्त्र स्वाध्याय, सत् समागम करना चाहिये; परन्तु यदि शुभभाव तो नहीं करे औ नहीं रहेंगे।

व्यापारादि का विकल्प न छूटा हो औ
है

तो शुद्ध में किसप्रकार जायेगा ? शुभ-अशुभभाव से रहित आत्मा का ध्यान करना समता है जिसे यह पता नहीं है सकती। तथा भोजनादि में अति आसक्ति है है

इसीप्रकार अन्य उपदेश को भी सच्चे विचार से जानकर अंगीकार करना चाहिये। यहाँ उसका विस्तार कहाँतक करें ? सम्यग्ज्ञान होने पर स्वयं को ही यथार्थ भासित होता है क्या, राग क्या, संयोग क्या, निमित्त क्या, इस भेदज्ञान बिना सब व्यर्थ है

उपदेश तो वचनात्मक है
सम्यग्दर्शन की बात के समय पुण्य को हीन बताते है
हैं

वीतरागमार्ग का लक्षण स्याद्वाद है
औ

अपने को कार्यकारी हो उस अनुसार उसको स्वयं अंगीकार करना चाहिये। तथा जो उपदेश जानने योग्य ही हो उसको यथार्थ जान लेना चाहिये। इसप्रकार उपदेश के फल को प्राप्त करना चाहिये।

पृथ्वी पलटने पर भी हिंसा में धर्म नहीं है
में किंचित (हिंसारूप) पाप लगता है

डालना अनुकंपा का भाव है

धर्म भी नहीं माना जा सकता। अन्य प्राणी को बचाना, गायों को घास डालना, श्वानों को दूध पिलाना, प्यासे को पानी देना- इन भावों को कोई जीव यदि पाप कहता है क्योंकि ये भाव पुण्य हैं

पुण्य रहित आत्मा का भान करना धर्म है करना चाहिये। शास्त्र के कथन की शै हजारों मनुष्य, हाथी, घोड़ा आदि जाते हैं होती है

महोत्सव के समय महोत्सव में एकेन्द्रियादि जीवों की हिंसा होनेपर भी उससमय जो शुभभाव है

इसप्रकार हेतु (प्रयोजन) देखना चाहिये। साधर्मी संग को वात्सल्यभोज का भाव शुभ है भोजन बनाने में सूक्ष्म जीवों की हिंसा होती है

इसी ग्रंथ में पूर्व में भी आ चुका है साधु के चरण वंदन के लिए दूर तक जाते हैं जीव हिंसा होती है मरण होने पर उसका संस्कार करते हैं भी दिखती है प्रयोजन नहीं है

में
साधु का

प्रश्न:- यदि अल्प बुद्धिमान इतना विचार नहीं कर सके तो वह क्या करे?

उत्तर:- जै

नुकसान का ज्ञान अवश्य होना चाहिये। नफा या नुकसान होना तो पुण्य-पाप के आधीन है परन्तु विचार तो अवश्य करता है करता है

उपदेश ग्रहण करता है

शुभ में आना भी नुकसान है

“मुझे यह कार्यकारी है

आत्मा की सच्ची श्रद्धा-ज्ञान करके राग घटाना कार्यकारी है
जब आत्मा में लीन नहीं रह सके तब शुभभाव में रहना; परन्तु वह शुभभाव बुखार है
की निरोगता का कारण नहीं है
(क्षयरोग) की शंका हो जाती है
शुभराग की रुचि करने से आत्मा में क्षयरोग लागू पड़ता है
परिणाम नहीं होता।

यहाँ कहते हैं
होनेपर कहीं भी अन्त नहीं आता। यथार्थ श्रद्धा-ज्ञान द्वारा राग-द्वेष घटते हैं
है
द्वारा घटाने के लिये है
चाहिये; इसीतरह धर्मी जीव को यथार्थ श्रद्धा-ज्ञान द्वारा राग घटाने का कार्य है
में राग की रुचि है

शुभ के कारण शुद्ध का कार्य प्रगट हो- ऐसा कभी नहीं होता है
करनेपर शुभभाव पर उपचार (आरोप) आता है
कार्यकारी नहीं है
श्रद्धा-ज्ञान द्वारा राग घटाना प्रयोजन है
हो, उपदेश का ऐसा अर्थ नहीं समझना चाहिये। जो अशुभ घटाने का प्रयत्न करता है
शुभाशुभरहित आत्मा का भान करने का प्रयत्न नहीं करता तो उसको हित की हानि होती है
अतः यथार्थ श्रद्धा-ज्ञान द्वारा राग घटाना चाहिये।

आत्मा में पर औ
है
अभ्यास करनेपर कल्याण होता है
यह स्याद्वाद नहीं, वरन एकान्त है
का कल्याण होता है

....यहाँ कोई प्रश्न करे- जहाँ अन्य-अन्य प्रकार सम्भवित हों वहाँ तो स्याद्वाद सम्भव है करे? जै करणानुयोग में छह महीना आठ समय में छह सौ नियम कहा है फिर मरकर साथ ही मनुष्यादि पर्याय में उत्पन्न होते है सागरोंप्रमाण औ मिलती है

उत्तर-- करणानुयोग में जो कथन है अनुयोग में कथन प्रयोजनानुसार है किया है मुनि तीर्थकर के साथ मोक्ष गये बतलाये, वहाँ यह जानना कि एक ही काल में इतने मोक्ष नहीं गये है साथ इतने मुनि तिष्ठे फिर आगे पीछे मोक्ष गये। इसप्रकार प्रथमानुयोग औ करणानुयोगका विरोध दूर होता है ने चयकर बीच मे अन्य पर्याय धारण की, उनका प्रयोजन न जानकर कथन नही किया। फिर वे साथ मनुष्यपर्याय में उत्पन्न हुए। इसप्रकार विधि मिलाने से विरोध दूर होता है

फिर प्रश्न है परन्तु कहीं नेमिनाथ स्वामी का सौ रामचन्द्रादिक की कथा अन्य -अन्य प्रकार से लिखी है सासादन गुणस्थान लिखा कहीं नहीं लिखा इत्यादि; इन कथनों की विधि किसप्रकार मिलेगी ?

उत्तर:- इसप्रकार विरोध सहित कथन कालदोष से हुए है ज्ञानी व बहुश्रुतों का तो अभाव हुआ औ

अधिकारी हुए

उनको भ्रम से कोई अर्थ अन्यथा भासित हुआ उसको ऐसे लिखा ; अथवा इस काल मे कितने ही जै कथन लिखे। इसप्रकार अन्यथा कथन हुए इसलिये जै लगा।

जहाँ विरोध भाषित हो वहाँ इतना करना कि यह कथन करनेवाले बहुत प्रामाणिक हैं आचार्यदिकों का कहा हुआ कथन प्रमाण करना। तथा जिनमत के बहुत शास्त्र है उनकी आमनाय मिलाना। जो कथन परम्परा आमनायसे मिले उस कथन को प्रमाण करना। इसप्रकार विचार करनेपर भी सत्य असत्य का निर्णय न हो सके तो 'जै केवली को भासित हुए है तत्त्वों का निर्धार हुए बिना तो मोक्षमार्ग होता नहीं है है तथा अन्य कथन का निर्धार न हो, या संशयादि रहे, या अन्यथा भी जानपना हो जाये; औ ऐसा जानना।....

प्रश्न:- जहाँ अन्य-अन्य प्रकार हो वहाँ तो स्याद्वाद संभव है शास्त्रों में विरुद्धता भासित हो तो वहाँ क्या करें? जै साथ हजारों मुनि मोक्ष पधारे, जबकि करणानुयोग में छह महीना आठ समय में छह सौ जीव मोक्ष जाते हैं मोक्ष गये? तथा कथा में आता है मनुष्यादि पर्याय में उत्पन्न होते हैं देवांगना की आयु पल्योपम प्रमाण कही गई है

उत्तर:- समय-समयवर्ती परिणाम को बतलानेवाले शास्त्रों में तो जै किया है साथ हजारों मुनि मोक्ष गये बताये हैं

गये; परन्तु जहाँ तीर्थकर गमनादि क्रिया मिटाकर स्थिर हुए वहाँ उनके साथ इतने मुनि बै
 औ
 विरोध दूर होता है
 रानी हुई, बीच के भवों को नहीं गिना औ
 कथन किया है
 मिला लेनी चाहिये।

प्रश्न:- ऐसे कथनों में तो किसी प्रकार विधि मिलती है
 कहीं तो नेमिनाथ स्वामी का जन्म शोरीपुर में तथा कहीं द्वारिका में कहा है
 कथा भी अलग-अलग प्रकार से लिखी है
 होना लिखा है

उत्तर:- ये विरोध सहित कथन कालदोष से हुए है
 अवधिज्ञानी नहीं हैं
 अधिकारी हुए है
 प्रकार लिखते हैं
 पाकर अन्यथा कथन लिखा है
 विरोध भासित हो वहाँ इतना करना चाहिये कि यह कथन करनेवाल अधिक प्रमाणिक है
 यह कथन करनेवाले। वीतराग देव के शास्त्र बहुत हैं
 परम्परा से आमनाय मिलती है
 बात में निर्णय न हो सके तो केवली को भासित हुआ वह प्रमाण है
 देव, निर्ग्रन्थ गुरु औ
 कथन सर्वत्र सुलभ है
 अरहन्त परमात्मा की वाणी वस्तु के अनेकान्त स्वरूप को बतलानेवाली है
 शास्त्र-गुरु के निर्णय में किसी शास्त्र में अंतर नहीं है
 करना है
 ही है

भगवान आहार नहीं लेते हैं
 का निर्णय हो सकता है
 वस्त्र सहित मुनिपना मनावे, पुण्य से धर्म मनावे तो उसकी विपरीतता अपने को भाषित हो
 जाती है
 विरोध नहीं है
 साधारण बात का ख्याल में नहीं आता। जै
 अन्यत्र इसका पता नहीं चले तो मोक्षमार्ग में कोई विघ्न नहीं आता। अप्रयोजनभूत बात में
 संशय रहे अथवा अन्यथा जानपना हो, परन्तु जो केवली ने कहा वह प्रमाण मान ले तो मोक्षमार्ग
 में विघ्न नहीं है
 फेरफार माने औ
 शास्त्र में विरोध नहीं है

....यहाँ कोई तर्क करे कि जै
 अन्यमत मे भी कथन पाये जाते है
 प्रकार स्थापन किया औ
 तुम्हें राग-द्वेष है

समाधान:- कथन तो नाना प्रकार के हों औ
 तो कोई दोष है
 पोषण करे तो दोष ही है
 इसलिये कहीं बहुत रागादि छुड़ाकर थोड़े रागादि कराने के प्रयोजन का पोषण
 किया है
 बढ़ाने का प्रयोजन कहीं नहीं है
 अन्यमत मे कहीं रागादि मिटाने के प्रयोजन सहित कथन करते हैं
 के प्रयोजन सहित कथन करते है
 कथन करते है
 पोषण करनेवाले नाना कथन कहे उसे प्रमाणिक कहा जाता है
 प्रयोजन का पोषण करनेवाली बात करे उसे बावला कहते हैं

शंका- जै

अन्यमत में भी अलग-अलग पद्धति होती है
औ

समाधान:- कथन अनेक प्रकार के होते हैं

औ
अन्यमत में कहीं किसी प्रयोजन का पोषण करते हैं
का पोषण करते हैं
इष्टानिष्टबुद्धि मिटाने का प्रयोजन है
(राग बढ़ाने का प्रयोजन नहीं है
किया है
है

कहीं सर्व रागादि के मिटाने के प्रयोजन का पोषण किया है
में रहने का उपदेश है

शुभरागादि छोड़कर शुद्ध

आत्मा ज्ञानानंद स्वरूप है

शुभभाव आता है
छुड़ाने का प्रयोजन है
समस्त कथन निर्दोष हैं
के प्रयोजन का पोषण करते हैं
हैं
वचन कहनेवाले को तो प्रमाणिक कहते है
कहते है

**....तथा जिनमत में नानाप्रकार के कथन है
वहाँ दोष नहीं है
पायी जाती है
है**

ईश्वर को साक्षीभूत वीतराग भी कहते हैं
 आदिभाव निरूपित करते हैं
 भाव कै

तथा कालदोष से जिनमत में एक ही प्रकार से कोई कथन विरुद्ध लिखे हैं
 यह तुच्छबुद्धियों की भूल है
 इतना है

द्वारावती में नेमिनाथ स्वामी का जन्म लिखा है हो, परन्तु नगर में जन्म
 होना प्रमाण विरुद्ध नहीं है

तथा अन्यमत में सर्वज्ञादिक यथार्थ ज्ञानियों के रचे हुए ग्रन्थ बतलाते हैं
 उनमें परस्पर विरुद्धता भासित होती है
 कहीं कहते हैं
 वहाँ बहुत पाये जाते हैं
 में वीर्य गिरने से मछली के पुत्र हुआ', सो ऐसा इस काल में किसी के होता दिखायी
 नहीं देता, औ
 यहाँ सर्वज्ञादिक की भूल मानें तो वे कै
 आता; इसलिये उनके मत में दोष ठहराते हैं
 उपदेश ग्रहण करने योग्य है

जिनमत में अनेक प्रकार की कथन पद्धति है
 करने को कहा हो वहाँ अशुभराग छुड़ाने का प्रयोजन है
 पत्थर है
 अभाव करके शुद्धता प्रगट कराने का है
 उनकी रचना इंद्र करते हैं
 अन्यमत में परमेश्वर को सर्वज्ञ कहते हैं
 वाला कहते हैं
 भी कहते हैं

तो पूर्वापर विरोधवाला कथन हुआ। भगवान का स्वरूप ऐसा नहीं है

भगवान कहते हैं

एक ही आत्मा को वीतरागपना औ

भगवान उपयोग पूर्वक चलते हैं

हैं

उनको राग की क्रिया नहीं होती। भगवान को राग की क्रिया बतानेवाला वीतरागमार्ग को नहीं

जानता। एक ही आत्मा में वीतरागपना तथा काम-क्रोधादि संभव नहीं है

भी समझना चाहिये।

कालदोष से जिनमत में भी कोई कथन विरुद्ध लगते हैं

है

कोई नहीं कर सकता। श्री नेमिनाथ भगवान का जन्म शोरीपुर में कहा हो या द्वारिका में कहा

तो वह कही भी हुआ हो, परन्तु नगर में जन्म होना प्रमाण विरुद्ध नहीं है

में आता है

विरुद्धता सहित कथन है

कहीं बाल ब्रह्मचारी की प्रशंसा करते है

नहीं होती- इन दोनों कथनों में परस्पर विरोध है

इसप्रकार के कथन बहुत देखने में आते हैं

है

में ऐसा होता देखने में नहीं आता, अनुमान से भी नहीं मिलता। इसलिये उनके मत में दोष सिद्ध

करते हैं

जै

औ

है

तथा मुनि को आहारदान देने से संसार घटता है

संवर-निर्जरा तत्त्व के स्वरूप को समझते ही नहीं है

है

मुनि दस-दस कम्बल आदि लाते हैं

ऐसा पूर्वापर विरोध नहीं होता। इसलिये परीक्षा करना चाहिये। अभी तो बहुत फेरफार हो गया है

जीव तीव्रराग नहीं करे तो पाप कम होता है

क्रिया औ

अनुयोगों का अभ्यास क्रम

....वहाँ प्रथमानुयोगादिक का अभ्यास करना। पहले इसका अभ्यास करना, फिर इसका करना ऐसा नियम नहीं है

जिसके अभ्यास से अपनी धर्म में प्रवृत्ति हो उसी का अभ्यास करे। तथा जै

रोजनामचे में तो अनेक रकमें जहाँ-तहाँ लिखी है

तो लेन-देन का निश्चय हो; उसी प्रकार शास्त्रों में तो अनेक प्रकार का उपदेश जहाँ-तहाँ दिया है

का निश्चय हो।

इसलिये स्यात्पद की सापेक्षता सहित सम्यग्ज्ञान द्वारा जो जीव जिनवचन में रमते है

आगमज्ञान कहा है

भी यथार्थ बुद्धि द्वारा आगम का अभ्यास करना। तुम्हारा कल्याण होगा।....

प्रथमानुयोगादि का अभ्यास करना कहा वहाँ, पहले इसका अभ्यास करना, फिर इसका अभ्यास करना -ऐसा नियम नहीं है

धर्मप्रवृत्ति हो वै

अभ्यास करना। जै

बराबर करे तो लेन-देन का निश्चय होता है

खाते में, राग को राग के खाते में, उपादान को उपादान के खाते में डालना चाहिये। अज्ञानी जीव राग से धर्म मानता है

में एक ग्राहक के रुपये जमा करने के बदले दूसरे के रुपये जमा करे दे तो भूल होती है

कौ
 प्रकार का उपदेश है
 होता है
 करना सच्चा मार्ग नहीं है
 की अपेक्षा से ज्ञान द्वारा जिनवचन के न्याय में रमता है
 आत्मस्वरूप को प्राप्त होता है
 बिना धर्म का अन्य साधन नहीं होता है
 तुमको भी यथार्थ बुद्धि द्वारा आगम का अभ्यास करना चाहिये। शास्त्र की परीक्षा करनी
 चाहिये औ



इस प्रकार पूज्य आचार्यकल्प पण्डितप्रवर टोडरमलजी द्वारा रचित
मोक्षमार्गप्रकाशक के आठवें
(उपदेश का स्वरूप)

अधिकार पर दि. 30.4.53 से 2.6.53 तक हुए
 आध्यात्मिक सत्पुरुष पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी के
 मार्मिक प्रवचनों का
 तथा दि. 20.12.53 से 14.1.54 तक हुए प्रवचनांशों का
 हिन्दी अनुवाद पूर्ण हुआ।

परिशिष्ट-1

शास्त्राभ्यास की महिमा

हे भव्य हो! शास्त्राभ्यास के अनेक अंग हैं
सिखाना, उपदेश देना, विचारना, सुनना, प्रश्न करना, समाधान जानना, बारंबार चर्चा करना
इत्यादि अनेक अंग हैं
तो इस शास्त्र में सुगम या दुर्गम अनेक अर्थों का निरूपण है
अभ्यास करना; परन्तु अभ्यास में आलसी न होना।

देखो! शास्त्राभ्यास की महिमा, जिसके होने पर परम्परा आत्मानुभव दशा को प्राप्त होता है

- (1) क्रोधादि कषायों की तो मंदता होती है
- (2) पंचेन्द्रियों के विषयों में प्रवृत्ति रुकती है
- (3) अति चंचल मन भी एकाग्र होता है
- (4) हिंसादि पाँच पाप नहीं होते।
- (5) स्तोक (अल्प) ज्ञान होने पर भी त्रिलोक के तीनकाल संबंधी चराचर पदार्थों का जानना होता है
- (6) हेय-उपादेय की पहचान होती है
- (7) आत्मज्ञान सन्मुख होता है
- (8) अधिक-अधिक ज्ञान होने पर आनन्द उत्पन्न होता है
- (9) लोक में महिमा-यश विशेष होता है
- (10) सातिशय पुण्य का बंध होता है

सो इत्यादिक गुण शास्त्राभ्यास करने से तत्काल ही उत्पन्न होते हैं
अवश्य करना।

तथा हे भव्य ! शास्त्राभ्यास करने के समय की प्राप्ति महादुर्लभ है
 एकेन्द्रियादि असंज्ञीपर्यंत जीवों को मन नहीं औ
 विवेकरहित, देव विषयासक्त; इसलिए मनुष्यों को अनेक सामग्री मिलने पर शास्त्राभ्यास
 होता है

वहाँ द्रव्य से तो लोक में मनुष्यजीव बहुत अल्प है
 जीवों से निगोदिया अनन्त है

तथा क्षेत्र से मनुष्यों का क्षेत्र बहुत स्तोक (थोड़ा ही) अढ़ाई द्वीप मात्र ही है
 जीवों में एकेन्द्रियों का क्षेत्र सर्व लोक है

औ
 पृथक्त्व कोटिपूर्व मात्र है
 पुद्गल-परावर्तनमात्र औ

भाव अपेक्षा तीव्र शुभाशुभपने से रहित ऐसे मनुष्यपर्याय के कारणरूप परिणाम होने
 अतिदुर्लभ है
 शुभरूप परिणाम होना दुर्लभ है

इसप्रकार शास्त्राभ्यास का कारण जो पर्याप्त कर्मभूमिया मनुष्यपर्याय उसका दुर्लभपना
 जानना ।

प्रस्तावना, सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका
पण्डितप्रवर टोडरमल

परिशिष्ट-2

शास्त्राभ्यास से प्रभावना

इस काल में आयु, बुद्धि आदि अल्प है
है
सुनकर तथा सीखने से तो तत्त्वज्ञानी होते देखे जाते हैं
में जन्म गंवाते हैं

सुन! व्याकरणादि का अभ्यास करने से पुण्य नहीं होता; किन्तु धर्मार्थी होकर उनका अभ्यास करे
तो किंचित् पुण्य होता है
इसलिये भला तो यह है
के पक्षपाती को सन्मुख किया।

अब अर्थ का पक्षपाती कहता है
बनते हैं
भी सर्वकार्यों की सिद्धि होती है

उसको कहते हैं
ग्रन्थाभ्यास आदि धर्मसाधन से जो पुण्य की उत्पत्ति होती है
शास्त्राभ्यास करने से कै
इसलिये धन का होना न होना तो उदयाधीन है
वह तो विनाशीक है

जो यह शास्त्राभ्यास का ज्ञानधन है
कारण है
को छोड़कर धन पै

तूने कहा कि प्रभावनादि धर्म भी धन से होता है
संयुक्त है
अवस्था में प्रभावनादि धर्मसाधन थे, उनको छोड़कर संयमी होकर शास्त्राभ्यास में किसलिये लगते हैं

शास्त्राभ्यास करने से प्रभावनादि भी विशेष होती है

प्रस्तावना, सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका

पण्डितप्रवर टोडरमल

नौवाँ अधिकार मोक्षमार्ग का स्वरूप

दोहा- शिव उपाय करते प्रथम, कारण मंगलरूप।

विघ्न विनाशक सुखकरन, नमौ

आत्मा शुद्ध सिद्धसमान है
उपद्रव नहीं है
हैं
पर विघ्न का नाश होता है
को अर्थात् सिद्ध भगवान को।

....अब, मोक्षमार्ग का स्वरूप कहते हैं
मिथ्यादर्शनादिक उनका स्वरूप बतलाया -उन्हें तो दुःखरूप, दुःख का कारण
जानकर, हेय मानकर उनका त्याग करना। तथा बीच में उपदेश का स्वरूप बतलाया
उसे जानकर उपदेश को यथार्थ समझना। अब, मोक्ष के मार्ग जो सम्यग्दर्शनादिक
उनका स्वरूप बतलाते हैं
अंगीकार करना; क्योंकि आत्मा का हित मोक्ष ही है
कर्तव्य है

आत्मा के सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र ही मोक्षमार्ग है
(मिथ्या) श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र किसको कहना-यह बात पूर्व में आ गयी है
कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र की श्रद्धा, ज्ञान औ
हैं

में दुःख के कारणरूप हैं

मान्यता आदि करना दुःखस्वरूप है

मानना चाहिये। तत्त्व से विपरीत मान्यतावाले, व्यवहार से धर्म माननेवाले, इन सबको दुःख के कारण जानना चाहिये। मिथ्याश्रद्धा-ज्ञान-चरित्र छोड़ने योग्य है

त्याग करना चाहिये। प्रथम, मोक्षमार्ग से विपरीत (मिथ्यादर्शनादि) की बात की; अब मोक्षमार्ग का स्वरूप कहते हैं

शुद्ध समझना चाहिये। इसप्रकार उपदेश को यथार्थ रूप से समझना चाहिये।

ज्ञानानंद स्वरूप आत्मा की श्रद्धा करना, ज्ञान करना औ

अज्ञानी जीव इसमें खेद मानता है

मानता है

उपवासादि करो, साधुपना लो तो चारित्र के दुःख (कष्ट) का पता पड़े!" उसको चारित्र में अरुचि आती है

को खेद होता है

सुखरूप जानना चाहिये। शुद्ध आत्मा का भान होने पर अमृत के झरने में (अतीन्द्रिय आत्मस्वभाव में) लीनता होने को उपवास कहते हैं

उग्रदशा वृद्धिगत होना तप है

अंगीकार करना चाहिये।

यहाँ मोक्षमार्ग को उपादेय कहा है

कहते हैं

ज्ञान-चारित्र को उपादेय कहा है

आज यहाँ (सोनगढ़ में) समवसरण मंदिर के निर्माण को ग्यारवाँ वर्ष पूरा होकर बारहवाँ वर्ष प्रारम्भ हो रहा है

इन्द्र समवसरण की रचना करते हैं

मानस्तंभ होते हैं

संदेह महाविदेह में गये थे औ

समयसारादि ग्रंथों की रचना की है

मोक्षमार्ग को यथार्थरूप से समझनेवाले का मोक्ष हुए बिना नहीं रहता है
के मोक्षमार्ग को उपादेय मानकर उसको अंगीकार करना चाहिये।

आत्मा का परमहित मोक्ष ही है
है

आत्मा को श्रद्धा-ज्ञान औ
परन्तु वे आदरणीय नहीं हैं

मोक्ष ही हित है
सकता है

अज्ञानी तो आत्मा के भान बिना अज्ञानपने में दीक्षा ले लेता है
राजचन्द्रजी ने कहा है

सब साधन बंधन हुए, रहा न कोई उपाय।

सत् साधन समझा नहीं, वहाँ बंधन क्या जाय?

जो निवृत्ति के साधन लिये वे बंधनरूप हो गये हैं
भी नहीं मिलता है

आत्मा का हित मोक्ष ही है

....वहाँ आत्मा का हित मोक्ष ही है
है

आत्मा के नानाप्रकार गुण-पर्यायरूप अवस्थाएँ पायी जाती है
कोई अवस्था हो, आत्मा का कुछ बिगाड़-सुधार नहीं है
बिगाड़-सुधार है
होता है

लोक में जितने आत्मा है
सुख हो; तथा अन्य भी जितने उपाय करते है
है
उपाय करते है

तथा संकोच-विस्तार आदि अवस्था भी आत्मा के ही होती है
 परद्रव्यों का भी संयोग मिलता है
 करने का व होने का कुछ भी उपाय कोई नहीं करता।

सो यहाँ आत्मद्रव्य का ऐसा ही स्वभाव जानना। औ
 सह सकता है
 करे, उसे भोगता है
 तथा संकोच विस्तारादि अवस्था जै
 है

देखो, दुःखी हो तब सोना चाहता है
 परन्तु जड़ सरीखा भी होकर दुःख को दूर करना चाहता है
 वहाँ मरने में अपना नाश मानता है
 चाहता है

आत्मा का हित मोक्ष ही है
 आत्मा द्रव्य है
 होती है
 बड़ी उससे कुछ भी बिगाड़-सुधार नहीं है

सम्यग्दृष्टि को सातवें नरक की अवस्था में सम्यग्दर्शनादि है
 राग-द्वेष शेष है
 दुःखरूप है
 -ऐसी मान्यता बिगाड़रूप है
 दुःखी है
 तेल में पड़ते हैं
 है
 हों, संकोच विस्तार कै
 बिगाड़-सुधार है
 से सुख है

सातवें नरक में सम्यग्दृष्टि औ
 तथापि सम्यग्दर्शन सुखरूप भाव है
 अज्ञानी दोनों हैं
 सम्यग्दृष्टि आंशिक सुखी है

जीव सुख को चाहता है
 चाहता; परन्तु दुःख के कारण में निरंतर रचा-पचा रहता है
 यह एक ही उपाय देखने में आता है
 उपाय करते हैं

जहर पीते हैं
 हैं
 सुख के उपाय को नहीं जानते हैं
 हैं
 सुख कहाँ है

लोग जिसके निमित्त से दुःख होते जानें, उसको दूर करने का उपाय करते हैं
 जिसके निमित्त से सुख होता जानें, उसको बनाये रखने का उपाय करते हैं
 (धन) को सुख का निमित्त जाना था, यदि उसी के कारण मरण होता जाने तो उसको दुःख
 का निमित्त मानते हैं
 हैं

प्रतिकूल वर्ते तो दूर करना चाहते हैं
 करना चाहते हैं

तथा शरीर छोटा-बड़ा होने पर आत्मा छोटा-बड़ा (आकाररूप) होता है
 समुद्र में हजार योजन विस्तारवाला मच्छ होता है
 अपेक्षा) छोटा- बड़ा होता है
 न जानें उन्हें रखने अथवा दूर करने का कुछ भी उपाय कोई भी नहीं करता। अपना आकार
 छोटा या बड़ा हो तो उसको दूर करने का प्रयत्न नहीं करता। आत्मा अन्य समस्त अवस्थाओं

को सहन कर सकता है
तो तब तो यह क्या करे ? उसको भोगता है
नहीं कर सकता ।

राग औ
बै
होने से अज्ञानी बाहर में सुख मानता है
संकोच-विस्तारादि अवस्था जै
स्वभाव में तर्क नहीं है
देखो, मरकर भी सुखी होना चाहता है
चाहता है

किसी का बीस वर्ष का पुत्र मर गया हो औ
लोग उससे कहते हैं
सोओ तो दुःख को भूलोगे । इसप्रकार सोकर भी दुःख दूर करना चाहता है
चाहता है
चाहता है
सोकर दुःख दूर करना चाहता है
की सम्पत्ति वाला होने पर भी यदि कोई तीव्र रोग आ जाये तो कहता है
है
चाहती हैं
को चाहता है
से, पुत्र से सुख मिलेगा- ऐसा मानता है
पूर्व आत्मा में सुख है
अन्तर में सुख है
वह तो यह मानता है
व्यापार में परेशानी आ जाने पर जहर पीकर मर जाता है

बात सुनी है

चाहता है

है

मान्यता में दुःख (औ

करना ही कर्तव्य है

अभाव ही कर्तव्य है

परवस्तु को दूर करने की बात नहीं; किन्तु मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चरित्र ही दुःखरूप औ
दुःख के कारण हैं

....तथा दुःख न हो वही सुख है

अभाव ही निराकुललक्षण सुख है

सामग्री का संयोग मिलो- जिसके अन्तरंग में आकुलता है

आकुलता नहीं है

पर होती है

चाहे, औ

तो अपने रागादि दूर हों, या आप चाहे उसी प्रकार सर्वद्रव्य परिणमित हों तो
आकुलता मिटे; परन्तु सर्वद्रव्य तो इसके आधीन नहीं है

इसकी इच्छा हो उसी प्रकार परिणमित हो, तब भी इसकी आकुलता सर्वथा दूर नहीं
होती; सर्व कार्य जै

परन्तु यह तो हो ही नहीं सकता; क्योंकि किसी द्रव्य का परिणमन किसी द्रव्य के
आधीन नहीं है

कार्य बन सकता है

औ

अभाव होने पर सर्व रागादिक विलय हो जायें तब आकुलता का नाश होने पर दुःख
दूर हो, सुख की प्राप्ति हो। इसलिये मोहकर्म का नाश हितकारी है

दुःख न हो वही सुख है

में रोग हो जाये -ये कोई दुःख नहीं है
 दुःख का लक्षण आकुलता है
 के पास नहीं चलती हो बहुत आकुलता करता है
 आकुलता मिटाने का उपाय नहीं है
 है

बाह्य सामग्री मिलने पर भी अन्तर में आकुलता है
 पर भी हमें मुख्य नहीं किया-ऐसा ईर्ष्या भाव दुःख है
 किसी के पास पाँच करोड़ की सम्पत्ति हो, झूले पर बै
 हों; तब बिच्छु आकर डंक मार दे तो कहता है
 वस्तुयें सुख-दुःख का कारण नहीं है
 है
 तो दुःख होता है
 में नहीं है

आत्मा का हित मोक्ष ही है
 आकुलता में मोहकर्म निमित्त है

प्रश्न:- दुःखी तो निगोद के जीव भी नहीं दिखते ?

उत्तर:- निगोद के जीव महादुःखी है
 संयोग रूप से नहीं हो सकते। सुख की प्राप्ति नहीं है
 में सुख औ

किसी के पास दो हजार की सम्पत्ति होने पर भी संतोष मानता है
 लाखों रुपये होने पर भी आकुलता किया करता है
 कम होती हो तो लक्षाधिपति को कम आकुलता होनी चाहिये; परन्तु ऐसा नहीं है
 आकुलता रहित स्वभाव का पता नहीं है
 नाम पर बाहर से आकुलता कम करना चाहता है

जीव सुखी होना चाहता है
 विधि का जीव को पता नहीं है
 करता है
 अनंत है
 सकता है
 अभाव होकर पूर्ण सुख का उत्पाद होना औ
 परमहितरूप है
 का लक्ष्य कर तो आकुलता मिटेगी। जगत सुख के लिए झपट्टे मारता है
 पदार्थों का आश्रय रहेगा वहाँ तक आकुलता नहीं मिटेगी। अतः दुःख का अभाव करना हो
 तो आठों कर्मों का अभाव करना पड़ेगा। आठ कर्मों के अभाव के लिये शुद्ध चै
 की प्रतीति करनी पड़ेगी।

लोग परवशता से दुःख सहन करते हैं
 निरोग हो, तो अन्य सब सहन कर सकूंगा। यहाँ सुख प्रिय है
 से पंचेन्द्रिय तक के सभी जीवों को सुख प्रिय लगता है
 ही सुख है

संयोग दुःख नहीं है
 अवस्था में दुःख है
 आकुलता है
 ज्ञानानंद स्वभावी हूँ, मेरी अस्ति में समस्त पर पदार्थों की नास्ति है
 पर के आधार से नहीं है

सामग्री के सद्भाव में सुख नहीं है
 है

कोई परवस्तु अनुकूल है
 शरीर अच्छा रहे तो ठीक- इसप्रकार अज्ञानी परपदार्थों को अपने अनुकूल परिणमाना चाहता
 है

पदार्थों को अन्य-अन्यरूप परिणमाना चाहता है
स्वीकार नहीं करता है
को परिणमित कराना मेरे अधिकार में नहीं है
परन्तु अज्ञानी जीव चाहता है
परपदार्थ इसकी इच्छानुसार परिणमित नहीं होते औ
वहाँ या तो स्वयं मिथ्यात्व, राग द्वेषादि का अभाव करे या परद्रव्य स्वयं की इच्छा के अनुसार
परिणमित हो तो आकुलता मिटे; परन्तु परद्रव्य तो इसके आधीन परिणमित नहीं होते। सभी
कार्य इसकी इच्छा के अनुसार हो तो निराकुलता हो; परन्तु ऐसा नहीं हो सकता; कारण कि
किसी भी परद्रव्य का परिणमन इसके आधीन नहीं है
आधीन नहीं है
अपितु स्वलक्ष्य करने औ

परजीव का बचना या मरना, पै
आधीन नहीं है
पर से भेदज्ञान करके स्व को रुचि कर ! पर का तेरे में औ
की रुचि औ
(सुखरूप कार्य) बन सकता है
अपने में होनेवाले पुण्य-पाप आदि के भाव को पलट सकता है
में) निमित्त मोहकर्म का उदय है
पर को सुखी-दुःखी करूँ -ऐसी भ्रान्ति जीव करता है
की अवस्था को न तो कर सकता है
ऐसा माननेवाला मिथ्यादृष्टि है

यहाँ कहते है
है
आकुलता मिटने पर कर्म स्वयं नष्ट हो जाते हैं
दूर होती है

हितकारी नहीं है

मोक्ष की पर्याय की प्राप्ति का कारण है

अज्ञानी धर्म के नाम पर परवस्तु का त्याग करके सुख प्राप्त करना चाहता है
आत्मा पर से सदाकाल निवृत्तस्वरूप है
के छियानवें हजार रानियां होती है
इसकारण वह सुखी है
अभाव करना हितकारी है

....तथा उस आकुलता का सहकारी कारण ज्ञानावरणादिक का उदय है
ज्ञानावरण, दर्शनावरण के उदय से ज्ञान-दर्शन सम्पूर्ण प्रगट नहीं होते; इसलिये
इसको देखने-जानने की आकुलता होती है
नहीं जानता तब रागादिरूप होकर प्रवर्तता है

तथा अंतराय के उदय से इच्छानुसार दानादि कार्य न बनें, तब आकुलता होती
है
के उदय का नाश होने पर उनका बल नहीं है
को प्राप्त होते हैं
भासित होती है

तथा अघाति कर्मों के उदय के निमित्त से शरीरादिक का संयोग होता है
मोहकर्म का उदय होने से शरीरादिक का संयोग आकुलता को बाह्य सहकारी कारण
है
रागादिक के कारण शरीरादिक का संयोग हो- तब आकुलता उत्पन्न होती है
मोह के उदय का नाश होने पर भी अघाति कर्म का उदय रहता है
आकुलता उत्पन्न नहीं कर सकता; परन्तु पूर्व में आकुलता का सहकारी कारण था,
इसलिये अघाति कर्म का भी नाश आत्मा को इष्ट ही है
भी कुछ दुःख नहीं है
होने पर यह कर्म अपने आप थोड़े ही काल में सर्वनाश को प्राप्त हो जाते हैं

इस प्रकार सर्व कर्मों का नाश होना आत्मा का हित है
 ही का नाम मोक्ष है
 निश्चय करना।....

अब सहकारी कारणों की बात करते हैं
 का उदय है
 (निमित्त) कहते हैं
 पढ़ना न आता हो तो उसमें ज्ञानावरणी का उदय है
 वास्तविक कारण नहीं है
 ज्ञानावरणी का नाश करना हितकारी है
 सम्पूर्ण प्रगट नहीं होते- यह निमित्त का कथन है
 निमित्त कहा जाता है

जिस भाव से आठ कर्म बँधते हैं
 हितकारी नहीं मानता है
 उसके निमित्त से अपने ज्ञान-दर्शन की हीनता है
 होती है

अब अंतराय कर्म के निमित्त से ज्ञान दर्शनादि प्रगट करने में वीर्य को (बल को) फँ
 नहीं सकता तब आकुलता होती है
 उदय होने पर अंतराय कर्म सहकारी कारण है
 पर उसका बल नहीं है
 प्रकट भासित होती है
 प्राप्त है

इसप्रकार चारों घातिकर्मों का अभाव हितकर है

अब अघातिकर्मों की बात करते हैं

वेदनीय के निमित्त से बाह्य संयोग मिलते हैं
 से शरीर आदि सामग्री सहकारी कारण होती है

कहते है

शरीरादि का संयोग है

केवली भगवान के उनके होने पर भी दुःख नहीं है

मोह का नाश होने पर शेष घाति कर्मों का अभाव अन्तर्मुहूर्त में हो जाता है

थोड़े ही काल में अघातिकर्मों का भी नाश होता है

है

अनंत ज्ञानी कहते हैं

आशातना करना, जिसके पास से ज्ञान मिला हो उसका नाम छिपाना, ज्ञान की प्रभावना मे

विघ्न करना-इत्यादि भावों से ज्ञानावरणी कर्म बंधता है

उसको मोक्ष अच्छ नहीं लगता है

भावों को अच्छ माननेवाला जीव मोक्ष को अच्छ नहीं मानता ।

सच्चे देव-शास्त्र-गुरु को यथार्थरूप से जाने बिना कुदेवादि की श्रद्धा नहीं मिटती ।

सच्चे देवादि को मानने का राग भी बंध का कारण है

हितरूप नहीं मानता है

जिस भाव से यशकीर्ति नामकर्म बंधता है

नहीं है

उल्लासवाला जीव मोक्ष को हितकर नहीं मानता । पै

पै

अनुमोदना दे वह मोक्ष को हितकर नहीं मान सकता । मोक्ष एक ही हितकर है

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र आदि है

ही हितकर है

....यहाँ कोई कहे- संसारदशा में पुण्यकर्म का उदय होने पर भी जीव सुखी

होता है

समाधान:- संसारदशा में सुख तो सर्वथा है

के कभी बहुत दुःख होता है

दुःख था व अन्य जीवों के बहुत दुःख पाया जाता है

को सुखी कहते हैं

है

हितरूप ठहरायें, सो वह भी नहीं है

थोड़ा दुःख होता है

हितरूप नहीं है

जै

थोड़ी होती है

है

उसी प्रकार संसारी को मोह का उदय है

थोड़ी होती है

कहते हैं

का सद्भाव है

तथा सुनो, संसारदशा में भी आकुलता घटने पर सुख नाम पाता है

बढ़ने पर दुःख नाम पाता है

दरिद्री को किंचित धन की प्राप्ति हुई- वहाँ कुछ आकुलता घटने से उसे सुखी कहते

हैं

धन की हानि हुई- वहाँ कुछ आकुलता बढ़ने से उसे दुःखी कहते हैं

अपने को दुःखी मानता है

इसीप्रकार सर्वत्र जानना ।....

प्रश्न:- जिस जीव ने पूर्व में व्रत तपादि करके पुण्य बंध किया हो वह सुखी दिखता है

राजा-महाराजा सुखी दिखते हैं

उत्तर:- भाई! वह सुख नहीं है

नहीं; इन्द्रपद औ

रागभाव करता है

जीव को बहुत दुःख होता है

जीवों को वर्तमान में बहुत दुःख होता है
 परन्तु वास्तव में वह सुख नहीं है
 सुखी कहलाता है
 से संसार उत्पन्न होता है
 है
 राजपद में होने पर भी राग के परिणाम से दुःख है
 परन्तु वस्तुतः वह सुखी नहीं है

अब कहते हैं
 काल रहते हैं
 नित्यानंद स्वभाव के भान बिना सुख नहीं हो सकता है
 निरोगपना नष्ट होकर सड़ा हुआ शरीर हो जाता है
 है
 मोक्ष हितरूप है

यदि थोड़ा सुख भी सदाकाल रहता हो तब तो उसको भी हितरूप ठहरायें परन्तु ऐसा भी नहीं है
 बहुत फेरफार होता है
 निगोद की अपेक्षा से मनुष्य औ
 पापरूप होता है
 स्थितिवाला सातावेदनीय कर्म बांधता है
 मिथ्यात्व के कारण वह उस स्थिति का अभाव कर देगा औ
 की स्थिति पूरी करके निगोद में चला जायेगा। कषाय मंदता से किया हुआ पुण्य बदलकर
 पापरूप हो जायेगा।

सम्यग्दृष्टि ने सातावेदनीय की उत्कृष्ट स्थिति अन्तःकोड़ाकोड़ीसागर की बांधी; परन्तु
 उसको पुण्य का निषेध वर्तता होने से औ
 अभाव करके मोक्ष जायेगा। तात्पर्य यह है

है

को छोड़ना नहीं चाहता ।

जीव ने दया, दान, व्रत, ब्रह्मचर्य आदि के भाव किये हो तो उस शुभभाव के फल में देव अथवा देवी होता है

भी थोड़े काल तक रहता है

पूर्व में शुभभाव किये उसके फल में राजा अथवा स्वर्ग में देव होता है मानता है

संसारी जीवों को दया दानादि शुभपरिणाम होने पर किसी समय थोड़ी आकुलता होती है

को दुःखी मानता है

सुखी नहीं है

जै

दुःखी मानता है

अन्य लोग भी कहते हैं

इसी प्रकार संसारी जीव को मोह का उदय है

में बहुत आकुलता दिखती है

अपेक्षा भी निगोद में बहुत दुःख है

बहुत बढ़ गई है

गया है

तक वह सुखी नहीं है

ज्ञान स्वभाव का भान नहीं है

अज्ञानी कहता है

भाई! वह तेरा संसार नहीं है

सकता हूँ—यह मान्यता ही दुःखदायक है

तथा संसार अवस्था में भी संतोषी को सुखी कहते हैं

घटने पर सुखी कहते हैं

संतोष करता है

दिखता। दस लाख की सम्पत्तिवाला थोड़ा रुपया जाने पर अपने को दुःखी मानता है
दूसरे किसी के पास पाँच हजार की सम्पत्ति हो औ
है

....तथा आकुलता घटना-बढ़ना भी बाह्य सामग्री के अनुसार नहीं है
के घटने-बढ़ने के अनुसार है

उसे आकुलता थोड़ी है

आकुलता बहुत है

हुआ तो उसको आकुलता नहीं होती; औ

उसको आकुलता बहुत होती है

है

सुभट के शरीरादिक से बहुत कार्य सधते है

शरीरादिक से मोह घट जाये, तब मरने की भी थोड़ी आकुलता होती है

ऐसा जानना कि संसार अवस्था में भी आकुलता घटने-बढ़ने से ही सुख-दुःख माने
जाते है

तथा परद्रव्यरूप बाह्यसामग्री के अनुसार सुख-दुःख नहीं है

इच्छा उत्पन्न हो औ

का उपशमन होने से आकुलता घटती है

सामग्री नहीं मिलती, तब कषाय बढ़ने से आकुलता बढ़ती है

सो है

होते है

में किंचित् कषाय घटने से सुख मानते है

कषाय दूर होने पर व कषाय के कारण दूर होने पर परम निराकुलता होने से अनन्त
सुख प्राप्त होता है

तथा संसार अवस्था में उच्चपद को प्राप्त करे तो भी या तो विषयसामग्री मिलाने की आकुलता होती है
 अन्य किसी क्रोधादि कषाय से इच्छा उत्पन्न हो उसे पूर्ण करने की आकुलता होती है
 आकुलता बनी ही रहती है
 प्रथम तो कार्य सिद्ध नहीं होता; औ
 तो तत्काल अन्य आकुलता मिटाने के उपाय में लगता है
 मिटाने की आकुलता निरन्तर बनी रहती है
 नये-नये विषयसेवनादि कार्यों में किसलिये प्रवर्तता है
 पुण्य के उदय से इन्द्र-अहमिन्द्रादि पद प्राप्त करे तो भी निराकुलता नहीं होती, दुःखी ही रहता है

तथा मोक्ष अवस्था में किसी भी प्रकार की आकुलता नहीं रही, इसलिये आकुलता मिटाने का उपाय करने का भी प्रयोजन नहीं है
 सुखी रहते है
 दुःख का औ
 के अर्थ किया है
 करना। सर्व उपदेश का तात्पर्य इतना है

आकुलता का बढ़ना- घटना भी सामग्री के आधीन नहीं है
 अधिक करे तो आकुलता अधिक है
 पुण्य तो सोजा (एक रोग) के समान है

किसी के पास धन अधिक हो तो तृष्णा कम होती है
 धन हो औ
 दुःखी है

तथा कोई किसी का बहुत बुरा करे, तिरस्कार करे तथापि वह जीव समाधान करे कि यह प्रसंग पूर्व कर्म के कारण बना है

कम दुःखी है
 अधिक दुःखी है
 निर्णय करना चाहिये। तथा जै
 अथवा पानी नहीं देता; परन्तु गाय बछड़े से मोह करती है
 बछड़े की रक्षा की आकुलता रहा करती है
 रणक्षेत्र में मान के लिये शरीर का मोह घटाता है
 इसप्रकार संयोग सुख-दुःख का कारण नहीं है
 तथा आकुलता का घटना या बढ़ना मिथ्यात्व औ
 संयोग के आधीन नहीं है
 न हो तो दुःख मानता है
 कि सहज हो जाती है
 का कर्ता आत्मा है
 को जानना चाहिये, उसके बदले कल्पना करता है

इसलिये यहाँ ऐसा विचार करना चाहिये कि संसार अवस्था में किंचित् कषाय घटने पर
 सुख मानते हैं
 भार (जिम्मेदारी) आने पर चिंता करता है
 जीव आकुलता करता है
 है

ज्ञानावरणादि कर्म - उनके अभाव में मोक्षदशा को हितरूप क्यों नहीं माने ? मानेंगे ही ।

पुण्य के परिणाम से सामग्री मिलेगी औ
 वाला मोक्ष को हितकर नहीं मानता ।

तथा संसार में उच्चपद मिलने पर भी अज्ञानी जीव आकुलता करता है
 मिलाने की अथवा विषय भोगने की इच्छा रहती है
 अनुसार साधन रखना पड़ता है
 संग्रहित नहीं करेंगे तो लोग निंदा करेंगे - इस प्रकार कल्पना करके दुःखी होता है

धनवान होने पर भी नगरसेठ की पदवी नहीं मिले औ
 आकुलता करता है
 कहा कि अब मर भी जाऊँ तो परेशानी नहीं है
 कहीं भी सुख नहीं है

जीव पहले तो सामग्री मिलाने की इच्छा करता है
 कदाचित् सामग्री मिल जाये तो अन्य आकुलता करता है
 आकुलता किया ही करता है
 पर यदि स्त्री रोगी हो तो आकुलता किया करता है
 करता रहता है
 भी दुःख है
 हैं
 अवस्था हितकारी नहीं है

मोक्ष अर्थात् प्रगट पूर्ण आनंददशा; उसमें जरा भी आकुलता नहीं है
 आकुलता मिटाने का उपाय करने का प्रयोजन भी नहीं है
 का उपाय है
 हितकारी है

संसार में सर्वत्र आकुलता है
 का तथा मोक्ष अवस्था के विशेष सुख का वर्णन किया है
 संसार आत्मा की विकारी दशा है
 मोक्ष को हितकारी जानकर उसका उपाय करना यही तात्पर्य है

पुरुषार्थ से ही मोक्ष प्राप्ति

....यहाँ प्रश्न है
 है
 बनता है
 किसलिये देते हो? औ
 उपाय कर सकता है

समाधान:- एक कार्य होने में अनेक कारण मिलते हैं
 बनता है
 कारण नहीं मिलते। पूर्वोक्त तीन कारण कहे उनमें काललब्धि व होनहार तो कोई
 वस्तु नहीं है
 होनहार। तथा जो कर्म के उपशमादिक हैं
 कर्ताहर्ता नहीं हैं
 इसलिये आत्मा को पुरुषार्थ से उद्यम करने का उपदेश देते हैं

अब प्रश्न करता है

- * काललब्धि आने पर भवितव्यानुसार बनता है
- * कर्म के मंद पड़ने पर बनता है
- * पुरुषार्थ पूर्वक होता है

आत्मा की पर्याय में आकुलता होती है
 के आधीन है

- * यदि काललब्धि आने पर औ
 देते हो? तथा
- * यदि आत्मा के श्रद्धा-ज्ञान औ
 सभी उपदेश सुनते हैं
 कारण है

उत्तर:- मोक्ष की पर्याय हितरूप है
 आ जाता है
 पुरुषार्थ है
 इसमें अनंत पुरुषार्थ है
 होकर स्वभाव सन्मुख हो गया है

एक कार्य होने में अनेक कारण मिलते हैं
लिखा है
दशा प्रगट होती है
कर्म के उपशमादि तथा (3) पुरुषार्थ मिल जाते हैं
करनेवाले को एक भी कारण नहीं मिलता।

पूर्व कथित तीन कारणों में भवितव्य तो कोई वस्तु नहीं है
होकर निर्विकारीदशा करता है
कोई काललब्धि नहीं है
वह भवितव्य है

तथा कर्म के उपशमादि का होना पुद्गल की शक्ति है
कर्म स्वयं उपशम, क्षयोपशम अथवा क्षयरूप होते हैं
नहीं है
आती -जाती है

स्वभाव सन्मुख पुरुषार्थ करना आत्मा का कार्य है
मैं
पुरुषार्थ पूर्वक उद्यम करने का उपदेश देते हैं
उल्टा (विपरीत) पुरुषार्थ है
से होता है
आत्मा का किया होता है

देखो ! यहाँ यह प्रश्न है
उपशम होने से बनता है
अनेक कारण मिलते हैं
औ
इन कारणों में काललब्धि अथवा भवितव्य तो कोई वस्तु नहीं है
अवलम्बन से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप कार्य होता है

वह भवितव्य है
है

पुण्य-पाप विकार है
जो आत्मा का कार्य हो वह करने के लिए कहा जाता है
आत्मा का नहीं है
प्रतीति औ

....वहाँ यह आत्मा जिस कारण से कार्यसिद्धि अवश्य हो उस कारणरूप उद्यम करे, वहाँ तो अन्य कारण मिलते ही मिलते हैं होती है उद्यम करे, वहाँ अन्य कारण मिलें तो कार्यसिद्धि होती है होती।

सो जिनमत में जो मोक्ष उपाय कहा है जो जीव पुरुषार्थ से जिनेश्वर के उपदेशानुसार मोक्ष का उपाय करता है काललब्धि व होनहार भी हुए औ करता है मिलते हैं जो जीव पुरुषार्थ से मोक्ष का उपाय नहीं करता उसके काललब्धि व होनहार भी नहीं औ से मोक्ष का उपाय नहीं करता उसको कोई कारण नहीं मिलते औ प्राप्ति नहीं होती -ऐसा निश्चय करना।....

अब, जिस कारण से आत्मा का कार्य अवश्य हो उस कारणरूप पुरुषार्थ करे वहाँ अन्य कारण अवश्य मिलते ही हैं पुरुषार्थ से होता है अवश्य होता है

‘जिस कारण से कार्य की सिद्धि हो अथवा नहीं भी हो’-गुरु आदि का निमित्त मिले,

संहनन, पर्याप्तपना, मनुष्यदेह इत्यादि कारण मिलें वहाँ यदि आत्मा का पुरुषार्थ करे तो सिद्धि होती है

समवसरण में जाये वहाँ सम्यग्दर्शन हो अथवा नहीं भी हो।

केवलज्ञानी ने आत्मा के मोक्ष का उपाय कहा है
 अन्य ईश्वर तुझे कुछ दे दे ऐसा नहीं है
 तो मोक्ष अवश्य होता है
 उसको मोक्ष होता है
 शुभराग है
 नहीं हैं
 अथवा राग अनुसार मोक्षमार्ग नहीं है
 (जिनदेव का) उपदेश नहीं होता; वीतरागता का उपदेश होता है
 करने को कहा गया है
 करता है
 उपेक्षा औ

कोई कहे कि भगवान तीनकाल तीनलोक के ज्ञाता है
 होना है

उसका समाधान:- सर्वज्ञ कहते हैं
 चारित्रदशा को प्राप्तकर सर्वज्ञ हुए हैं
 की श्रद्धा-ज्ञान आचरण करोगे तो अवश्य मुक्ति प्राप्त करोगे। तेरा पुरुषार्थ राग-द्वेष में
 अथवा कुदेवादि में रुक गया है
 कारण आत्मद्रव्य है
 वहाँ पाँचो समवाय एकसाथ होते हैं
 में काललब्धि ऐसा नहीं है
 पै
 के पुरुषार्थ के आधीन है

चुके है

मूल दर्शन औ

उपदेश सुनकर अंतर पुरुषार्थ करनेवाले को काललब्धि औ
करता है

करे तब कर्म का उपशम, क्षयोपशम अथवा क्षय न हो-ऐसा नहीं हो सकता। इसलिये जो
आत्मा में पुरुषार्थ पूर्वक श्रद्धा करके, लीनता करता है
कारण बाद में मिलते हैं

अकेले व्रत, तप आदि का पुरुषार्थ करना वह जिनदेव की आज्ञानुसार पुरुषार्थ नहीं है
आत्मा के स्वभाव का पुरुषार्थ करनेवाले को सर्वकारण आ मिलते हैं
देह पंचेन्द्रियपना, पर्याप्तपना आदि निमित्त न हो ऐसा नहीं होता। पुरुषार्थ करनेवाले को
सर्वसिद्धि होती है

जो जीव सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का पुरुषार्थ करता है
है

सामग्री नहीं होती। सामग्री के अभाव के कारण केवलज्ञान रुकता है
मोक्षमार्ग की बात है

जीव यदि स्वभाव सन्मुखता का पुरुषार्थ करें तो अन्य कारण मिलते हैं
इच्छा की बात नहीं है
रमणता करे, तो अन्य कारण मिलते है
वाला मिथ्यादृष्टि है
आज्ञानुसार पुरुषार्थ नहीं है
ही जिनेश्वर के उपदेशानुसार पुरुषार्थ है

लोग कहते हैं
है
हैं

सभी कारण मिल जाते है

‘मोक्ष जीव के पुरुषार्थ के आधीन नहीं, किन्तु काल के आधीन हैं
 मोक्ष अपने हाथ की बात है
 उसको काललब्धि नहीं है
 नहीं करता-ऐसा नहीं है
 पुरुषार्थ पर है
 उपशमादि नहीं होते।

मिथ्यादृष्टि मुनि परीषहादि सहन करता है
 राग में धर्म मानता है
 का उपाय नहीं करता उसको काललब्धि, भवितव्य औ
 -ऐसा निश्चय करना चाहिये।

जीव व्यापार-धंधे में पुरुषार्थ करता है
 वै

इसप्रकार शिष्य ने प्रश्न किया था कि मोक्ष का उपाय काललब्धि पकने पर बनता है
 उपदेश की क्या आवश्यकता है
 देते हैं

....तथा तू कहता है
 सकता है

उसका कारण यही है
 उपाय कर सकते है
 उपदेश तो शिक्षामात्र है

प्रश्न:- उपदेश तो सब सुनते हैं
 कर सकता-इसका क्या कारण है

उत्तर:- उसका कारण यह है
 पुरुषार्थ कर सकता है

तो जीव केवली भगवान की वाणी सुनकर भी पुरुषार्थ नहीं करे तो कोरा रह जाता है

भगवान तो निमित्तमात्र हैं

श्रद्धा-ज्ञान करके पुरुषार्थ करे तो फल प्राप्त होता है

कोई पूछता है कि पुरुषार्थ क्रमसर होना होगा तब होगा ?

उत्तर:- स्वभाव का निर्णय करना ही पुरुषार्थ है

करनेवाला सुनने का पात्र नहीं है

के नियम से आत्मा का ज्ञान किया, उसका निर्णय तुम करो तो आत्मज्ञान होगा।

कोई कहता है

ऐसा कहता है

तू पुरुषार्थ कर सकता है

है

उपदेश सुनकर पात्र जीव विचार करेंगे कि क्रम होता है
ज्ञान स्वभाव के अतिरिक्त आत्मा का अन्य कोई कार्य नहीं है
उपदेश देते हैं

वह उपदेश तो शिक्षामात्र है

का निर्णय करे तो क्रम का निर्णय यथार्थ है

में फेरफार करने की बुद्धि नहीं मिटती। यहाँ तो मोक्षमार्ग की बात है

अज्ञानी को क्रम का पता नहीं है

पड़ेगा ? जिसको क्रम का निर्णय हुआ हो वह तो पर का मात्र ज्ञाता रहता है

पूर्वक निर्णय करनेवाला ही सर्वज्ञ को मानता है

को जानता है

ज्ञानी तो जानता है

की बात करता है

अपनी अवस्था क्रमबद्ध है

....फिर प्रश्न है
करता है
तो कुछ सिद्धि नहीं है

समाधान:- अन्यथा पुरुषार्थ से फल चाहे तो कै
व्यवहार साधन में अनुरागी होकर प्रवर्ते उसका फल शास्त्र में तो शुभबन्ध कहा है
औ

प्रश्न:- जीव अनंतबार मुनि हुआ; मोक्ष के लिये गुहस्थपने का त्याग किया, पंचमहाव्रतादि
का पालन किया, उपवास किये, दया पालन की, प्रतिक्रमण औ
करने पर भी कार्य सिद्ध नहीं हुआ। इसलिये पुरुषार्थ करने से भी कुछ भी सिद्धि नहीं है

उत्तर:- पांच महाव्रत के परिणाम राग है
आत्मा की पहिचान नहीं की। इसप्रकार यह सब अन्यथा पुरुषार्थ किया, इससे फल की
सिद्धि किस प्रकार हो? वह जीव व्यवहार साधन का प्रेमी-उत्साही हुआ, व्यवहार से धर्म
होता है
राग का अनुरागी होकर मोक्ष को चाहता है
मूलगुणों का पालन करता है
किस प्रकार सिद्धि हो? व्यवहार क्रियाकाण्ड से कल्याण मानना भ्रम है
है
में आया है
परन्तु यह सब राग है
नहीं है

द्रव्यलिंगी ने अन्यथा पुरुषार्थ किया है
का किया है
नहीं है
विभाव जानता है
इसलिये अन्यथा पुरुषार्थ करता है

कोई प्रश्न करें कि यह भी क्रम में था ? तो कहते हैं
का स्वभाव है
(क्रमबद्ध) माना होता तो पुण्य से धर्म नहीं मानता, किन्तु स्वभाव की श्रद्धा करता।

यहाँ शिष्य के प्रश्न का उत्तर दिया कि द्रव्यलिंगी व्यवहार से धर्म मानता है
को चाहता है

....फिर प्रश्न है

उत्तर:- सच्चे उपदेश से निर्णय करने पर भ्रम दूर होता है
नहीं करता, इसी से भ्रम रहता है
जो मोहकर्म, उसके भी उपशमादि हों तब भ्रम दूर हो जाये; क्योंकि निर्णय करते हुए
परिणामों की विशुद्धता होती है

प्रश्न:- इस भ्रम का कारण भी कोई कर्म ही है

उत्तर:- तीर्थंकर भगवान ने स्वभाव का, विभाव का औ
सच्चे उपदेश से निर्णय करने पर भ्रम दूर होता है
करता है
नहीं है
करता, इसलिए भ्रम दूर नहीं होता। निमित्त औ
करने पर भ्रम मिटता है
तत्त्वनिर्णय करे तो मोहकर्म स्वयं टल जाता है
के स्थिति-अनुभाग घट जाते हैं

....फिर प्रश्न है

कर्म है

समाधान:- एकेन्द्रियादिक के विचार करने की शक्ति नहीं है
कर्महीका कारण है
शक्ति हुई है

निर्णय करने में उपयोग लगाता है दोष है

प्रश्न:- इसका कारण भी तो कर्म है
तरफ नहीं लगता इसका कारण भी तो कर्म है

उत्तर:- यहाँ आत्मा का निर्णय करने की बात चलती है
उपाधि है
है

निगोद में भी मति- श्रुतज्ञान का उघाड़ है
ज्ञान-दर्शन-वीर्य क्षयोपशमिकभावरूप है
भावरूप है
है

निर्णय करने की योग्यता नहीं है
करने की योग्यता है

लगावे तो निर्णय हो सकता है
आत्मा शुद्धज्ञान से भरे हुए है

का अभाव स्वभाव के भान द्वारा होता है

ज्ञान के भेद ज्ञान का पुरुषार्थ नहीं करता। व्यापार, धनादि की व्यवस्था, पत्र लिखना इत्यादि
में उपयोग लगाता है

विचारों में चली जाती है

कोई जड़ की क्रिया से अथवा पुण्य-पाप के भाव से आत्मा का निर्णय करना चाहे तो
नहीं होता; परन्तु वर्तमान ज्ञानपर्याय को अन्तर्मुख करने पर निर्णय होता है
है

अथवा अँगुली पर गौ

शरीर-मन-वाणी लकड़ी के समान है

अँगुली पर गौ

अंश है

पर्यायवान-शक्तिवान प्रभु का माहात्म्य नहीं करके पुण्य-पाप का माहात्म्य करता है
उपदेशक का नहीं, स्वयं का है

व्यवहार करते-करते निश्चय होगा तथा शुभराग कारण औ

विपरीत निर्णय में उपयोग लगाता है

मिटता। कोई किसी का कार्य नहीं कर देता है

डालना मिथ्या है

निमित्त के सन्मुख झुकाना अथवा स्वभाव सन्मुख झुकाना यह तेरे हाथ की बात है

के काम में उपयोग लगाता है

है

....फिर प्रश्न है

बिना मोक्ष का उपाय कै

उत्तर:- तत्त्वनिर्णय करने में उपयोग न लगाये वह तो इसीका दोष है
पुरुषार्थ से तत्त्वनिर्णय में उपयोग लगाये तब स्वयमेव ही मोह का अभाव होने पर
सम्यक्त्वादिरूप मोक्ष के उपाय का पुरुषार्थ बनता है

तत्त्वनिर्णय में उपयोग लगाने का पुरुषार्थ करना। तथा उपदेश भी देते है

पुरुषार्थ कराने के अर्थ दिया जाता है

पुरुषार्थ अपने आप सिद्ध होगा।

औ

तू स्वयं तो महन्त रहना चाहता है

जिनआज्ञा माने तो ऐसी अनीति सम्भव नहीं है

इसलिये झूठ बोलता है

बनाये? सांसारिक कार्यों में अपने पुरुषार्थ से सिद्धि न होती जाने, तथापि पुरुषार्थ
से उद्यम किया करता है

देखादेखी उत्कृष्ट कहता है

हित जानकर उसका उद्यम बने सो न करे यह असंभव है

प्रश्न:- सम्यग्दर्शन का तथा चारित्र का घातक तो मोह है
बिना मोक्ष का उपाय कै

उत्तर:- तत्त्वनिर्णय करने में उपयोग नहीं लगाता यह तो इसी का दोष है
ज्ञानस्वभाव, विभावस्वभाव, निमित्त का स्वभाव आदि का निर्णय करने में उपयोग नहीं लगाता
वह अपना दोष है

आत्मा संयोग को लानेवाला अथवा हटानेवाला नहीं है
में लीनता करने से पवित्रदशा प्रकट होती है
करने का पुरुषार्थ करना चाहिये। जीव ज्ञानस्वभावी है
आश्रय से संवर, निर्जर औ
के लिये है
करने में पुरुषार्थ लगाने से मोक्ष के उपाय के पुरुषार्थ की सिद्धि होती है
पूर्वक यथार्थ श्रद्धा करना चाहिये। इसके बदले व्रत, तपादि करने लग जाये औ
मान ले तो चार गतियों में परिभ्रमण करता है

तत्त्वनिर्णय न करने में कर्म का दोष नहीं है
चाहता है
निकालता है
तो धर्म हो; सो त्रिलोकनाथ की आज्ञा मानें तो ऐसी अनीति संभव नहीं है
(धर्म) होता है
है

वीतराग परमात्मा ने देखा होगा तब अपना मोक्ष होगा-ऐसा मानकर प्रमाद करता है
कर्म के कारण विकार, संसार अव्रत औ
वीतरणीनीति को माननेवाला नहीं है
कहता है
में कहा है
पुरुषार्थ स्फुरायमान नहीं होता; मोहनीय का जोर है

कहता है

रामचन्द्रजी लक्ष्मण की मृतक देह को छह माह तक लेकर घूमते रहे, क्योंकि उनके चरित्रमोहनीय का तीव्र उदय था औ

अज्ञानी कहता है

है

पुरुषार्थ करता है

होता है

अपने से ही कार्य कर रही है

समयसार गाथा 278-279 में कहा है

परिणमता परन्तु निमित्त की रुचि द्वारा बंधन होता है

है

बंध का कारण है

चै

जब द्रव्य-गुण में अशुद्धता नहीं है

कर्म के कारण अशुद्धता आई-ऐसा अज्ञानी मानता है

ऐसी अनीति संभव नहीं है

प्रगट होता है

अज्ञानी कहता है

मान्यतावाला अनीति का सेवन करनेवाला है

प्रति लक्ष्य करके रहना है

कर्म के कारण विषय-कषाय होता है

जिनआज्ञा नहीं है

भगवान ने तो कर्म का ज्ञान कराया है

रोकते हैं

है

करता है

की अभिलाषा हो, क्या वह कर्मों को दोष देगा ? कर्मों को दोष तो अज्ञानी देता है

अज्ञानी जीव को स्वभाव की बात नहीं बै

उसमें वीर्य रोकता है

में फायदा नहीं दिखे तो दूसरा व्यापार करता है

को समझने में पुरुषार्थ गँवा बै

है

पुरुषार्थ न हो- यह असंभव है

मिथ्यात्व, राग, द्वेष इन्हीं का सेवन करना है

नहीं करना है

जै

दोष अपने से होने पर भी कर्म के कारण दोष होना मानना लौ

की वास्तविक अभिलाषा हो तो ऐसा तर्क क्यों बनाता है

कारण आत्मा विकाररूप होता है

परन्तु शास्त्र के अर्थ को नहीं समझता । तुझे स्वभाव से हटकर मिथ्यात्व में रहना है

ऐसी युक्ति बनाता है

संसार के कार्यों में सिद्धि होती न लगे तो भी वहाँ राग द्वारा उद्यम किया करता है

माल रक्खं-इत्यादि संसार के कार्य विचारा करता है

है

कहता है

हम क्या करें ? अन्तराय कर्म रोकता है

शास्त्र में निमित्त से कथन आते हैं वहाँ दोष अपना है

समझना चाहिये । अज्ञानी जीव मोक्ष को देखादेखी भला कहता है

हितरूप नहीं जानता । संसार को हितरूप जानता है

परन्तु मोक्ष को हितरूप नहीं जानता अतः उसके लिये पुरुषार्थ नहीं करता । यदि मोक्ष को

हितरूप जाने तो स्वभाव सन्मुखता का पुरुषार्थ हुए बिना नहीं रह सकता ।

तथा कोई जीव क्रमबद्धपर्याय के नाम से भी स्वच्छन्दता का सेवन करता है तो क्रमबद्धपर्याय का निर्णयवाले को पर से विमुखता औ

अहो ! आत्मा ज्ञानस्वभावी है
है

नहीं होती। अर्थात् स्वभाव दृष्टिवन्त को ही क्रमबद्धपर्याय का निर्णय होता है

....यहाँ प्रश्न है
होता है
होता है

समाधान:- कर्म का बन्ध व उदय सदाकाल समान ही होता रहे तब तो ऐसा ही है

होने से उनकी शक्ति हीनाधिक होती है
उनके निमित्त से नवीन बन्ध भी मन्द-तीव्र होता है
कर्मोदय के निमित्त से कभी ज्ञानादिक बहुत प्रगट होते है
कभी रागादिक मन्द होते है

प्रश्न:- तुमने कहा वह सत्य है
जै

राग-द्वेष करने पड़ते है
किस प्रकार हो सकता है

उत्तर:- कर्म का बंध औ
तू कहता है
घट जाती है
जाता है
में परिवर्तन होता है
कर्म के कारण होता है
मंद स्वयं के कारण होता है

निमित्त-नै

में भी एक प्रकार का परिणमन नहीं होता ।

जै

है

औ

है

किया करे तब तो संसार का अन्त कभी आ ही नहीं सकता ।

जड़कर्म सत्ता में है

करे तो पूर्व के कर्मों में परिवर्तन होता है

माना जाये कि कर्म के उदय के कारण जीव को विकार करना पड़ता है

सदा है

बात मिथ्या है

जीव में ज्ञान-दर्शन के क्षयोपशम में परिवर्तन देखा जाता है

होती है

औ

पड़ते हैं

जब एक द्रव्य दूसरे द्रव्य के आधीन नहीं है

हो सकते हैं

है

किसी समय जीव के (ज्ञानादि का) विकास कम-ज्यादा होता है

होता है

....वहाँ कदाचित् संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त पर्याय प्राप्त की, तब मन द्वारा विचार करने की शक्ति हुई। तथा इसके कभी तीव्र रागादिक होते हैं वहाँ रागादिक का तीव्र उदय होने से तो विषयकषायादिक के कार्यों में ही प्रवृत्ति होती है

स्वयं पुरुषार्थ करके उन उपदेशादिक में उपयोग को लगाये तो धर्मकार्यों में प्रवृत्ति हो; औ

मन्द रागादिसहित प्रवर्ते। ऐसे अवसर में उपदेश कार्यकारी है

विचारशक्ति रहित जो एकेन्द्रियादिक है

नहीं है

जो जीव विचारशक्ति सहित हों, तथा जिनके रागादि मन्द हों; उन्हें उपदेश के निमित्त से धर्म की प्राप्ति हो जाये तो उनका भला हो; तथा इसी अवसर में पुरुषार्थ कार्यकारी है

एकेन्द्रियादिक तो धर्मकार्य करने में समर्थ ही नहीं है

तीव्रकषायी पुरुषार्थ करे तो वह पापही का करे, धर्मकार्य का पुरुषार्थ हो नहीं सकता।

इसलिये जो विचारशक्तिसहित हो औ

पुरुषार्थ से उपदेशादिक के निमित्त से तत्त्वनिर्णयादि में उपयोग लगाये तो उसका उपयोग वहाँ लगे औ

करने का पुरुषार्थ न करे, प्रमाद से काल गँवाये- या तो मन्दरागादि सहित विषयकषायों के कार्यों में प्रवर्ते, या व्यवहारधर्म कार्यों में प्रवर्ते; तब अवसर तो चला जायेगा औ

तथा इस अवसर में जो जीव पुरुषार्थ से तत्त्वनिर्णय करने में उपयोग लगाने का अभ्यास रखें, उनके विशुद्धता बढ़ेगी; उससे कर्मों की शक्ति हीन होगी, कुछ काल में अपने आप दर्शनमोह का उपशम होगा; तब तत्त्वों की यथावत् प्रतीति आयेगी। सो इसका तो कर्तव्य तत्त्वनिर्णय का अभ्यास ही है
उपशम तो स्वयमेव होता है

तथा उसके होने पर जीव के स्वयमेव सम्यग्दर्शन होता है

होनेपर श्रद्धान तो यह हुआ कि 'मै

चारित्रमोह के उदय से रागादिक होते है

प्रवर्तता है

भावना में उपयोग को लगाता है

होनेपर देशचारित्र व सकलचारित्र अंगीकार करने का पुरुषार्थ प्रगट होता है
चारित्र को धारण करके अपने पुरुषार्थ से धर्म में परिणति को बढ़ाये वहाँ विशुद्धता
से कर्म की शक्ति हीन होती है

अधिक हीन होती है

विशुद्ध होते है

पश्चात् वहाँ बिना उपाय अघाति कर्म का नाश करके शुद्ध सिद्धपद प्राप्त करता है

इसप्रकार उपदेश तो निमित्त बने औ

होता है

वहाँ कदाचित संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त पर्याय प्राप्त की, वहाँ मन द्वारा विचार करने की
शक्ति प्रगट हुई। उस जीव को किसी समय तीव्रराग होता है

है

में काम नहीं करता। अपने परिणामों में तीव्र विकार होने से धर्म श्रवण में रुचि नहीं करता।

कर्म के उदय के कारण रुचि नहीं करता-ऐसा नहीं है

परिणमन किसी द्रव्य के आधीन नहीं है

सिद्धान्त मिथ्या सिद्ध होगा।

जिस प्राणी को रागादिक के तीव्र परिणाम वर्तते है

उसको तो सत्य सुनने का अवसर भी नहीं है

उपदेशादिक का निमित्त बने औ

लगाये तो धर्मकार्य में प्रवृत्ति होती है

तथा उपदेश का निमित्त मिलने पर भी स्वयं पुरुषार्थ नहीं करे तो उपदेश को निमित्त भी
नहीं कहा जाता। बाह्य में निवृत्ति हो, पुस्तक आदि का साधन हो, परन्तु पुरुषार्थ नहीं करे औ
अन्य कार्य में रुक जाये तो अवसर व्यर्थ चला जाता है

को निमित्त कहा जाता है

विचार शक्ति रहित जीवों को तो उपदेश सुनने का ज्ञान नहीं है
 सुनकर विचार करने की शक्ति ही नहीं है
 ज्ञानशक्ति नहीं होती। तथा संज्ञी जीवों को ज्ञान का विकास तो है
 लगाकर तीव्रराग में प्रवर्तन करे तो उपदेश कार्यकारी नहीं है
 रचा-पचा हो तो उपदेश सुनने का अवसर ही नहीं मिलता। तीव्र विषय-वासना में लगा हो
 तो उसका उपयोग उपदेश में नहीं लगता। जिस जीव को विचार करने की योग्यता है
 रागादिक की मंदता है
 अवसर में पुरुषार्थ कार्यकारी है
 उपदेश देते हैं
 उपदेश नहीं देते। जिसको विचार शक्ति प्रगटी है
 का निमित्त मिले औ

जीव अन्यथा पुरुषार्थ तो अनादि से कर ही रहा है
 मानता है

स्वयं ज्ञानानंद स्वभावी है
 होता है
 लगाये तो पर में लगता है
 से परिपूर्ण है
 भला होता है

जिसने क्रमबद्धपर्याय का निर्णय किया है
 ही है

इस काल में स्वभाव की रुचि नहीं करे, संसार के कार्यों की रुचि करे औ
 नहीं करे तो अवसर चला जायेगा। इसलिये आत्मा में पुरुषार्थ करने की आवश्यकता है
 एकेन्द्रियादि में तो सम्यक् पुरुषार्थ नहीं हो सकता था, अब संज्ञी पंचेन्द्रिय होकर भी प्रमाद
 से काल गंवाता है
 दया, दान, पूजादि व्यवहार धर्म में प्रवर्तता है

परिभ्रमण चालू रहेगा। कषाय मंदतावाले जीव शुभ परिणाम में प्रवर्तते हैं
पुण्य क्या, शुद्ध चिदानंद आत्मा क्या, - इसका निर्णय नहीं करते तो अवसर तो चला जायेगा।

इस जगत में सर्वज्ञ है
होना चाहिये। आत्मा ज्ञानानंद स्वभावी है
औ

केवली भगवान तो तीनकाल-तीनलोक को एक समय में जानते हैं
काल में जो कार्य करेंगे उस काल सर्वज्ञ भगवान उसको जानेंगे'- ऐसा कोई अज्ञानी कहता
है

हुआ। केवलज्ञान भूत-वर्तमान औ
का निर्णय करनेवाले को पुरुषार्थ प्रारम्भ हो जाता है
सत्ता का स्वीकार किसने किया? अपनी अल्पज्ञ पर्याय होने पर भी मेरी योग्यता अल्पज्ञ रहने
की नहीं है
सर्वज्ञ हुए है
औ

का स्वीकार किया है

तथा अनेकांत तत्त्व है
करने पर स्वयं ज्ञानसन्मुख होता है

इस अवसर में, इसतरह तत्त्वनिर्णय नहीं करे औ
धर्म कार्यों में प्रवर्ते, तो भी कार्यकारी नहीं है
कषाय की मंदता वर्तती है
भव-भ्रमण से छूटना नहीं हो सकता।

इस अवसर में तत्त्वनिर्णय करने में उपयोग लगाने का अभ्यास करे तो विशुद्धता बढ़ती
है

उसका उपशम करने के लिये आत्मा को पुरुषार्थ नहीं करना पड़ता; परन्तु जब जीव सच्ची
प्रतीति करता है

है

होता है

होता है

हो जाते है

हूँ, पर्याय में पुण्य-पापादि के भाव होते है

शुभाशुभभावरूप परिणमन नहीं करना; सम्यक् श्रद्धा होने पर यह प्रतीति होती है

मै

हिंसा नहीं कर सकता, आहार की शुद्धि नहीं कर सकता, इसलिये ये सब बातें तो ली ही नहीं

है

हूँ-यह कहते ही जड़, शरीर, मन,वाणीरूप नहीं हूँ -यह बात इसमें आ जाती है

शुभभाव से भी इंकार किया है

है

योग्य नहीं हैं

कमजोरी से औ

है

चारित्रमोहनीय कर्म के निमित्त से औ

में भूमिकानुसार राग-द्वेष हो जाते है

वीतरागता हो जाये औ

राग करने योग्य नहीं है

का जुड़ना अस्थिरता के कारण है

वह तीव्रराग के समय विषय कषायादि में प्रवर्तता है

प्रवर्तता है

है

करता है

मध्यस्थ की भावना अथवा अनित्यादि बारह भावनायें आती हैं

का विचार करता है
 के समय व्यवहार धर्म कार्यों में जुड़ता है
 है
 पंचम अथवा तीन कषाय के अभाव से छठवें गुणस्थान का अथवा अंतर स्थिरता प्रगट करने
 का विकल्प आता है

तथा श्रावकपना-मुनिपना धारण करके पुरुषार्थ करता है
 बढ़ता है
 अधिक हीन होती है

इसप्रकार जीव में वीतराग परिणाम होने के पश्चात ज्ञानावरणादि का अभाव होकर
 केवलज्ञान प्रगट होता है
 विधि है
 करो; परन्तु यह विधि नहीं है
 कहते हैं
 है

यहाँ सम्यग्दर्शन से लेकर केवलज्ञान तक का उपाय बता दिया है
 बिना अघातिकर्मों का अभाव हो जाता है

इसप्रकार उपदेश का निमित्त बने औ
 अभाव स्वयं होता है

....तथा जब कर्म का उदय तीव्र हो तब पुरुषार्थ नहीं हो सकता; ऊपर के
 गुणस्थानों से भी गिर जाता है
 मन्द उदय हो औ
 कार्य करना।

जै

तो उसका पुरुषार्थ कुछ नहीं, उपदेश भी कार्यकारी नहीं औ
 हो तब यदि पुरुषार्थ करके निकले तो निकल आयेगा। उसी को निकलने की शिक्षा

देते है

चला जायेगा। उसीप्रकार जीव संसार में भ्रमण करता है
 हो तब तो उसका पुरुषार्थ कुछ नहीं है
 उदय हो तब पुरुषार्थ करके मोक्षमार्ग में प्रवर्तन करे तो मोक्ष प्राप्त कर ले। उसी को
 मोक्षमार्ग का उपदेश देते है
 पाकर फिर तीव्र उदय आने पर निगोदादि पर्याय को प्राप्त करेगा।

इसलिये अवसर चूकना योग्य नहीं है
 ऐसा अवसर प्राप्त करना कठिन है
 उपदेश देते है

‘तथा कर्म का तीव्र उदय हो तब तो पुरुषार्थ नहीं हो सकता’ –यह भी निमित्त का कथन
 है
 हो औ
 धर्म का पुरुषार्थ नहीं कर सकता। वहाँ जीव अन्यथा पुरुषार्थ तो करता है
 पुरुषार्थ नहीं करता। अर्थात् मोक्ष का पुरुषार्थ नहीं करता।

आशय यह है
 है

एकान्त को माननेवाला अर्थात् अनेकान्त को नहीं माननेवाला तीव्र मिथ्यादृष्टि है
 लाभ माननेरूप एकान्त की रुचिवाले को अनेकान्त का उपदेश सुनने का अवसर भी नहीं है

तथा अपना पुरुषार्थ कमजोर हो तो ऊपर के गुणस्थानों से भी गिर जाता है
 करणानुयोग की अपेक्षा से कर्म के साथ निमित्त-नै
 पुरुषार्थ होता है
 पुरुषार्थ करता है
 गिरता है
 समय की योग्यता अनुसार दशा। कर्म का तीव्र उदय निमित्तमात्र है
 के उल्टे-पुरुषार्थ को दर्शाता है

बलवान है

निमित्त का दाव नहीं है

तथा अपने में मिथ्यात्व की मंदता हो औ
चाहिये, प्रमाद नही करना चाहिये। सावधान होकर अपना कार्य करना चाहिये। जै
पुरुष नदी के प्रवाह में पड़ा बहता जाता हो, वहाँ पानी का जोर हो तब तो उसका कुछ पुरुषार्थ
नहीं चलता, वहाँ उसके तिरने की शक्ति मंद है
वहाँ दूसरा उसको निकलने के लिये कहे तो भी कार्यकारी नहीं होता, परन्तु जब पानी का जोर
थोड़ा हो तब पुरुषार्थ करके निकलना चाहे तो निकल सकता है
शिक्षा देते हैं
जायेगा।

इसीप्रकार यह जीव संसार में भ्रमण करता है
पुरुषार्थ नहीं है
तो करता है
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र्यदशा को प्राप्त कर सकता है

जीव के पुरुषार्थ की उग्रता हो औ
कर सकता है
नहीं करे तो फिर से तीव्र परिणाम होने पर नरकादि में जाता है
शुभभाव में ही रुक जाये, किन्तु तत्त्व का निर्णय नहीं करे तो फिर से तीव्र मिथ्यात्व हो जाने
पर निगोदादि में चला जायेगा।

इसलिये अवसर चूकना योग्य नहीं है
उससे कहते हैं
पंचेन्द्रियपना है
है
दयालु होकर मोक्षमार्ग का उपदेश देते हैं
मान-सम्मान के लिये, प्रतिष्ठा के लिये यह अवसर मत चूकना। इस सत्य बात को स्वीकार

करने से हमारी बात मिथ्या सिद्ध होगी- ऐसा विचारकर अवसर चूकना योग्य नहीं है
काललब्धि, होनहार सब पक गई है
इसलिये तेरे कर्म की स्थिति घट गई है
है

साधकदशा में पुण्य-पाप के परिणाम तो आयेंगे; परन्तु उनमें प्रवृत्ति करने को नहीं कहा है
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र में ही प्रवृत्ति करने को कहा है

मोक्षमार्ग का स्वरूप

....अब मोक्षमार्ग का स्वरूप कहते हैं

जिनके निमित्त से आत्मा अशुद्ध दशा को धारण करके दुःखी हुआ- ऐसे जो
मोहादिककर्म उनका सर्वथा नाश होने पर केवल आत्मा की सर्वप्रकार शुद्धअवस्था
का होना- वह मोक्ष है

यहाँ तक पीठिका बताई है

मोहकर्म के निमित्त से आत्मा अशुद्धता धारण करता है
प्रसिद्ध करता है
की इच्छा ही दुःख है
की सर्वप्रकार से शुद्धदशा होना मोक्ष है
प्रगट करना हो उसको मोक्षमार्ग का स्वरूप समझना चाहिये।

“मोक्ष कही निज शुद्धता, वह पावे सो पंथ”

अपने स्वरूप की सम्पूर्ण शुद्धता ही मोक्ष है

....वहाँ कारण तो अनेक प्रकार के होते हैं
हुए बिना तो कार्य नहीं होता, औ
मुनिलिंग धारण किये बिना तो मोक्ष नहीं होता; परन्तु मुनिलिंग धारण करने पर मोक्ष
होता भी है
होने पर कार्य होता है

अनशानादि बाह्यतप का साधन करने पर मुख्यतः मोक्ष प्राप्त करते हैं
भरतादिक के बाह्यतप किये बिना ही मोक्ष की प्राप्ति हुई। तथा कितने ही कारण
ऐसे हैं

कार्यसिद्धि नहीं होती। जै
होता ही है

उनमें अतिशयपूर्वक नियम से मोक्ष का साधक जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का
एकीभाव सो मोक्षमार्ग जानना। इस सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक्चारित्र में एक भी
न हो तो मोक्षमार्ग नहीं होता।

वही 'सूत्र में' कहा है

इस सूत्र की टीका में कहा है

अर्थ यह है

अब कारण की बात आती है

है

(1) जिनके हुए बिना तो कार्य नहीं होता औ
अथवा नहीं भी होता।

मुनिलिंग-दिगम्बर दशा हुए बिना तो किसी को केवलज्ञान नहीं होता। जो जीव स्वयं
केवलज्ञान प्रगट करता है

अंतर में भावलिंग दशा न हो तो बाह्य नग्नदशा को असमर्थ कारण कहते हैं

भावलिंगपना प्रगटे औ

यहाँ कहते हैं

मोक्ष होता भी है

हो तो मोक्ष नहीं होता। भावलिंग हो तो द्रव्यलिंग में समर्थ कारण का आरोप आता है

जीव आत्मा के दर्शन-ज्ञान (सम्यग्दर्शन-ज्ञान) सहित चारित्र प्रगट करता है
दशा होती है

धारण किये बिना मोक्ष नहीं होता। अर्थात् अंतर चारित्रदशा (सकलचारित्ररूप भावलिंग) औ

हुआ हो औ

निमित्त होने की योग्यता नहीं है

ऐसा नहीं होता। जब प्रतिबंध का अभाव होवे औ

में नग्नदशा न हो ऐसा नहीं होता। अंतर में चारित्र का पुरुषार्थ औ

सहकारी समस्त सामग्री कहते हैं

समर्थकारण कहते हैं

बाहर के संयोग मिलाने का प्रयत्न करना नहीं पड़ता। जब अंतर स्वभाव के आश्रय से रागरहित रुचि होकर अंतर स्थिरता होती है

सहकारी सामग्री का सद्भाव होता है

(2) कोई कारण ऐसे होते हैं

तथा किसी को उनके हुए बिना भी कार्य सिद्ध होता है

मोक्षमार्ग में कितने ही जीवों के बारह प्रकार के तप का निमित्त होता है

किन्हीं जीवों के तप का निमित्त नहीं था। वह निमित्तकारण होवे ही-ऐसा नियम नहीं है

मुनिलिंगरूप निमित्तकारण तो होता ही है

(बाह्यतप) न होने पर भी भरत महाराज स्वभाव में लीन होकर केवलज्ञान को प्राप्त हुए।

जिनको उपादान में चारित्रदशा प्रगटी हो उनमें से किन्हीं को तप का निमित्त होता है

को नहीं भी होता। तप का तो नियम नहीं है

में मनुष्यपना, बादरपना उत्तम संहनन आदि सहकारी समर्थकारण है

(3) कोई कारण ऐसे है

जिनके न होने पर कार्यसिद्धि सर्वथा नहीं होती।

आत्मा की श्रद्धा-ज्ञान औ

कार्य सिद्ध होता ही है

प्रतिबंध (कर्म) का अभाव न हो यह भी नहीं होता।

इसप्रकार यहाँ तीन कारण कहे गये है

- (1) मोक्ष के समय निमित्तकारणरूप नग्नदशा होती ही है
- (2) मोक्ष के समय तप को निमित्तकारण कहा; परन्तु वह हो ही ऐसा नियम नहीं है
- (3) उपादान कारण अर्थात् आत्मा की श्रद्धा-ज्ञान औ

आत्मा की सम्पूर्ण शुद्धदशा का उत्पाद, संसाररूप मलिनदशा का व्यय औ
का ध्रुवपना-इसप्रकार एक समय में उत्पाद-व्यय-ध्रुव है
की एकतारूप कारण ऐसा है
ही नहीं होता। यहाँ सम्यग्दर्शन अथवा मोक्षमार्ग का कारण द्रव्य (द्रव्यस्वभाव) सिद्ध नहीं
करना है

आत्मा एक समय में परिपूर्ण है
(आत्मस्वभाव) सर्वज्ञशक्ति से भरा है
मोक्ष होता है
कारण कहते हैं

जै
सहकारी सामग्री होती है
कहते हैं

जीव को क्षायिक सम्यग्दर्शन की प्रगटता के समय केवलीभगवान को सहकारी
समर्थकारण कहते है
असमर्थकारण कहलाते है
में होनेवाले कार्य के अनुसार निमित्त में आरोप किया जाता है
संहनन को समर्थकारण कहते है
असमर्थकारण कहते हैं
है

यह तीसरा कारण, जो कि उपादान कारण है

श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र करने से अवश्य मोक्ष होता है

हो, इसलिये वह नियमरूप निमित्त नहीं है

जाये-ऐसा तो कभी होता ही नहीं। अतः आत्मा के श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र ही मोक्षमार्ग है

इसप्रकार तीन कारण कहे, उनमें अतिशयपने निश्चय से आत्मा की पूर्णदशा अथवा सिद्धदशा का साधक अथवा कारण सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का एकतामय भाव है

पण्डित टोडरमलजी का क्षयोपशम बहुत था। उन्होंने अनेक पक्षों से बात लिखी है तथापि लोग सम्प्रदाय चलाने के लिये, परम्परा टिकाने के लिये इस शास्त्र का अभ्यास नहीं करते; परन्तु उनकी लिखी यह बात बहुत सरस है

श्वेताम्बरमत पन्द्रह भेद से सिद्ध होना कहता है
सिद्ध होना कहता है

बाद देव उन्हे शरण औ

केवलज्ञान होता ही नहीं। स्त्री को मुनिलिंग नहीं होता औ

अब सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र में से एक भी नहीं होता तो मोक्षमार्ग नहीं होता। इन तीनों की एकता ही मोक्षमार्ग है

बात तो आ गई; परन्तु सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र में से एक न हो तो भी मोक्षमार्ग नहीं होता।

देव-शास्त्र-गुरु की श्रद्धा मोक्षमार्ग नहीं है

मोक्षमार्ग कहलाता है

आत्मा की श्रद्धा-ज्ञान-रमणता ये तीनों मिलकर एक मोक्षमार्ग है
हो तो मोक्षमार्ग नहीं है

जा सकता।

तात्पर्य यह है
नहीं है

....यहाँ प्रश्न है
हुआ है

समाधान:- मोक्षमार्ग उसके होगा, यह तो नियम हुआ; इसलिये उपचार से इसके मोक्षमार्ग हुआ भी कहते है होता है व्यवहार से ऐसा भी कहते है गमन करने पर चलना होगा। उसी प्रकार असंयतसम्यग्दृष्टि को वीतरागभावरूप मोक्षमार्ग का श्रद्धान हुआ; इसलिये उसको उपचार से मोक्षमार्गी कहते है वीतरागभावरूप परिणमित होने पर ही मोक्षमार्ग होगा। तथा प्रवचनसार में भी तीनों को एकाग्रता होने पर ही मोक्षमार्ग कहा है बिना तो रागादि घटाने से मोक्षमार्ग नहीं है से भी मोक्षमार्ग नहीं है

प्रश्न:- निमित्त की क्रिया मोक्षमार्ग नहीं है चै सम्यग्दृष्टि के चारित्र नहीं है सम्यग्दर्शन तो है

उत्तर:- मै नहीं रहेगा, वह नियम से चारित्र प्रगट करेगा। ऐसी अपेक्षा से उपचार से मोक्षमार्ग कहा है सम्यग्दर्शन होने पर चारित्र आये बिना नहीं रहेगा। चारित्र होने पर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की एकता होगी। इसलिये उसके वर्तमान में मोक्षमार्ग नहीं होने पर भी उपचार से मोक्षमार्ग कहते है इसलिये सम्यग्दृष्टि को-चौ सम्यग्दर्शन ज्ञान-चारित्र की एकता छठवें गुणस्थान में होती है ग्रहण करने की वृत्ति होती है जाता है जै भी कहते हैं

होगा। इसीप्रकार चौ
 नहीं हुआ है
 पुण्य-पाप रहित स्वभाव के श्रद्धा-ज्ञान हुए है
 प्रवचनसार में भी मुनि को वास्तव में मोक्षमार्ग कहा है
 यह एक ही मोक्षमार्ग है
 व्यवहार से मोक्षमार्ग कहते हैं
 दशा होने पर मोक्षमार्ग होगा। मुनिराज सम्पूर्ण दुनिया से उदास हुए है
 है
 अभिलाषी हैं
 है

यहाँ सम्यग्दर्शन को उपचार से मोक्षमार्ग कहा है
 अतः मोक्ष हुआ औ
 अपेक्षा से मुक्ति कही है
 से है

यहाँ ऐसा जानना कि तत्त्वश्रद्धान-ज्ञान बिना तो रागादि घटाने पर भी मोक्षमार्ग नहीं है
 आहार के प्रति राग घटाये, कषाय की मंदता करे, उपवास करे तो भी वह मोक्षमार्ग नहीं है
 मोक्ष का वास्तविक कारण तो यथार्थ मोक्षमार्ग है

तथा स्वरूप की लीनता बिना मात्र तत्त्वश्रद्धान-ज्ञान से भी मोक्षमार्ग नहीं है
 होने पर भी जहाँतक राग नहीं घटता औ
 मोक्षमार्ग नहीं है

तत्त्वश्रद्धान ज्ञान औ
 के साक्षात् मोक्षमार्ग है
 धर्म का मूल सम्यग्दर्शन है
 नहीं होता।

....अब, इनका निर्देश, लक्षणनिर्देश औ

वहाँ 'सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र मोक्षका मार्ग है
कथन वह तो 'निर्देश' जानना।

तथा अतिव्याप्ति, अव्याप्ति, असम्भवपने से रहित हो औ
पहिचाना जाये सो 'लक्षण' जानना; उसका जो निर्देश अर्थात् निरूपण सो 'लक्षणनिर्देश'
जानना।

वहाँ जिसको पहिचानना हो उसका नाम लक्ष्य है
अलक्ष्य है
वहाँ अतिव्याप्तिपना जानना। जै
अमूर्त्तत्वलक्षण लक्ष्य जो आत्मा है
आकाशादिक है
द्वारा आत्मा को पहिचानने से आकाशादिक भी आत्मा हो जायेंगे; यह दोष लगेगा।

तथा जो किसी लक्ष्य में तो हो औ
पाया जाये- ऐसा लक्षण जहाँ कहा जाये वहाँ अव्याप्तिपना जानना। जै
का लक्षण केवलज्ञानादिक कहा जाये; सो केवलज्ञान किसी आत्मा में तो पाया
जाता है
आत्मा को पहिचानने से अल्पज्ञानी आत्मा नहीं होगा; यह दोष लगेगा।

तथा जो लक्ष्य में पाया ही नहीं जाये, ऐसा लक्षण जहाँ कहा जाये- वहाँ
असम्भवपना जानना। जै
से यह विरुद्ध है
पुद्गलादिक आत्मा हो जायेंगे, औ लगेगा।

इसप्रकार अतिव्याप्त, अव्याप्त तथा असम्भवी लक्षण हो वह लक्षणाभास है
तथा लक्ष्य में सर्वत्र पाया जाये औ
लक्षण है
पाया जाता है

इसके द्वारा आत्मा मानने से आत्मा-अनात्मा का यथार्थज्ञान होता है
लगता। इसप्रकार लक्षण का स्वरूप उदाहरणमात्र कहा।....

अब मोक्षमार्ग का निर्देश, लक्षणनिर्देश तथा परीक्षा द्वारा निरूपण करते हैं

वहाँ सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र मोक्षमार्ग है

लक्षण ऐसा होना चाहिये कि जिसके द्वारा इसे ही पहिचाना जा सके, उसमें कोई दोष नहीं आना चाहिये। मोक्षमार्ग का लक्षण उसके पूरे भाग में व्यापना चाहिये, वह अव्याप्ति दोष रहित है उसके सिवा अन्य में नहीं व्यापना चाहिये, वह अतिव्याप्ति दोष रहित है न हो ऐसा नहीं होना वह असंभव दोष रहित लक्षण है ही सच्चा लक्षण होता है

वहाँ जिसको पहिचानना हो उसका नाम लक्ष्य है
अलक्ष्य है

अब जो लक्षण, लक्ष्य औ
जानना। जै
परन्तु धर्मादि द्रव्यों में भी है
लक्षण है

लक्षण के द्वारा एक पदार्थ को दूसरे पदार्थ से भिन्न किया जा सकता है
से मात्र आत्मा ही नहीं पहिचाना जाता, कारण कि वह लक्षण धर्मादि द्रव्यों में भी व्याप्त है
इसलिये अमूर्त्तपना आत्मा का सच्चा लक्षण नहीं है
लक्ष्य की ही पहिचान कराता है
पर आकाशादि भी आत्मा हो जायेंगे -यह दोष आयेगा।

जो लक्षण किसी लक्ष्य में तो हो औ
व्याप्त हो वह अव्याप्ति दोषवाला लक्षण है
अनंतसिद्धों औ
(लक्षण) व्याप्त नहीं है

अज्ञानी जीव सावद्य-निरवद्य की बातें करता है
 नहीं है
 करना निरवद्य है
 अज्ञानी कहता है
 खरगोश बच गया। उस बचाने के शुभपरिणाम को अज्ञानी निरवद्य कहता है
 परन्तु यह बात मिथ्या है
 को निरवद्यपने का लक्षण माना जाये तो वह अभव्य में भी लागू पड़ेगा औ
 का भी मोक्ष हो जायेगा; परन्तु यह सच्चा लक्षण नहीं है

यहाँ अव्याप्तिदोष की बात चलती है
 केवलज्ञान समस्त जीवों में नहीं होता। इस लक्षण के द्वारा आत्मा को पहिचानने पर अल्पज्ञानी
 जीव आत्मा नहीं ठहरेंगे।

तथा देव-शास्त्र-गुरु की श्रद्धा को सम्यग्दर्शन का लक्षण कहा जाये तो उसमे अव्याप्तिदोष
 आता है
 राग मिथ्यादृष्टि जीवों में भी होता है
 अतिव्याप्ति दोष आयेगा। इसलिये यह सच्चा लक्षण नहीं है

लक्षण लक्ष्य की सब जातियों में होना चाहिये; किसी में हो औ
 अव्याप्तिदोष आता है

अब तीसरे असंभव दोष की बात करते है
 में असंभव दोष आता है

आत्मा मूर्त है
 सकता। यह लक्षण प्रत्यक्ष प्रमाणादि से विरुद्ध है
 जड़पने को आत्मा का लक्षण कहा जाये तो पुद्गलादि आत्मा हो जायेंगे औ
 हो जायेगा। कोई जीव समझता नहीं हो तो उसको जड़ जै
 हो नहीं जाता।

इसप्रकार जो अव्याप्ति, अतिव्याप्ति औ
 है
 लक्षण है
 निगोद से लेकर सिद्ध तक के सभी जीवों में है
 केवलज्ञान औ
 निगोद में है
 है
 अनात्मा का सच्चा ज्ञान होता है

इसप्रकार जीव का लक्षण चै
 पहिचाना जाता है

इसप्रकार यहाँ जीव के लक्षण का तो दृष्टान्त दिया है
 इन तीनों का लक्षण बताना है

संतों द्वारा कथित आगम का सार लेकर पण्डित टोडरमलजी ने इस शास्त्र की रचना
 की है
 गया औ

सम्यग्दर्शन का सच्चा लक्षण

....अब सम्यग्दर्शनादिक का सच्चा लक्षण कहते है

विपरीताभिनिवेशरहित जीवादिकतत्त्वार्थश्रद्धान वह सम्यग्दर्शन का लक्षण है
 जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष-यह सात तत्त्वार्थ है
 श्रद्धान- 'ऐसा ही है

विपरीताभिनिवेश जो अन्यथा अभिप्राय उससे रहित; सो सम्यग्दर्शन है

यहाँ विपरीताभिनिवेश के निराकरण के अर्थ 'सम्यक्' पद कहा है
 'सम्यक्' ऐसा शब्द प्रशंसावाचक है
 होने पर ही प्रशंसा सम्भव है

सम्यग्दर्शन का लक्षण क्या है

विपरीत अभिनिवेश रहित जीवादि तत्त्वार्थश्रद्धान सम्यग्दर्शन का लक्षण है
 तत्त्वों की बात ली है
 सम्यग्दर्शन की बात है
 सम्यग्दर्शन का लक्षण कहा है
 जीव,अजीव, आस्रव बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष इन सात तत्त्वों की यथार्थ श्रद्धा होनी चाहिये।
 संवर-निर्जरा तत्त्व की श्रद्धा में गुरु की श्रद्धा समाहित हो जाती है
 श्रद्धा समाहित हो जाती है

जीव, जीव है
 जीव नहीं है
 शरीरादि अजीव है
 श्रद्धा नहीं है

पुण्य-पापादि आस्रव अर्थात् आत्मा की पर्याय में होनेवाले विकारीभाव। उन्हें धर्म माननेवाले को आस्रव तत्त्व की श्रद्धा नहीं है
 जै
 रहते। इसीप्रकार इस जगत में जीव-अजीव आदि सात तत्त्व है
 जाने औ
 सर्वज्ञदेव ने इन सात तत्त्वों के सात भाग करके बतलाये है
 विकार माननेवाले ने अपना भाग नहीं जाना है
 है

जीवतत्त्व की ताकत अपने गुण-पर्याय में है
 में नहीं है
 वह सम्यग्दर्शन का लक्षण है
 है

संवर-निर्जरा जीव की शुद्ध पर्याय है
माना है
अजीव को दिया है।

मोक्ष आत्मा की पूर्णानंदमय वीतरागीदशा है
मोक्ष होने के बाद पुनः अवतार होना बतावे, तो उसने मोक्ष तत्त्व को लूट लिया है
तत्त्व की श्रद्धा नहीं है

भगवान ने जीवादि सातों तत्त्वों को जिस प्रकार से स्वतंत्र कहा है
कर “यह तत्त्व ऐसे ही है

देखो! शास्त्र अजीव है
उन्हें नहीं पहिचाननेवाले को तत्त्व की पहिचान नहीं होती। अहो! संतो ने गजब का काम
किया है

भगवान सच्चे, परन्तु भगवान ने क्या कहा यह नहीं पहिचाने तो स्वयं को यथार्थ श्रद्धा
नहीं होती; स्वयं को भावों की यथावत् पहिचान होना चाहिये। विपरीत अभिनिवेश अर्थात्
विपरीत अभिप्राय, उससे रहित तत्त्वार्थश्रद्धान सम्यग्दर्शन है
का अर्थ ‘विपरीतमान्यतारहित’ है
है
मान्यता का अभाव है

जहाँ देव-शास्त्र-गुरु की श्रद्धा में भूल है
मुनिदशा न होने पर भी उसमें मुनिदशा माने तो उसको सातों तत्त्वों की श्रद्धा नहीं है
भगवान की परम्परा में सात तत्त्वों का तथा देव-शास्त्र-गुरु का जै
यथावत् पहिचानकर, उसकी श्रद्धा ही प्रशंसावाचक है
कहो-एक ही है

....यहाँ प्रश्न है

समाधान :-‘तत्’ शब्द है

जिसका प्रकरण हो उसे तत् कहा जाता है
 तत्त्व जानना। कारण कि 'तस्य भावस्तत्त्वं' ऐसा तत्त्व शब्द का समास होता है
 तथा जो जानने में आये ऐसा 'द्रव्य' व 'गुण-पर्याय' उसका नाम अर्थ है
 'तत्त्वेन अर्थस्तत्त्वार्थः' तत्त्व अर्थात् अपना स्वरूप, उससे सहित पदार्थ उनका श्रद्धान
 सो सम्यग्दर्शन है

उसके श्रद्धान बिना केवल भावही का श्रद्धान कार्यकारी नहीं है
 ही कहते तो भाव के श्रद्धान बिना पदार्थ का श्रद्धान भी कार्यकारी नहीं है

जै

है

आत्मा हूँ; तथा वर्णादि पुद्गल का स्वभाव है
 ऐसा पदार्थ का श्रद्धान न हो तो भाव का श्रद्धान कार्यकारी नहीं है
 आत्मा हूँ'- ऐसा श्रद्धान किया; परन्तु आत्मा का स्वरूप जै
 किया तो भाव के श्रद्धान बिना पदार्थ का भी श्रद्धान कार्यकारी नहीं है
 तत्त्वसहित अर्थ का श्रद्धान होता है
 तत्त्वसंज्ञा भी है
 ही अर्थ, उनका श्रद्धान सो सम्यग्दर्शन है

इस अर्थ द्वारा कहीं तत्त्वश्रद्धान को सम्यग्दर्शन कहे औ
 सम्यग्दर्शन कहे, वहाँ विरोध नहीं जानना।

इसप्रकार 'तत्त्व' औ

प्रश्न:- यहाँ तत्त्वार्थश्रद्धान में तत्त्व औ

उत्तर:- 'तत्' शब्द है

हो उसको 'तत्' कहते हैं

कि 'तस्य भावस्तत्त्वं' ऐसा तत्त्व शब्द का समास होता है
 गुण पर्याय है

इस सहित पदार्थ का श्रद्धान, वह सम्यग्दर्शन है

यह भाव (तत्त्व) है

यदि 'अर्थश्रद्धान' ही कहते तो भाव के श्रद्धान बिना केवल पदार्थ का श्रद्धान भी कार्यकारी नहीं है

जानने में आते हुए ऐसे जो द्रव्य-गुण-पर्याय वे सब अर्थ हैं

'तत्त्व' है

सातों तत्त्व है

सम्यग्दर्शन का लक्षण है

है

कहा है

वस्तु को जाने बिना उसके अकेले भाव का श्रद्धान करे तो वह यथार्थ नहीं है

वह भाव किसका है

यथार्थ श्रद्धा नहीं होती। 'आत्मा' ऐसा कहे, परन्तु आत्मा वस्तु के

जाने तो तत्त्व की श्रद्धा नहीं होती। औ

का है

औ

जै

श्वेतवर्ण है

तथा वर्णादिक पुद्गल का स्वभाव है

पदार्थ का श्रद्धान न हो तो मात्र भाव का श्रद्धान भी कार्यकारी नहीं है

ऐसा श्रद्धान किया, परन्तु आत्मा का स्वरूप जै

के श्रद्धान बिना पदार्थ का श्रद्धान भी कार्यकारी नहीं है

मै

है

तत्त्वश्रद्धान ही आत्मा को हितकारी है

मूल वही है

है

जीव तो ज्ञान-दर्शन स्वभावी है
 है
 पास (उत्तीर्ण) होता है
 तो वह प्रयत्न सफल हुए बिना नहीं रहता।

आत्मा ज्ञान-दर्शनस्वरूप है
 कि आत्मा शरीर को चलाता है
 अजीव के भाव को जीव में मानता है
 औ
 अजीव के भाव को जीव में नहीं मानें। अर्थात् जीव शरीर को चलाता है
 क्रिया से जीव को धर्म-अधर्म होता है

सात तत्त्व में तो सारी बात आ जाती है
 साथ संबंध रखता है
 वह क्रिया जीव के कारण नहीं हुई है

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की एकता ही मोक्षमार्ग है
 चल रही है
 सम्यग्दर्शन है

ज्ञान-दर्शन स्वभाव है
 मैं
 मेरे से पुद्गल द्रव्य भिन्न है
 को भिन्न-भिन्न पहिचानने पर यथार्थ श्रद्धा होती है

‘मैं
 भाव क्या है
 जै
 केवलज्ञान होने की सामर्थ्य है
 मैं

पुद्गल द्रव्य है

शरीर, जड़-पुद्गल का भाव है

माने कि उसकी क्रिया आत्मा करता है

जीव-अजीव के भावों को भिन्न-भिन्न ज्यों का त्यों जाने बिना सच्ची श्रद्धा नहीं होती।
अहो! अनंतकाल से जीव ने तत्त्वों को यथार्थरूप से जाना ही नहीं है

अज्ञानी जीव अरिहन्त भगवान की भक्ति करता है

उनका आत्मा कै

बिना अरिहन्त की सच्ची भक्ति नहीं हो सकती। औ

औ

सच्ची भक्ति होती है

उसमें एकाग्र होना ही निश्चय भक्ति है

आस्रव तत्त्व का भाव है

पहिचानता।

पदार्थों के भाव की पहिचान रहित श्रद्धा सच्ची श्रद्धा नहीं है

उसका स्वभाव क्या है

पाँच रुपये का माल दे, परन्तु माल किसको दिया है

माल ले जाने वाली एक महिला थी ऐसा कहे, परन्तु वह महिला कै

थी, कहाँ रहती थी, क्या नाम था-यह सब नहीं पहिचाने तो, उसने महिला को जाना ही नहीं है

साड़ी वाली महिला थी, परन्तु वह महिला कौ

बिना वस्तु की सच्ची श्रद्धा नहीं होती। इसप्रकार जीव-अजीवादि पदार्थ हैं

औ

वह तत्त्वार्थश्रद्धान ही सम्यग्दर्शन का लक्षण है

मोक्षशास्त्र (तत्त्वार्थसूत्र) में 'तत्त्वार्थश्रद्धानंसम्यग्दर्शनम्' -ऐसा सूत्र कहा है
इस सूत्र को पढ़ तो जाते हैं

क्या औ

जगत में अनंत जीव-अजीव पदार्थ हैं

अपने-अपने भावसहित है

अन्य वस्तु औ

काम होना माननेवाले को तत्त्वार्थ की श्रद्धा नहीं है

है

जाना है

लो या सात तत्त्वो की श्रद्धा की बात लो; परन्तु उसमें मूल बात तो यही आकर खड़ी होती है

जगत में अनेक अजीव पदार्थ है

सहित है

वाले ने अनंत अजीव तत्त्वों को माना ही नहीं है

* जीव पदार्थ है

* अजीव पदार्थ है

अजीव को मानें; परन्तु उसके हिलने-चलने की शक्ति को नहीं मानें, वह जीव के कारण हिलता चलता है

शक्ति के ज्ञान बिना पदार्थ की श्रद्धा नहीं होती।

देखो, यह 'तत्त्वार्थश्रद्धानसम्यग्दर्शनम्' इस एक सूत्र का स्पष्टीकरण! लोग हर वर्ष तत्त्वार्थसूत्र पढ़ जाते हैं

वह अर्थ औ

पहिचानकर श्रद्धा करना तत्त्वार्थश्रद्धान है

सम्यग्दर्शन लक्ष्य है

सम्यग्दर्शन है

अकेला अर्थ अर्थात् द्रव्य-गुण-पर्याय को कहे तो उसके भाव बिना कार्यकारी नहीं होता।

इसलिये स्वभाव सहित पदार्थ का श्रद्धान कार्यकारी है

कोई अज्ञानी कदाचित् शरीर को अजीव कहता है
 मानता है
 पता नहीं है
 पुण्य-पाप विकारी भाव है
 -इसप्रकार समस्त तत्त्वों को यथार्थरूप से समझना चाहिये। इन तत्त्वों को पदार्थ भी कहते हैं
 संवर-निर्जरा आदि एक समय के होने पर भी वे पदार्थ हैं
 सत् है
 कहलाते हैं
 इसप्रकार तत्त्व औ
 तत्त्वार्थ सात ही क्यों ?

....फिर प्रश्न है
 में सर्व गर्भित हुए; इसलिये दो ही कहना थे या अनन्त कहना थे। आस्रवादिक तो
 जीव-अजीवही के विशेष है

समाधान:- यदि यहाँ पदार्थश्रद्धान करने का ही प्रयोजन होता तब तो सामान्य
 से या विशेष से जै
 प्रयोजन है
 श्रद्धान करने से मोक्ष हो औ
 निरूपण किया है

सो जीव-अजीव यह दो तो बहुत द्रव्यों की एक जाति अपेक्षा सामान्यरूप
 तत्त्व कहे। यह दोनों जाति जानने से जीव को आपापर का श्रद्धान हो- तब पर से
 भिन्न अपने को जाने, अपने हित के अर्थ मोक्ष का उपाय करे; औ
 पर को जाने, तब परद्रव्य से उदासीन होकर रागादिक त्याग कर मोक्षमार्ग में प्रवर्ते।
 इसलिये इन दो जातियों का श्रद्धान होने पर ही मोक्ष होता है
 बिना आपापर का श्रद्धान न हो तब पर्यायबुद्धि से सांसारिक प्रयोजन ही का उपाय
 करता है

इन दो जातियों का श्रद्धान न होने पर मोक्ष नहीं होता। इसप्रकार दो सामान्य तत्व तो अवश्य श्रद्धान करने योग्य कहे हैं

तथा आस्रवादि पाँच कहे, वे जीव-पुद्गल की पर्याय हैं
तत्त्व हैं

वहाँ मोक्ष को पहिचाने तो उसे हित मानकर उसका उपाय करे; इसलिये मोक्ष का श्रद्धान करना।

तथा मोक्ष का उपाय संवर-निर्जरा हैं
हो वै

तथा संवर-निर्जरा तो अभावलक्षण सहित हैं
हैं

क्रोध को पहिचाने तो उसका अभाव करके क्षमारूप प्रवर्तन करे। उसीप्रकार आस्रव का अभाव होने पर संवर होता है
होती हैं

करे; इसलिये आस्रव-बन्ध का श्रद्धान करना।

इसप्रकार इन पाँच पर्यायों का श्रद्धान होने पर ही मोक्ष होता है
पहिचाने तो मोक्ष की पहिचान बिना उसका उपाय किसलिये करे? संवर-निर्जरा की पहिचान बिना उनमें कै
कै

इसप्रकार यद्यपि तत्त्वार्थ अनन्त हैं
प्ररूपण हो; परन्तु यहाँ मोक्ष का प्रयोजन हैं
सामान्यतत्त्व औ

इनके यथार्थ श्रद्धान के आधीन मोक्षमार्ग हैं
या न हो या अन्यथा श्रद्धान हो; किसी के आधीन मोक्षमार्ग नहीं हैं

तथा कहीं पुण्य-पाप सहित नवपदार्थ कहे हैं

ही विशेष है

पर पुण्य को मोक्षमार्ग न माने, या स्वच्छन्दी होकर पापरूप न प्रवर्ते; इसलिये मोक्षमार्ग में इनका श्रद्धान भी उपकारी जानकर दो तत्त्व विशेष के विशेष मिलाकर नवपदार्थ कहे। तथा समयसारादि में इनको नवतत्त्व भी कहा है

प्रश्न:- पदार्थ तो अनंत है

है

कहे? न तो जीव-अजीव की श्रद्धा को सम्यग्दर्शन कहा औ सम्यग्दर्शन कहा; परन्तु सात तत्त्वों को (तत्त्वों की श्रद्धा को) सम्यग्दर्शन कहा है बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष, ये जीव-अजीव के विशेष है दर्शन-ज्ञान-चारित्र वह संवर-निर्जरा है सभी जीव के विशेष हैं पर्यायों को अलग क्यों कहा ?

उत्तर:- यदि यहाँ पदार्थ का ही श्रद्धान करने का प्रयोजन होता तब तो सामान्यपने अथवा विशेषपने जै का प्रयोजन नहीं है की श्रद्धा करने से मोक्ष होता है यहाँ निरूपण किया है विकार न रहे यह प्रयोजन है मोक्ष-ये पाँच विशेष है विशेषों की श्रद्धा किये बिना मोक्ष नहीं होता; इसलिये उनका यहाँ निरूपण किया है

जीव-अजीव यह तो बहुत द्रव्यों की एक जाति अपेक्षा से सामान्यरूप तत्त्व कहे है अनंत जीवों की एक जाति, अनंत अजीवों की एक जाति गिनकर जीव-अजीव सामान्यरूप तत्त्व कहे है असंख्यात) काल द्रव्य समाहित हो जाते है का ज्ञान हो जाता है

इन दोनों की जाति जानने पर क्या फल आया ? आत्मा को स्व-पर का श्रद्धान हुआ। आत्मा
औ

वाला केवल आत्मा है

मेरा आत्मा मेरे भाव सहित है

अजीव तत्त्व मुझसे औ

जीव अपने हित के लिये मोक्ष का उपाय करता है

भी द्रव्य अपेक्षा से मुझसे भिन्न हैं

जानकर निजहित के लिये मोक्ष का उपाय करता है

है

वह (पर) मेरा कार्य नहीं करते। मैं

के कारण से है

होती है

‘यह हो तो मैं

लेने पर राग छूट जाता है

जाति का श्रद्धान होने पर ही मोक्ष होता है

अकेले जीव को माननेवाले अथवा अकेले अजीव को माननेवाले तथा जीव के कारण
अजीव औ

को माननेवाला मिथ्यादृष्टि है

जातियों को भिन्न जाने बिना स्व-पर का श्रद्धान नहीं होता; किन्तु कर्म मैं

पर्यायबुद्धि होती है

नौ

हैं

की क्रिया में धर्म मानता है

शरीर की पर्याय को स्थिर रखा इससे सामायिक हुई ऐसा मानता है

उसको तत्त्व समझने की महिमा नहीं आती किन्तु शरीर की क्रिया की महिमा आती है

पर्याय बुद्धिवाला जीव शरीर को अपना तत्त्व मानता है
सकता। वह शरीर तथा पुण्य-पाप को रखना चाहता है
भिन्न-भिन्न है

पहले शरीर अच्छा रखेंगे तो भविष्य में धर्मकार्य में विघ्न नहीं आयेगा-ऐसा माननेवाला
शरीर के साथ एकत्वबुद्धि करता है
नहीं कर सकता। दोनों की जाति को भिन्न नहीं जाननेवाला संसारमार्ग का उपाय करता है
परद्रव्यों में राग-द्वेषरूप परिणाम करता है
पदार्थों के प्रति राग और
प्रवर्तन करेगा? अर्थात् नहीं प्रवर्तन करेगा। इसलिये(जीव-अजीव) इन दो जातियों का
श्रद्धान न होने पर मोक्ष भी नहीं होता। अज्ञानी जीव को विपरीत मान्यता होने के कारण
राग-द्वेष हुए बिना नहीं रहते, उसको पर में इष्ट-अनिष्ट की बुद्धि होती ही है
अच्छा रहे तो ठीक है
न हो-इसप्रकार राग-द्वेष करता है
घटते हैं
करने योग्य है

यहाँ मोक्षमार्ग के स्वरूप में सम्यग्दर्शन के लक्षण की बात चल रहीं हैं
है

यहाँ कहते हैं
के बिना मोक्ष का प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा, और
तत्त्व जीव तथा पुद्गल की पर्यायें हैं
जड़ का भाव है
पर्यायों का क्या प्रयोजन है
इनमें मोक्ष को हितरूप जाने तो उसका उपाय करे। जगत के जीव मोक्ष का स्वरूप अनेक
प्रकार से कहते हैं
शुद्धदशा होना मोक्ष है

करने के लिये मोक्ष का श्रद्धान करना चाहिये। आत्मा की पूर्ण परमानंद दशा प्रगट करना हित है

उपाय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है

अब मोक्ष का उपाय संवर-निर्जरा है

को मोक्ष का उपाय कहा था, उनकां यहाँ संवर निर्जरा में समाहित कर दिया है अंश न होना औ

अज्ञानी लोग देह की क्रिया औ
जाना संवर-निर्जरा नहीं है
संवर-निर्जरा है
की श्रद्धा करना योग्य है

तथा संवर-निर्जरा में, पुष्प-पापरूपी आस्रव औ
अभाव होता है
करने पर क्षमा होती है
इसीप्रकार पुण्य-पाप के परिणामों का अभाव करने से संवर होता है
मानने से आस्रव का अभाव नहीं होता। तथा बंध का एकदेश अभाव होना निर्जरा है
बंध का सर्वथा अभाव होना मोक्ष है
जाने तो उनका अभाव करके संवर-निर्जरारूप प्रवर्ते।

इसप्रकार पाँच पर्यायों का श्रद्धान होने पर मोक्षमार्ग होता है
भी आ जाती है
प्रथम मोक्ष बताया है
आस्रव-बंध के अभाव बिना नहीं होती। इसप्रकार पाँचों तत्त्वों की पहिचान की आवश्यकता है
उपाय किसप्रकार करे? संवर-निर्जरा के ज्ञान बिना संवर-निर्जरारूप किसप्रकार प्रवर्ते
अन्तर वीतरागी दशा संवर है
करे? इसलिये इन पाँचो पर्यायों की पहिचान होना चाहिये। इनका श्रद्धान न होने से मोक्ष भी नहीं होता। इसप्रकार यहाँ अस्ति-नास्ति से बात की है

जीव-अजीव को जाति अपेक्षा से दो तत्त्व कहे हैं
 अनंत पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश औ
 सात तत्त्वों के आधीन मोक्षमार्ग है
 सात तत्त्वों के अतिरिक्त अन्य पदार्थों का श्रद्धान हो या न हो या अन्यथा हो, तो भी प्रयोजनभूत
 नहीं है
 हजार वर्ष औ
 छद्मस्थ के ज्ञान में आये या न भी आये; परन्तु सात तत्त्वों का जानना तो प्रयोजनभूत हैं
 उनक आधीन मोक्षमार्ग है

तथा कहीं पुण्य-पाप सहित नौ
 हैं
 नहीं माने तथा स्वच्छंदी होकर पापरूप नहीं प्रवर्ते; इसलिये भेद करके समझाया है
 दो तत्त्वों की श्रद्धा उपकारी जानकर सात तत्त्वों के साथ मिलाकर नौ
 समयसारादि शास्त्र मे नौ
 पहिचान करने पर सम्यग्दर्शन होता है

....फिर प्रश्न:- इनका श्रद्धान सम्यग्दर्शन कहा; सो दर्शन तो सामान्य अवलोकन
 मात्र औ

उत्तर:- प्रकरण के वश से धातु का अर्थ अन्यथा होता है
 मोक्षमार्ग का है
 करना, क्योंकि चक्षु-अचक्षुदर्शन से सामान्य अवलोकन तो सम्यग्दृष्टि-मिथ्यादृष्टि
 के समान होता है
 होता है
 'दर्शन' शब्द का अर्थ भी यहाँ श्रद्धानमात्र की ग्रहण करना।....

प्रश्न:- सात तत्त्वों की श्रद्धा को सम्यग्दर्शन कहा परन्तु दर्शन तो सामान्य अवलोकन
 मात्र है

उत्तर:-प्रकरणवश शब्द का दूसरा अर्थ भी होता है लाने को कहे तो वहाँ उसका अर्थ नमक समझना, परन्तु वहाँ घोड़ा नहीं समझना औ जाते समय सै है अवलोकन नहीं। इस मोक्षमार्ग में सामान्य अवलोकन का प्रयोजन नहीं है जीव को भी सामान्य अवलोकन होता है औ मोक्षमार्ग की प्रतीति नहीं होती। सम्यक् श्रद्धान तो सम्यग्दृष्टि के ही होता है अवलोकन तो अभव्य तथा निगोदादि मिथ्यादृष्टि जीवों के भी होता है प्रकरण में दर्शन का अर्थ सम्यग्दर्शन (श्रद्धान) कहते हैं होता है

....फिर प्रश्न:- यहाँ विपरीताभिनिवेशरहित श्रद्धान करना कहा, सो प्रयोजन क्या ?

समाधान:- अभिनिवेश नाम अभिप्राय का है अभिप्राय है तत्त्वार्थ श्रद्धान करने का अभिप्राय केवल उनका निश्चय करनामात्र ही नहीं है अभिप्राय ऐसा है तै अहित माने, तथा संवर को पहिचानकर उसे उपादेय माने, तथा निर्जरा को पहिचानकर उसे हित का कारण माने, तथा मोक्ष को पहिचानकर उसको अपना परमहित माने- ऐसा तत्त्वार्थश्रद्धान का अभिप्राय है विपरीताभिनिवेश है तत्त्वार्थश्रद्धान है

अथवा किसी के आभासमात्र तत्त्वार्थश्रद्धान होता है विपरीतपना नहीं छूटता। किसी प्रकार से पूर्वोक्त अभिप्राय से अन्यथा अभिप्राय

अन्तरंग मे पाया जाता है

जिनवचन से तत्त्वों की प्रतीति करे, परन्तु शरीराश्रित क्रियाओं में अहंकार तथा पुण्यास्रव में उपादेयपना इत्यादि विपरीत अभिप्राय से मिथ्यादृष्टि ही रहता है इसलिये जो तत्त्वार्थश्रद्धान विपरीताभिनिवेश रहित है

इसप्रकार विपरीताभिनिवेशरहित जीवादि तत्त्वार्थों का श्रद्धानपना सो सम्यग्दर्शन का लक्षण है

वही तत्त्वार्थसूत्र में कहा है

“तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्”

तत्त्वार्थों का श्रद्धान वही सम्यग्दर्शन है

तथा सर्वार्थसिद्धि नामक सूत्रों की टीका है

प्रगट लिखा है

यहाँ कुछ कथन किया है

तथा पुरुषार्थसिद्धपुपाय में भी इसीप्रकार कहा है

जीवाजीवादीनां तत्त्वार्थानां सदै

श्रद्धानं विपरीताभिनिवेशविविक्तमात्मरूपं तत् ।।22।।

अर्थ:- विपरीताभिनिवेश रहित जीव-अजीवादि तत्त्वार्थों का श्रद्धान सदाकाल करना योग्य है

होता है

पश्चात् सिद्ध अवस्था में भी सदाकाल इसका सद्भाव रहता है

प्रश्न:- यहाँ विपरीत अभिनिवेश रहित श्रद्धान करना कहा, उसका क्या प्रयोजन है

उत्तर:- अभिनिवेश अर्थात् अभिप्राय । जै

नहीं समझना विपरीत अभिनिवेश है

गया है

मुझे इसका पहले पता नहीं था । अब पता पड़ने पर भी लड़के को निकालने का प्रयत्न नहीं

करे तो वह कहनेवाले का आशय ही नहीं समझता । परन्तु यह बात सुनकर लड़के को बचाने का प्रयत्न करे तो यथार्थ सुना कहलाता है
इतना ही काफी नहीं है
उपयोग को स्वोन्मुख करना चाहिये ।

जीव-अजीव की श्रद्धा करने का आशय यह था कि स्वयं जीव है
पर का अंश अपने में नहीं मिलाना औ
उनकी क्रिया उनसे होती है
करनेवाले को (जीव-अजीव का) यथार्थ श्रद्धान नहीं है
अच्छा रहता है
स्फूर्ति रहती है
होना जड़ से है
पर्याय जै

तथा आस्रव तत्त्व को जानकर कहे कि पुण्य-पाप आस्रव है
चलता, उनको हेय मानना चाहिये । जै
है
ऐसा मानना चाहिये । आस्रव की ओर का झुकाव छोड़कर ज्ञानस्वभावोन्मुख होना चाहिये ।
ऐसा नहीं माननेवाले को आस्रव की श्रद्धा मिथ्या है

बंध को पहिचानकर उसको अहितरूप मानना चाहिये । जिस भाव से तीर्थकर नामकर्म
बंधता है
बंधेगा औ
है
बंध रुचता है

संवर को पहिचानकर उसको उपादेय मानना चाहिये । मैं
होने पर संवर होता है
सात तत्त्वों के भेद हेय हैं
तो सात तत्त्वों में हेय-उपादेय मानना चाहिये ।

तथा निर्जरा को पहिचानकर उसको हित का कारण मानना चाहिये। निर्जरा के समय शुद्धि की वृद्धि होती है

आत्मा की परिपूर्ण शुद्धदशा मोक्ष है
करना) नहीं रहता है

इसप्रकार जीव-अजीव को जै
अहितरूप मानना, मोक्ष को परमहित मानना, संवर को पहिचानकर उसको अंगीकार करने योग्य मानना औ
है

देखो, पण्डितजी ने कितना सरस लिखा है
तोल-तोलकर शब्द लिखे हैं
मोक्षदशा भी अपनी पर्याय है
होती है

तत्त्वार्थश्रद्धान का अभिप्राय यह है
विपरीत अभिप्राय का नाम विपरीताभिनिवेश है
का अभाव होता है

अथवा किसी के आभासमात्र तत्त्वार्थश्रद्धान होता है
मिटता है
व्यापार-धंधा छोड़ दिया इसलिये धन चला गया-ऐसा मानकर दुःखी होता है
वाला रागभाव हेय है
मानकर अन्तरोन्मुख नहीं होता। इसप्रकार जै
अभिप्राय अन्तर में होनेवाले को सम्यग्दर्शन नहीं होता। जीव अनंतबार द्रव्यलिंगी मुनि हुआ
है
जिन वचनों की प्रतीति करता है
है
को माननेवाले का विपरीत अभिप्राय मिटा नहीं है
शरीर की क्रिया में अहंकार करता है

अज्ञानी शुभभाव में उपादेयपना मानता है
 पार हुआ, भगवान की पूजा से आस्रव मिटता है
 परन्तु यह बात मिथ्या है
 का भाव भी आस्रव है
 -ऐसी रुचि नहीं करने से वह मिथ्यादृष्टि है
 का लक्षण है
 सम्यग्दर्शन को पहिचाना जा सकता है

तत्त्वार्थसूत्र में भी ऐसा ही कहा है
 ही सम्यग्दर्शन है
 यहाँ मोक्षमार्ग का अधिकार है
 इसी सूत्र की टीका करते हुए पूज्यपाद स्वामी ने 'सर्वार्थसिद्धि' नामक टीका ग्रंथ में तत्त्वादि
 पदार्थों का अर्थ प्रगट लिखा है
 के अनुसार यहाँ संक्षेप कथन किया है

समयसार, प्रवचनसार औ
 कि लगभग एक हजार वर्ष पूर्व इस भरतक्षेत्र में हुए है
 है
 तत्त्वार्थों का श्रद्धान सदाकाल करने योग्य है
 सदाकाल करने को कहते ? नहीं। इसलिये यह व्यवहार श्रद्धा की बात नहीं, किन्तु निश्चय
 सम्यग्दर्शन की बात है

आत्मा का स्वभाव जै
 यह श्रद्धान ही आत्मा का स्वरूप है
 रूप नहीं है
 होता है

यह आत्मा ज्ञानानंदस्वरूप है
 भेदज्ञान करना प्रयोजनभूत है

बाद वह सादि अनंतकाल रहती है
 वरन् आत्मा का स्वरूप है
 सातों ही तत्त्व निर्मल पर्याय नहीं है
 पर्याय है
 तत्त्वों की श्रद्धा करना सम्यग्दर्शन है
 विकारी-अविकारी पर्यायें-इत्यादि सब आता है
 पर्याय आती है
 पर प्रगट होता है
 नहीं-ऐसी भ्रान्ति का निमित्त कारण मोह है
 निरूपाधिभाव है
 चौ
 तत्त्वार्थश्रद्धान सम्यग्दर्शन निश्चय सम्यग्दर्शन है
 सिद्ध में भी रहती है
 राग है
 मै
 प्रगट होता है
 केवलज्ञानरूप होता है
 है

सम्यग्दर्शन बंध का कारण नहीं है

है

तत्त्वार्थश्रद्धान लक्षण में अव्याप्ति, अतिव्याप्ति, औ

....यहाँ प्रश्न उत्पन्न होता है

का नाम भी नहीं जान सकते, उनके भी सम्यग्दर्शन की प्राप्ति शास्त्र में कही है
 इसलिये तुमने तत्त्वार्थश्रद्धानपना सम्यक्त्व का लक्षण कहा उसमें अव्याप्ति दूषण
 लगता है

समाधान:- जीव-अजीवादिक के नामादिक जानो या न जानो या अन्यथा जानो, उनका स्वरूप यथार्थ पहिचानकर श्रद्धान करने पर सम्यक्त्व होता है

वहाँ कोई सामान्यरूप से स्वरूप को पहिचानकर श्रद्धान करता है
से स्वरूप को पहिचानकर श्रद्धान करता है
सम्यग्दृष्टि है

पहिचानकर श्रद्धान करते है

जै

आपही में अपनत्व मानता है

जीव-अजीव का नाम नहीं जानता; परन्तु जो ज्ञानादिस्वरूप आत्मा है
अपनत्व मानता है

होता है

नामादिक नहीं जानता है

दुःख के कारण को पहिचानकर उसका त्याग करना चाहता है

कारण बन रहा है

का नाम नहीं जानता, तथापि सर्वथा सुखरूप मोक्ष अवस्था का श्रद्धान करता हुआ
उसके अर्थ आगामी बंध के कारण जो रागादि आस्रव उसके त्यागरूप संवर करना
चाहता है

चाहता है

इसप्रकार उसके भी सप्ततत्त्व का श्रद्धान पाया जाता है
हो तो रागादि त्यागकर शुद्धभाव करने की चाह न हो। वही कहते है

यदि जीव-अजीव की जाति न जानकर आपापर को न पहिचाने तो पर में
रागादिक कै

वे रागादिक ही आस्रव है

छोड़ना चाहे? उन रागादिक का फल वही बन्ध है

पहिचानता है

है

तपश्चरणादि से शुद्धभाव करना चाहता है

है

संवर-निर्जरारूप किसलिये प्रवर्ते? उस संसार अवस्था का अभाव वही मोक्ष है इसलिये सातों तत्त्वों का श्रद्धान होनेपर ही रागादिक छोड़कर शुद्धभाव होने की इच्छा उत्पन्न होती है

नहीं होती। तथा ऐसी चाह तुच्छज्ञानी तिर्यचादि सम्यग्दृष्टि के होती ही है

उसके सात तत्त्वों का श्रद्धान पाया जाता है

क्षयोपशम थोड़ा होने से विशेष रूप से तत्त्वों का ज्ञान न हो, तथापि दर्शनमोह के उपशमादि से सामान्यरूप से तत्त्वश्रद्धान की शक्ति प्रगट होती है

लक्षण में अव्याप्ति दूषण नहीं है

अब जो सम्यग्दर्शन का लक्षण तत्त्वार्थश्रद्धान बताया है

किसी समकित में नहीं व्यापता-ऐसा अव्याप्तिदोष अथवा मिथ्याश्रद्धान में भी वह लक्षण होता है

प्रश्नों का स्पष्टीकरण किया जाता है

प्रश्न:- चिड़िया अथवा मेढ़क को समकित होता है

आते तो भी उनको भी सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होती है

तत्त्वार्थश्रद्धानरूप सम्यग्दर्शन के लक्षण में अव्याप्तिदोष लगता है

उत्तर:- कोई जीव-अजीवादि सात तत्त्वों के नाम जाने अथवा न जाने अथवा सात तत्त्वों के नाम अन्यथा जाने; परन्तु जीव का ज्ञानानंद स्वरूप, अजीव का परस्वरूप (अपने से भिन्न स्वरूप) आस्रव अर्थात् विकार का स्वरूप, विकार में अटकना बंध का स्वरूप, अपूर्ण निर्मल पर्याय संवर-निर्जरा का स्वरूप औ

सम्यग्दर्शन होता है

करना आता हो; परन्तु उसके पास रुपये होने से वह धनवान कहा जाता है

ज्ञानस्वभावी है

तिर्यन्च तत्त्वों के नाम नहीं जानता तो भी उसको उनके भाव का पता है
 सम्यग्दर्शन होता है
 से तो कोई विशेष रूप से पहिचानकर सम्यग्दर्शन करता है
 विशेष अर्थात् पर्याय -यह अर्थ नहीं है
 अधिक-ऐसा अर्थ जानना चाहिये।

कितने ही तुच्छज्ञानी तिर्यन्चादि को जीव-अजीवादि सात तत्त्वों के नाम नहीं आते,
 परन्तु भाव का पता है
 उनको सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होती है
 कारण कि उसे तत्त्वों की यथार्थ श्रद्धा है

जै

अपने को अपनेरूप मानता है
 स्नेहभाव दर्शाता है
 विरोधी है
 है

इसीप्रकार तुच्छज्ञानी जीव-अजीव के नाम नहीं जानता; तथापि वह ज्ञानानंदस्वरूपी आत्मा
 में स्वपना मानता है
 परन्तु स्वयं ज्ञानस्वरूप है
 तुच्छज्ञानी सम्यग्दृष्टि तिर्यन्चादि को जीव-अजीव का श्रद्धान है

तथा तिर्यन्च को सुख-दुःखादि के नाम नहीं आते, उनके यह लक्षण है
 जानते; तो भी सुख अवस्था को पहिचानते है
 अनुकूल है
 भगना चाहते है
 होगा-ऐसे भाव का पता है
 दुःख के नाम का भी पता नहीं है

इसीप्रकार तुच्छज्ञानी तिर्यन्वादि जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा, औ सात तत्त्वों के नाम नहीं जानते; परन्तु मोक्षदशा सुखरूप है आत्मा ज्ञानानंदस्वभावी है अथवा मोक्ष का नाम नहीं आता; परन्तु मोक्ष की श्रद्धा है झुकते हैं हैं का अभाव चाहते हैं संवर की श्रद्धा है इसप्रकार तुच्छज्ञानी के सम्यग्दर्शन में भी सातों ही तत्त्वों की श्रद्धा व्यापती है अतिव्याप्ति दोष नहीं आता।

देखो, पण्डितजी ने छोटी सी उम्र में इस मोक्षमार्गप्रकाशक में हजारों ग्रंथों का सार भर दिया है

केवली भगवान, श्रुतकेवली अथवा तुच्छज्ञानी के सम्यग्दर्शन में कोई अंतर नहीं है सभी ज्ञानियों को सात तत्त्वों की श्रद्धा होती ही है

जै

औ

तिर्यन्च जीव-अजीव का नाम नहीं जानता हो, तो भी सातों तत्त्वों का भाव भासन है अव्याप्तिदोष नहीं है

यहाँ ऐसा बताते हैं

गुणस्थान में हो, सम्यग्दृष्टि तिर्यन्च हो अथवा तीर्थकर हो तो भी सम्यग्दर्शन का लक्षण (तत्त्वार्थश्रद्धान) सब में व्यापता है

साधारण गरीब बनिया हो अथवा मालदार हो, कोई भी आ सकता है

भाव भासन में अथवा तत्त्वश्रद्धान के लक्षण की अपेक्षा से तुच्छज्ञानी-केवलज्ञानी साथ हैं इसप्रकार तुच्छज्ञानी को सात तत्त्वों की श्रद्धा है को छोड़कर शुद्धभाव करने की इच्छा भी नहीं हो सकती।

तिर्यन्च को ज्ञान थोड़ा है
 शरीरादि पर है
 रुचि नहीं है
 इसप्रकार उसको जीव-अजीव की श्रद्धा हुई है

आत्मा की पूर्ण निर्मलदशा मोक्ष है
 एक अंग है
 है
 औ
 समवसरण में भी आत्मा का भान होता है
 प्राप्त करना है

जो जीव की जाति नहीं जाने, स्व-पर को नहीं पहिचाने तो वह पर में रागादिक कै करेगा ? उनकी जाति नहीं पहिचाने अर्थात् मै जाने तो रागादिक कै ज्ञानस्वभावी आत्मा हूँ -ऐसा नहीं जाननेवाला स्व को नहीं पहिचानने से पर को भी नहीं पहिचानता; तब वह स्व की रुचि छोड़कर पर की रुचि क्यों नहीं करेगा । परन्तु पर की रुचि नहीं करता; इसलिये स्व की रुचि करता है करने पर परपदार्थ अपने में नहीं है अस्ति औ

आत्मा का भान होने पर भी कमजोरीवश रागादि होते हैं उस ओर से हटकर स्वभाव सन्मुख कै चाहता है आत्मा की शान्ति को लूटनेवाले है इसलिये उसको आस्रव का पता है रागादिक का फल बुरा है उसे छोड़कर अबंध स्वभाव की ओर क्यों आना चाहता है

का पता है

को पहिचानता है

सभी समकृती जीवों को सात तत्त्वों की पहिचान है
एकाग्र होने के परिणाम को नहीं पहिचाने तो राग से क्यों हटना चाहता है
बारह व्रत के परिणाम से भी हटना चाहता है

आत्मा में शुद्धि की वृद्धि होना निर्जरा है
ज्ञान-चारित्र उसके तीन अवयव अथवा अंग हैं
है

लेता है

बालक नहीं कर सकता; परन्तु अग्नि प्रतिकूल है
भासन बालक को भी है

औ

तत्त्वार्थश्रद्धान समान ही होता है

आत्मा शुद्ध चिदानंद है
हानि होती है
होना ही निर्जरा है

पुण्य-पाप की विकारीदशा संसार है
करके पूर्ण शुद्धता प्रगट करना चाहता है

आत्मा का भान होने पर समस्त भाव का भासन वर्तता है
पहिचान है
सम्यग्दृष्टि तिर्यन्च को विशेष ज्ञान नहीं है
होवे तो शुद्धभावरूप होने की इच्छा नहीं हो सकती। ऐसी इच्छा तुच्छज्ञानी तिर्यन्च सम्यग्दृष्टियों
के होती ही है

सुकौ

देखकर उस बाधिन को ख्याल आ जाता है

प्राप्त करके समाधिमरण करती है
 सिंह था। सिंह हिरण को मारने हेतु जाता है
 सिंह को सम्बोधित है
 प्राप्त करता है
 क्षपोपशम अल्प होने से उसको विशेषरूप से तत्त्वों का ज्ञान नहीं है
 से तत्त्वों की श्रद्धा यथार्थ होती है

....फिर प्रश्न:- जिस काल में सम्यग्दृष्टि विषयकषायों के कार्य में प्रवर्तता है
 उस काल में सात तत्त्वों का विचार ही नहीं है
 सम्यक्त्व रहता ही है

समाधान:- विचार है
 विचार होता है
 होने पर व सोना आदि क्रिया होने पर तत्त्वों का विचार नहीं है
 बनी रहती है

जै
 मुझे इस कारण से रोग हुआ है
 होना। तथा वही मनुष्य अन्य विचारादिरूप प्रवर्तता है
 होता, परन्तु श्रद्धान ऐसा ही रहा करता है
 कि 'मै
 निर्जरा करके, मोक्षरूप होना'। तथा वही आत्मा अन्य विचारादिरूप प्रवर्तता है
 उसके ऐसा विचार नहीं होता, परन्तु श्रद्धान ऐसा ही रहा करता है

फिर प्रश्न है

उत्तर:- जै
 प्रवर्तता है
 उसके नाश नहीं होता; उसीप्रकार वही आत्मा कर्मउदय निमित्त के वश बन्ध होने के
 कारणों में भी प्रवर्तता है
 उस श्रद्धान का उसके नाश नहीं होता। इसका विशेष निर्णय आगे करेंगे।

इसप्रकार सप्त तत्त्व का विचार न होने पर भी श्रद्धान का सद्भाव पाया जाता है

प्रश्न:- सम्यग्दृष्टि जीव को आत्मा का भान होता है में तथा क्रोध, मान, माया, लोभ में प्रवर्तता दिखता है विचार नहीं होता, तो वहाँ सात तत्त्वों की श्रद्धा नहीं है है

उत्तर:- विचार जानने-देखने के व्यापार के आधीन है जुड़ता है सात तत्त्वों की प्रतीति का अभाव नहीं होता। तथा उसके लब्धज्ञान में स्व को पकड़ने की ताकत मिटती नहीं है के ज्ञान का उपयोग नहीं है समकित का अस्तित्व है श्रद्धा वर्तती है जै से रोग हुआ है रोग घटाकर निरोग होना चाहिये।

देखो, पण्डितजी किस ढंग से औ महीने तक सब्जी में नमक नहीं डालती थी औ छह माह के पश्चात पता पड़ा। शास्त्र लिखने में उनकी ऐसी तल्लीनता थी।

यहाँ रोगी का दृष्टान्त योग्य रीति से दिया गया है निरोग होना चाहता है मनुष्य हूँ, तिर्यन्च नहीं, इसकारण से मुझे रोग हुआ है श्रद्धान मिटता नहीं है अभाव नहीं होता है नहीं हूँ, मुझे पुण्य-पाप के परिणामों से बंध है

होना है

श्रद्धान तो ऐसा ही रहा करता है

जै

की) श्रद्धा रहती है

बंध का कारण है

वह शुभाशुभभाव को रोग समझता है

द्वारा रोग का अभाव करके निरोगदशा अर्थात् मोक्षदशा प्राप्त करनी है

सदै

होता है

जै

भूल नहीं जाता । शरीर, कर्म, दाल, भात, रोटी आदि अजीव का ढेढिया मेला है

भगवान आत्मा उससे भिन्न है

करता है

पुण्य-पाप के परिणाम होते हैं

वह आस्रव को मिटाकर, बंध को घटाकर मोक्ष प्राप्त करना चाहता है

प्रश्न:- यदि उसको ऐसा श्रद्धान रहता है

जब ज्ञानी को बंध के कारण मिटाकर, बंध घटाकर बंध का अभाव करने की प्रतीति सदा

वर्तती है

हेय है

है

वर्तती है

उत्तर:- जै

उसको पकड़े रखने का अभिप्राय नहीं है

धर्मात्मा को राग-द्वेष होते हैं

भान है

कमजोरी से कर्मोदय के आधीन होकर पुण्य-पापरूप प्रवर्तता है

को) बलजोरी से आधीन नहीं करता है

अंतर में ज्ञानी को भान है

(कमजोरी से) उनमें प्रवर्तता है

का भान था, दोनों तद्भव मोक्षगामी थे, तो भी उनको युद्ध के परिणाम हुए; तथापि आत्मा की प्रतीति का अभाव नहीं हुआ था। इसका विशेष निर्णय आगे करूँगा-ऐसा लिखा है पण्डितजी से

इसप्रकार सात तत्त्वों का विचार न होने पर भी वहाँ तत्त्वार्थश्रद्धान सद्भावरूप रहता है विषय-कषाय में प्रवर्तने पर भी अथवा बंध के कारणों में प्रवर्तन के समय भी धर्मी को तत्त्वश्रद्धा रहती है

शांतिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ तीर्थकर को जन्म समय से ही तीन ज्ञान थे, वे क्षायिक सम्यग्दृष्टि थे; तथापि छियानवें हजार स्त्रियों के साथ विवाह किया था? समाधान यह है ज्ञानी को आत्मा का भान होने पर भी पुण्य-पाप के परिणाम में वर्तता है बात उसकी श्रद्धा से हटती नहीं है से नहीं हटती है

अज्ञानी जीव मुनि हो जाये अथवा बारह व्रत औ आस्रव हेय-ऐसी श्रद्धा नहीं होने से वह मिथ्यादृष्टि है

यहाँ कहा कि सम्यग्दृष्टि बंध को अहितकर जानने पर भी आस्रव का सेवन करता है तो उसको श्रद्धा है

....फिर प्रश्न:- उच्चदशा मे जहाँ निर्विकल्प आत्मानुभव होता है तत्त्वादिक के विकल्प का भी निषेध किया है करना कै

उत्तर:- निचलीदशा में सप्त तत्त्वों के विकल्पों में उपयोग लगाया, उससे प्रतीति को दृढ़ किया औ होनेपर कारणों का भी निषेध करते है

रागादिक दूर हुए, वहाँ उपयोग भ्रमाने का खेद किसलिये करे? इसलिये वहाँ उन विकल्पों का निषेध किया है
 का तो निषेध नहीं किया। यदि प्रतीति छुड़ायी हो तो इस लक्षण का निषेध किया कहा जाये, सो तो है
 यहाँ अव्याप्तिपना नहीं है

प्रश्न:- आत्मा का ज्ञान स्वरूप में प्रवर्ते औ
 के विकल्पों का निषेध किया है
 निर्विकल्प अनुभव के समय सात तत्त्वों का विचार नहीं है
 वहाँ अव्याप्तिदोष आया या नहीं ?

उत्तर:- निचलीदशा में सात तत्त्वों के विचार में उपयोग लगाकर प्रतीति को दृढ़ किया औ
 करके निर्णय किया औ
 होने के पश्चात् सात तत्त्वों के विकल्प का कोई प्रयोजन नहीं रहता; इसलिये वहाँ विकल्पों का निषेध किया है

जबतक कार्य की सिद्धि नहीं हुई तबतक विकल्प था; परन्तु कार्य की सिद्धि होने के बाद विकल्प का प्रयोजन नहीं रहा; परन्तु इससे प्रतीति का अभाव नहीं हुआ है
 आत्मा के अनुभव के समय भेद का विकल्प नहीं रहता है

द्रव्यस्वभाव के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है
 है
 उपशम, क्षयोपशम औ
 रहे वहाँ तक सम्यग्दर्शन नहीं होता। यहाँ तो विकल्परहित सात तत्त्वों का यथार्थ निर्णय करने को तत्त्वार्थश्रद्धान सम्यग्दर्शन कहा है

आत्मा ज्ञानानंद है
 दृढ़ता की ऐसा ज्ञान की प्रधानता से कहा है
 में ज्ञान को क्यों भ्रमायेगा? वह सात तत्त्वों के भेद में ज्ञान को नहीं रोकता है

का लक्षण तो प्रतीति है
परन्तु सात तत्त्वों की प्रतीति का निषेध तो नहीं किया है
है

समकृती को चौ
स्वभाव में स्थिर हो तब भेद में रहने की आवश्यकता नहीं है
है
हो तो लक्षण का निषेध किया कहलाये। सात तत्त्वों का विकल्प छूटने पर भी प्रतीति कायम
रहती है
कायम रहती है
श्रद्धा रहती है

....फिर प्रश्न है
वहाँ सप्त तत्त्वों की प्रतीति सम्यक्त्व का लक्षण कहा सो हमने माना; परन्तु
केवली-सिद्ध भगवान के तो सर्वका जानपना समानरूप है
प्रतीति कहना सम्भव नहीं है
वहाँ उस लक्षण का अव्याप्तिपना आया ?

समाधान:- जै
प्रकार केवली-सिद्ध भगवान के केवलज्ञान के अनुसार प्रतीति पायी जाती है
सप्त तत्त्वों का स्वरूप पहले ठीक किया था, वही केवलज्ञान द्वारा जाना, वहाँ
प्रतीति का परमावगाढ़पना हुआ; इसी से परमावगाढ़ सम्यक्त्व कहा। जो पहले
श्रद्धान किया था, उसको झूठ जाना होता तो वहाँ अप्रतीति होती; सो तो जै
तत्त्वों का श्रद्धान छद्मस्थ के हुआ था, वै
है

भगवान के सम्यक्त्व गुण समान ही कहा है

तथा पूर्व अवस्था में यह माना था कि संवर-निर्जरा से मोक्ष का उपाय करना।
पश्चात् मुक्त अवस्था होनेपर ऐसा मानने लगे कि संवर-निर्जरा से हमारे मोक्ष हुआ।

तथा पहले ज्ञान की हीनता से जीवादिक के थोड़े विशेष जाने थे, पश्चात् केवलज्ञान होने पर उनके सर्व विशेष जाने; परन्तु मूलभूत जीवादिक के स्वरूप का श्रद्धान जै

केवली-सिद्ध भगवान अन्य पदार्थों को भी प्रतीति सहित जानते है
प्रयोजनभूत नहीं है

है

चाहते; सो यह श्रद्धान का बल जानना।....

प्रश्न:- केवली के सात तत्त्वों की प्रतीति कै
काम धंधे में हो अथवा निर्विकल्प अनुभव में हो तब भी प्रतीति संभव है
तत्त्वों की प्रतीति को सम्यग्दर्शन का लक्षण कहा वह संभव है
भगवान के सम्यक्त्व होता है

समान है

नहीं है

लक्षण व्यापता नहीं है

समाधान:- जै

तरह केवली औ

में वर्तते ज्ञानी से लेकर सिद्ध तक के जीवों के ज्ञान तथा चारित्र में अंतर होता है

तत्त्वों की श्रद्धा एक जाति की होती है

अपेक्षा से है

केवली भगवंतो ने पूर्व छद्मस्थदशा में निर्णय किया था वह केवलज्ञान द्वारा जाना,
इसलिये वहाँ प्रतीति में परमावगाढ़पना हुआ। इसीसे वहाँ परमावगाढ़ सम्यक्त्व कहा है

पूर्व के श्रद्धान से अलग जाना होता तो वहाँ अप्रतीति होती। जै

छद्मस्थ का है

केवली को पूर्णता होने पर भी समकिति तिर्यन्च औ

प्रतीति में अंतर नहीं है

केवली भगवान का आत्मा पूर्व में ऐसा मानना था कि आत्मा शुद्ध चिदानंद है निर्विकारी दशा(संवर-निर्जरा) द्वारा पूर्णदशा (मोक्ष) का उपाय करना; अब ऐसा माना कि संवर द्वारा मोक्ष हुआ । अब प्रयोजन सिद्ध हो गया; इसलिये करना शेष नहीं रहा; परन्तु यह मानने लगे कि संवर निर्जरा द्वारा मोक्षदशा हो गई, अन्य किसी उपाय से नहीं हुई। पूर्व में श्रुतज्ञान में जीव-अजीव के भेद पाड़कर जानते थे औ जीव-अजीव-आस्रव- बंधादि समस्त भेदों को जानते हैं श्रद्धान जै तथा सिद्ध भगवान अन्य पदार्थों को भी प्रतीति सहित जानते हैं नहीं हैं

केवली तथा सिद्ध भगवान रागादिक विकाररूप नहीं होते औ इस श्रद्धान का ही बल जानना चाहिये । वे श्रद्धान के बल के कारण आस्रव-बंध को नहीं चाहते यह श्रद्धान का बल बताया ।

तिर्यन्च के औ की श्रद्धारूप लक्षण वर्तता होने से वहाँ भी अव्याप्ति दोष नहीं आता ।

....फिर प्रश्न है

सद्भाव कै

उत्तर:- कोई कारण ऐसा भी होता है होता । जै

उसके होने पर वह एक शाखा नष्ट नहीं होती; उसीप्रकार किसी आत्मा के सम्यक्त्वगुण से अनेक गुणयुक्त मुक्त अवस्था हुई, उसके होने पर सम्यक्त्वगुण नष्ट नहीं होता । इसप्रकार केवली-सिद्ध भगवान के भी तत्त्वार्थश्रद्धान लक्षण सम्यक्त्व ही पाया जाता है

प्रश्न:- सम्यग्दर्शन तो मोक्षमार्ग है

उत्तर:- कोई कारण ऐसे भी होते हैं जै

होती। इसीतरह किसी आत्मा को शुद्ध चै
से अनेक गुणों की निर्मलदशा होती है
प्रगटने पर चारित्र, सुख आदि प्रगट होते है
में भी सम्यक्त्वगुण नष्ट नहीं होता। इसप्रकार केवली तथा सिद्ध भगवान को भी तत्त्वों की
श्रद्धा होती है

तत्त्वार्थश्रद्धान समस्त सम्यग्दृष्टियों में रहता है

इसप्रकार अव्याप्तिदोष का स्पष्टीकरण किया।

....फिर प्रश्न:- मिथ्यादृष्टि के भी तत्त्वश्रद्धान होता है

है

सम्यक्त्व का लक्षण तत्त्वार्थश्रद्धान कहने पर उसमें अतिव्याप्ति दूषण लगता है

समाधान:- मिथ्यादृष्टि के जो तत्त्वश्रद्धान कहा है

जिसमें तत्त्वश्रद्धान का गुण नहीं, औ

जाये वह मिथ्यादृष्टि के होता है

के प्रतिपादक शास्त्रों का अभ्यास करता है

नहीं लगता है

सो भावनिक्षेप से कहा है

कदाचित् नहीं होता। तथा आत्मज्ञानशून्य तत्त्वार्थश्रद्धान कहा है

जानना। जिसके सच्चे जीव-अजीवादिका श्रद्धान हो उसके आत्मज्ञान कै
होता ही होता है

पाया जाता, इसलिये उस लक्षण में अतिव्याप्ति दूषण नहीं लगता।....

अब अतिव्याप्ति दोष लगता है

प्रश्न:- जीव-अजीवादि तत्त्वों की प्रतीति सम्यग्दर्शन का लक्षण है

भी तत्त्वार्थश्रद्धान लक्षण होता है

शून्य तत्त्वार्थश्रद्धान अकार्यकारी कहा है

है

मिथ्यादृष्टिपना अलक्ष्य है

इसलिये इस लक्षण में अतिव्याप्ति दोष आता है

उत्तर:- मिथ्यादृष्टि को तत्त्वार्थश्रद्धान कहा है
ज्ञानावरणी का क्षयोपशम है
कहा है
है
के प्रतिपादक शास्त्रों का अभ्यास करता है
कहा है
उसको नहीं है
निर्णय करता नहीं है
नहीं आता है

जो लक्षण लक्ष्य तथा अलक्ष्य दोनों पदार्थों में हो उस लक्षण में अतिव्याप्तिदोष आता है

अभव्य द्रव्यलिंगी मुनि को तत्त्वार्थश्रद्धान आगम द्रव्यनिक्षेप से है
उपयोग नहीं लगाता, उसका ज्ञान स्व के उपयोग रहित है
तत्त्वार्थश्रद्धान कहा है
मिथ्यादृष्टि के गुणसहित सच्चा तत्त्वार्थश्रद्धान कभी नहीं होता है
तत्त्वार्थश्रद्धान कहा है
जीव-अजीवादि सात तत्त्वों का भाव सहित अथवा गुण सहित सच्चा श्रद्धान होता है
आत्मज्ञान कै

इसप्रकार किसी भी मिथ्यादृष्टि को सच्चा तत्त्वार्थश्रद्धान सर्वथा नहीं होता। इसलिये इस लक्षण में अतिव्याप्ति दूषण नहीं लगता।

मिथ्यादृष्टि के जो तत्त्वश्रद्धान कहा है
उसे तत्त्वार्थश्रद्धान कहते हैं
सम्यग्दर्शन का लक्षण भावनिक्षेप से कहा है
आत्मा के भाव में उपयोग पूर्वक निर्णय हुआ है

शुभ, अशुभ औ
 शुद्ध उपयोग नहीं होता; इसलिये उसके भावनिक्षेप से तत्त्वार्थश्रद्धान नहीं होता है
 उपयोग से छूटकर आत्मा में निर्णय होना मिथ्यादृष्टि के नहीं है
 उसमें जड़ है
 हितरूप औ
 कहलाता है

अज्ञानी को विपरीत अभिप्राय रह जाता है
 लेता है
 पर भी स्वरूप के निर्णय पूर्वक जो उपयोग लगाना चाहिये उसे वह नहीं लगाता। जिसने श्रवण
 ही नहीं किया, ग्रहण औ
 द्रव्यनिक्षेप से भी तत्त्वार्थश्रद्धान लागू नहीं पड़ता। तात्पर्य यह है
 श्रवण करता है
 से भी जीव-अजीव आदि का श्रवण नहीं किया उस जीव को तो नाम निक्षेप से भी तत्त्वार्थश्रद्धान
 नहीं है
 होते। आत्मद्रव्य नित्य शुद्ध है
 आत्मायें है
 श्रद्धा को तो व्यवहार श्रद्धा भी नहीं कहते। जिसने सच्चे देव-शास्त्र-गुरु के समीप तत्त्व की
 बात सुनी है
 है

देखो! मिथ्यादृष्टि के नामनिक्षेप से अथवा तो व्यवहार से तत्त्वश्रद्धान होता है
 ज्ञानी ऐसा निक्षेप करता है
 है
 ज्ञानी उसको इसप्रकार जानता है
 तत्त्वार्थश्रद्धान पूर्वक होता है

कोई कहे कि ऐसे तत्त्वार्थश्रद्धान को न जाने; किन्तु अकेले आत्मा को जाने तो सम्यग्दर्शन
 होता है

वहाँ जितने प्रकार से विपरीत अभिप्राय को दृढ़ किया है
यथार्थरूप से सुनकर निर्णय नहीं करे तबतक सम्यग्दर्शन नहीं होता।

इसीप्रकार आत्मज्ञानशून्य तत्त्वार्थश्रद्धान को अकार्यकारी कहने में भी यही आशय
समझना; कारण कि जहाँ जीव-अजीवादि सात तत्त्वों का यथार्थ श्रद्धान हो वहाँ आत्मज्ञान
कै

भी सच्चा नहीं है

जिसको आत्मज्ञान होता है
जिसको तत्त्वार्थश्रद्धान नहीं होता उसको आत्मज्ञान भी नहीं होता। आत्मा नित्य है
में बदलता है
नहीं होता।

अज्ञानी कहता है

क्या है

विकारी अवस्था है

इसलिये ऐसा निर्णय होता है

है

....तथा जो यह तत्त्वार्थश्रद्धान लक्षण कहा, सो असम्भवी भी नहीं है
सम्यक्त्व का प्रतिपक्षी मिथ्यात्व का यह नहीं है

इसप्रकार अव्याप्ति, अतिव्याप्ति, असम्भवपने से रहित सर्व सम्यग्दृष्टियों में तो
पाया जाये औ

लक्षण तत्त्वार्थश्रद्धान है

यह तत्त्वार्थश्रद्धान लक्षण कहा है

सम्यक्त्व का प्रतिपक्षी मिथ्यात्व ही है

लक्षण तो विपरीत अभिप्राय है

इसप्रकार दोनों के लक्षण परस्पर विरुद्ध है

आता। यदि सम्यक्त्व का प्रतिपक्षी आस्रव को कहा जाये तो मिथ्यात्व के अभाव के बाद भी
अविरति, प्रमाद, कषाय औ

नहीं होगा; परन्तु ऐसा नहीं है
विपरीत अभिप्राय से रहित तत्त्वार्थश्रद्धान सम्यग्दर्शन है

जिसको सम्यग्दर्शन हुआ हो उसको तुरंत ही अव्रतादि के परिणाम मिटना चाहिये।
अर्थात् सम्यग्दर्शन होने के तुरंत बाद त्याग होना चाहिये ऐसा माननेवाले ने सम्यग्दर्शन का
प्रतिपक्षी अव्रत को माना है

माना है

में तो कभी नहीं व्यापता, इसलिये इस लक्षण में असंभवदोष नहीं आता।

इसप्रकार तत्त्वार्थश्रद्धान किसी भी सम्यग्दर्शन में न व्यापे (न होवे) ऐसा नहीं होता औ
अलक्ष्य (मिथ्यादर्शन) में व्यापे-ऐसा नहीं होता। इसलिये यह लक्षण तीनों दोष रहित है
समस्त ही सम्यग्दृष्टियों में होता है

सम्यग्दर्शन का सच्चा लक्षण तत्त्वार्थश्रद्धान ही है

सम्यक्त्व के विभिन्न लक्षणों का समन्वय

....फिर प्रश्न उत्पन्न होता है

हो सो नहीं बनता। क्योंकि कहीं पर से भिन्न अपने श्रद्धान ही को सम्यक्त्व कहते
है

आत्मा का परद्रव्य से भिन्न अवलोकन वही नियम से सम्यग्दर्शन है
नवतत्त्व की संतति को छोड़कर हमारे यह एक आत्मा ही होओ।

तथा कही एक आत्मा के निश्चय ही को सम्यक्त्व कहते है
में 'दर्शनमात्मविनिश्चितिः' ऐसा पद है
का व केवल जीव ही का श्रद्धान होने पर सम्यक्त्व होता है
नियम होता तो ऐसा किसलिये लिखते ?

समाधान:- पर से भिन्न अपना श्रद्धान होता है
रहित होता है

प्रयोजन के अर्थ ऐसा उपाय करता है

होकर स्वरूप में उपयोग लगाने का किसलिये उद्यम रखता है

श्रद्धान बिना पूर्व अवस्था को किसलिये छोड़ता है
 श्रद्धानरहित आपापर का श्रद्धान करना सम्भवित नहीं है
 श्रद्धान सहित होता है
 केवल आत्मा का निश्चय है
 नहीं होता, इसलिये अजीव का श्रद्धान होने पर ही जीव का श्रद्धान होता है
 उसके पूर्ववत् आस्रवादिक का भी श्रद्धान होता ही होता है
 तत्त्वों के ही श्रद्धान का नियम जानना।

तथा आस्रवादिक के श्रद्धान बिना आपापर का श्रद्धान व केवल आत्मा का
 श्रद्धान सच्चा नहीं होता; क्योंकि आत्मा द्रव्य है
 जै
 पर्याय पहिचाने बिना आत्मद्रव्य का श्रद्धान नहीं होता; उस शुद्ध-अशुद्ध अवस्था की
 पहिचान आस्रवादिक की पहिचान से होती है
 आपापर का श्रद्धान व केवल आत्मा का श्रद्धान कार्यकारी भी नहीं है
 श्रद्धान करो या न करो, आप है
 का श्रद्धान हो तो आस्रव-बन्ध का अभाव करके संवर-निर्जरारूप उपाय से मोक्षपद
 को प्राप्त करे। तथा जो आपापर का भी श्रद्धान कराते है
 कराते है
 जानना कार्यकारी है

प्रश्न:- यहाँ सम्यग्दर्शन में सात तत्त्वों के श्रद्धान का नियम कहा है
 क्योंकि कहीं तो -

(1) पर से भिन्न आत्मा के श्रद्धान को सम्यक्त्व कहते हैं
 'एकत्व नियतस्य' इत्यादि कहा है
 से भिन्न अवलोकन नियम से सम्यग्दर्शन है
 एक आत्मा प्राप्त होओ। तुम सात से काम है
 को कहा है

(2) कहीं एक आत्मा के निश्चय को ही सम्यक्त्व कहा है सिद्धियुपाय में 'दर्शनआत्म विनिश्चिति' -यह पद है अकेले आत्मा की श्रद्धा की बात आई, जबकि आप सात की श्रद्धा को सम्यग्दर्शन कहते हो। इसलिये जीव-अजीव का ही अथवा केवल जीव का ही श्रद्धान होने पर सम्यग्दर्शन होता है यदि सात तत्त्वों की श्रद्धा का नियम होता तो वै

उत्तर:- (1) पर से भिन्न जो अपना श्रद्धान होता है के श्रद्धान से रहित है हितरूप है छूटने का उपाय करता है चाहता है स्थिरता करना चाहता है औ

तथा शुद्धता का अंश संवर उपादेय है उनकी श्रद्धा बिना रागादि रहित होकर अपने स्वरूप में लीनता का उद्यम किसलिए रखता है इसलिये उसको संवर-निर्जरा की श्रद्धा वर्तती है

तथा पुण्य-पापरूपभाव आस्रव है अहितकर है है औ स्व-पर की श्रद्धा में सातों ही तत्त्व आ जाते हैं होती है

(2) अब मात्र आत्मा की श्रद्धा का स्पष्टीकरण करते हैं

केवल आत्मा का निश्चय है होता। आत्मा आत्मारूप है ज्ञानानंदमूर्ति है

है

ही जीव का श्रद्धान होता है

है

की श्रद्धा होती है

स्वीकारता; इसलिये कहते है

आयेगा ? इसलिये इसमें भी अजीव की श्रद्धा रही हुई है

श्रद्धान भी वहाँ अवश्य होता है

बारम्बार जीव के सन्मुख उपयोग लगाता है

है

जिसको आत्मा की श्रद्धा होती है

इसलिये एक आत्मा की श्रद्धा कहो, अथवा जीव-अजीव की श्रद्धा कहो; तो भी यह

लक्षण (तत्त्वार्थश्रद्धान) लागू पड़ता है

नहीं पड़े-ऐसा नहीं होता ।

पुण्य-पाप आस्रव है

इसप्रकार इन पाँच की श्रद्धा के बिना स्व-पर का श्रद्धान अथवा केवल आत्मा का श्रद्धान सच्चा नहीं होता । वेदान्त औ

मात्र से काम नहीं चलता । सात तत्त्वों की श्रद्धा के बिना आत्मा की सच्ची श्रद्धा नहीं होती ।

केवलज्ञान का कारण चारित्र है

तत्त्व की श्रद्धा है

उपाय है

पाँच को जाने बिना मात्र आत्मा ज्ञानमूर्ति है

चूककर रागादि परिणाम का होना आस्रव है

शुद्धता प्रगट होना औ

की श्रद्धा के बिना आत्मा की श्रद्धा सच्ची नहीं होती । अज्ञानी या तो आस्रव तत्त्व को नहीं

मानता अथवा विकार के कारण निर्विकारी दशा होना मानता है

अभिप्राय का अभाव नहीं होता है

आत्मा शुद्धाशुद्ध पर्यायों का समुदाय है
 प्रकरण में व इसी ग्रंथ के भाग 3 में) आ गई है
 शुद्ध-अशुद्ध पर्याय रहित नहीं है
 है
 श्रद्धा नहीं करे तो वह कार्यकारी नहीं है
 कोई कहता है
 है
 सच्चापना है
 आस्रव-बंध का अभाव करना है
 है
 संवर-निर्जरा मोक्ष वर्तते है
 बिना स्व-पर का श्रद्धान अथवा केवल आत्मा का श्रद्धान सच्चा नहीं है
 जै
 नहीं होता; इसीप्रकार आस्रव-बंध अशुद्ध पर्याय है
 इन्हें जाने बिना आत्मद्रव्य का श्रद्धान नहीं होता। आत्मद्रव्य इन पाँच पर्यायों सहित है
 श्रद्धा सम्यग्दर्शन है
 (परन्तु जिसको इन पाँच पर्यायों की श्रद्धा नहीं है
 की श्रद्धा में से एक भी तत्त्व की श्रद्धा कम करे तो आत्मा की श्रद्धा नहीं रहती।
 आत्मा में जो विकार परिणाम होता है
 स्व-पर का श्रद्धान या केवल आत्मा का श्रद्धान कार्यकारी भी नहीं है
 करो या मत करो, स्वयं है
 दया, दान, व्रत, पूजा आदि के परिणाम आस्रव-बंध हैं
 उनका अभाव करने से संवर-निर्जरा होती है
 संवर-निर्जरा में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों आ जाते है
 चाहता है

श्रद्धान भी इसी प्रयोजन के लिये कराते हैं
 स्व-पर की श्रद्धा आस्रवादि की श्रद्धा कराने के लिये है
 उपादेय, निर्जरा हितरूप औ
 श्रद्धा कराते है
 है
 कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र की श्रद्धा आस्रव है
 नहीं प्रवर्त सकता औ

पुण्य-पाप का ज्ञान पुण्य-पाप के अभाव के लिये किया है
 इसप्रकार पुण्य-पाप का अभाव करके संवर-निर्जरा-मोक्ष का भाव करना है
 आस्रवादिक के श्रद्धान सहित स्व-पर का जानना अथवा स्व का जानना कार्यकारी है

....यहाँ प्रश्न है

आत्मा के श्रद्धान ही को सम्यक्त्व कहा व कार्यकारी कहा; तथा नवतत्त्व की संतति
 छोड़कर हमारे एक आत्मा ही होओ- ऐसा कहा, सो किस प्रकार कहा?

समाधान:- जिसके सच्चा आपापर का श्रद्धान व आत्मा का श्रद्धान हो, उसके
 सातों तत्त्वों का श्रद्धान होता ही होता है
 हो उसके आपापर का व आत्मा का श्रद्धान होता ही होता है
 अविनाभावीपना जानकर आपापर के श्रद्धान को या आत्मश्रद्धान ही को सम्यक्त्व
 कहा है

तथा इस छल से कोई सामान्यरूप से आपापर को जानकर व आत्मा को
 जानकर कृतकृत्यपना माने, तो उसके भ्रम है

“निर्विशेषं हि सामान्यं भवेत्खरविषाणवत्”

इसका अर्थ यह है

इसलिये प्रयोजनभूत आस्रवादिक विशेषों सहित आपापर का व आत्मा का
 श्रद्धान करना योग्य है

परद्रव्यों को भिन्न भाता है
होती है

तथा तत्त्वार्थ-श्रद्धान किये बिना सर्व जानना कार्यकारी नहीं है
प्रयोजन तो रागादिक मिटाने का है
भासित नहीं होता; तब केवल जानने ही से मान को बढ़ाता है
तब उसका कार्य कै
में नवतत्त्व के विचार से सम्यग्दर्शन हुआ, पश्चात् निर्विकल्पदशा होने के अर्थ
नवतत्त्वों के भी विकल्प छोड़ने की चाह की। तथा जिसके पहले ही नवतत्त्वों का
विचार नहीं है
आपके पाये जाते है

इसप्रकार आपापर के श्रद्धान में व आत्मश्रद्धान में साततत्त्वों के श्रद्धान की
सापेक्षता पायी जाती है

प्रश्न:- यदि ऐसा है
कहा है
जो कोई सिद्ध नहीं होते वे भेदविज्ञान के अभाव से सिद्ध नहीं होते-इसप्रकार (स्व-पर
भेदविज्ञान को) कार्यकारी कहा है
है
आत्मा ही प्राप्त होओ-तो ऐसा क्यों कहा है
यहाँ सात की बात करते हो, जबकि शास्त्र में नवतत्त्वों की संतति छोड़कर ज्ञायक आत्मा की
प्राप्ति हो ऐसा कहा है

उत्तर:- आत्मा शुद्ध चै
सात तत्त्वों की श्रद्धा होती है
ज्ञान आ जाता है
के ज्ञानवाले को अनात्मा-जड़ का ज्ञान होता है
परन्तु झुकाव परसन्मुख था, वह झुकाव स्वसन्मुख होता है

इसप्रकार सातों का श्रद्धान आ जाता है

सात तत्त्वों की श्रद्धा के बिना पर से भेदज्ञान नहीं होता- इसप्रकार परस्पर अविनाभावीपना है

कहो-एक ही है

यहाँ कहा है

छल से सामान्यरूप से स्व-पर को जानकर अथवा आत्मा को जानकर कृतकृत्यपना मानता है

सच्चा नहीं होता। बंध के फल को हितकर माननेवाला बंध को हितकर मानता है

कोई जीव आत्मा को सामान्यरूप से जाने औ

है

सामान्य है

को नहीं जाने तो गधे के सींग समान है

है

रागवाली पर्याय वह विशेष इसप्रकार दोनों के आश्रय से धर्म होता है

आत्मा की पर्याय में पुण्य-पाप, आस्रव-बंध होता है

होता है

है

होती।

अज्ञानी जीव पुण्य परिणाम करता औ

आस्रवादि के विशेषों सहित स्व-पर की श्रद्धा करना योग्य है

औ

पर्याय, कर्म के खिरजानेरूप पर्याय औ

अजीव के विशेष जानना चाहिये। जीव-अजीव अकेले कुटस्थ नहीं है

पर्यायें होती है

परिणाम होते हैं

ज्ञान प्रधान सम्यग्दर्शन की बात है

जीव ज्ञानस्वभाव सन्मुख झुकता है
 का ज्ञान आता है
 पर बंध के पूर्ण अभाव का ज्ञान होता है
 में से होता है
 स्व-पर को जानने का है

समयसार गाथा 201-202 की टीका में कहा है
 अनात्मा को भी नहीं जानता। स्व रूप से सत्ता (अस्ति) औ
 इन दोनों के द्वारा एक वस्तु का निर्णय होता है
 निश्चय हुआ हो उसको आत्मा औ
 नहीं जानता उसको सम्यग्दर्शन नहीं हो सकता। स्व को जाननेपर पर का औ
 पर्यायों का ज्ञान आ जाता है

आत्मा पर से भिन्न है
 है
 आत्मा पर से पृथक है

तथा तत्त्वों की श्रद्धा किये बिना समस्त जानना कार्यकारी नहीं है
 बंध ज्ञेय है

स्व का चिंतन राग से हटने के लिये है
 को साधना ही प्रयोजन है
 मिटायेगा ? पुण्य, पाप, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा औ
 प्रयोजन भासित नहीं होता; केवल जानने से मानादि ही बढ़ाता है
 पृथक तत्त्व हैं
 मिटाने की श्रद्धा होनी चाहिये। अज्ञानी को वै
 माननेवाला वीतराग का भक्त नहीं, बल्कि विकार का भक्त है

यहाँ कहते हैं
 भासित नहीं होता वह मात्र जानपने से मान ही बढ़ाता है

है

योग्य नहीं है

तात्पर्य यह है

नहीं जाने तो कार्यकारी नहीं है

अब नवतत्त्वों की संतति छोड़कर हमको एक आत्मा प्राप्त होओ-ऐसा समयसार में कहा है

समयसार में नवतत्त्व की परिपाटी छोड़ने को कहा है

अजीव है

शुद्धि निर्जरा है

निर्विकल्प दशा होने के लिये नौ

है

नौ

किया है

परन्तु जिसको नौ

इसको छोड़ने से तो अपने को संसार के अन्य विचार होते हैं

करना।

व्यवहार है

कहा है

नौ

चाहिये। नौ

होता है

का लक्ष्य करे तो। सात अथवा नौ

राग आ जायेगा ऐसा नहीं है

मिथ्यादृष्टि है

इसलिये मिथ्यादृष्टि है

ज्ञान करता है

जाता है

ज्ञान में नौ

परन्तु जिसको नौ

आत्मा हाथ हिला सकता है

का राग छोड़ने का क्या काम है

हैं

विचार किया करता है

श्रद्धा कर! किसी से फेरफार हो सके ऐसा नहीं है

नहीं दे सकता। पुण्य-पाप को वे जै

करना चाहिये।

इसप्रकार स्व-पर के श्रद्धान में व आत्मश्रद्धान में अथवा नौ

तत्त्वों के श्रद्धान की सापेक्षता होती है

....फिर प्रश्न है

श्रद्धान को सम्यक्त्व कहा है

समाधान:- अरहन्त देवादिक के श्रद्धान से कुदेवादिक का श्रद्धान दूर होने के कारण गृहीतमिथ्यात्व का अभाव होता है

सर्वथा सम्यक्त्व का लक्षण यह नहीं है

के धारक मिथ्यादृष्टि के भी ऐसा श्रद्धान होता है

अथवा जै

हो; परन्तु अणुव्रत, महाव्रत हुए बिना देशचारित्र, सकलचारित्र कदाचित् नहीं होता;

इसलिये इन व्रतों को अन्वयरूप कारण जानकर कारण में कार्य का उपचार करके

इनको चारित्र कहा है

हो या न हो; परन्तु अरहन्तादिक का श्रद्धान हुए बिना तत्त्वार्थश्रद्धानरूप सम्यक्त्व

कदाचित् नहीं होता; इसलिये अरहन्तादिक के श्रद्धान को अन्वयरूप कारण जानकर

कारण में कार्य का उपचार करके इस श्रद्धान को सम्यक्त्व कहा है
नाम व्यवहार सम्यक्त्व है

अथवा जिसके तत्त्वार्थश्रद्धान हो, उसके सच्चे अरहन्तादिक के स्वरूप का श्रद्धान होता ही होता है

परन्तु यथावत् स्वरूप की पहिचान सहित श्रद्धान नहीं होता। तथा जिसके सच्चे अरहन्तादिक के स्वरूप का श्रद्धान हो, उसके तत्त्वश्रद्धान होता ही होता है
अरहन्तादिक का स्वरूप पहिचानने से जीव-अजीव-आस्रवादिक की पहिचान होती है

इसप्रकार इनको परस्पर अविनाभावी जानकर कहीं अरहन्तादिक के श्रद्धान को सम्यक्त्व कहा है

प्रश्न:- अरहन्तदेव त्रिकाल ज्ञानी है
इन्द्रों से पूज्य हैं
सम्यग्दर्शन है
होती है
को धर्म मानने को समकित कहा है
किसप्रकार है

उत्तर:- बाह्य लक्षण से अरहन्तदेवादि की पहिचान करना व्यवहार समकित है
विरुद्ध देव-गुरु-धर्म को स्वीकारनेवाले को व्यवहार समकित नहीं है
वाले को व्यवहार समकित नहीं है
समकित कहते हैं
कुदेव-कुगुरु-कुधर्म की श्रद्धा दूर होती है
व्यवहारश्रद्धा सम्यक्त्व का सर्वथा लक्षण नहीं है
श्रावक भी सच्चे देव-शास्त्र गुरु की श्रद्धा को धारता है
यह सम्यक्त्व का सच्चा लक्षण नहीं है
अगृहीत मिथ्यात्व का अभाव नहीं है
मिथ्यात्व तो होता ही है

(गृहीत-अगृहीत) मिथ्यात्व विद्यमान हैं
नहीं होता, इसलिये अरहन्तादिक की श्रद्धा सम्यग्दर्शन का वास्तविक लक्षण नहीं है

इसी बात को न्याय पूर्वक समझाते हैं
करता हो अथवा श्रावक अणुव्रतों का पालन करता हो औ
मुनि को सकलचारित्र औ
नहीं होता। स्वरूप का भान होने के पश्चात श्रावक को अणुव्रत के विकल्प बिना पाँचवाँ
गुणस्थान नहीं होता, मुनि को महाव्रत हुए बिना सकलचारित्र नहीं होता। कोई कहे कि किसी
को केवलज्ञान तो हो गया; परन्तु उसने महाव्रत धारण नहीं किये थे-तो यह बात मिथ्या है
महाव्रत धारण न करने पर जब मुनिपना ही नहीं है
अविनाभावीरूप निमित्त का संबंध बतला रहे हैं
कारण में कार्य का उपचार करके चारित्र कहा है
सकलचारित्र आ जाये ऐसा नहीं हो सकता। चारित्रदशा में पाँच महाव्रत
अन्वयकारण-निमित्तकारण है
चारित्र कहा है

चिदानंद आत्मा के ज्ञानसहित श्रावकपना आता है
ही है
जानकर बारह व्रत के विकल्प में देशचारित्र का उपचार किया है
निर्ग्रन्थमुनि औ
देव-शास्त्र-गुरु की श्रद्धा बिना कभी भी सम्यग्दर्शन नहीं होता। कोई कहता है
मिथ्यादेव-शास्त्र-गुरु की श्रद्धा है
सकता। अंदर में निश्चय समकित हो औ
नहीं हो सकता। जै
सम्यग्दर्शन हो तब सच्चे देव-शास्त्र-गुरु की श्रद्धा के बिना सात तत्त्वों की श्रद्धा नहीं होती
औ
ही है
कारण में कार्य का उपचार किया है

यहाँ उपादान-निमित्त की संधि बताई गई है
सच्चेदेव-शास्त्र-गुरु का राग आये बिना नहीं रहता ।

कोई कहता है
जीव निमित्त को भी नहीं समझता । वस्त्र रखकर मुनिपना माननेवाला मिथ्यादृष्टि है
तो व्यवहार श्रद्धा का भी पता नहीं है

यहाँ सम्यग्दर्शन की बात चलती है
सम्यग्दर्शन कहा है
है

अरहन्तदेवादि की श्रद्धा न हो उसको निश्चय सम्यग्दर्शन नहीं होता । इसप्रकार अरहन्तदेवादि
की श्रद्धा को अन्वयरूप कारण जानकर उसमें सम्यक्त्व का उपचार किया है
सच्चेदेव-शास्त्र-गुरु का विकल्प उत्पन्न होता है
जिसको निश्चय सम्यग्दर्शन हुआ है
का आरोप किया है

अब विशेष बात करते हैं
अरहन्तदेव-निर्ग्रन्थ गुरु औ
शब्द का प्रयोग किया है
देव-निर्ग्रन्थ गुरु औ
सम्प्रदाय के पक्ष से अरहन्तदेवादि की श्रद्धा करे तो यथावत् स्वरूप की पहिचान सहित
श्रद्धान नहीं होता ।

जिनको आत्मा के आश्रय से पूर्ण ज्ञानदशा प्रगट हुई है
के आश्रय से अपूर्ण शुद्धदशा प्रगटना संवर-निर्जरा है
रहित धर्म वह अहिंसा है
के परिणाम राग है

इसप्रकार अरहन्तदेव, निर्ग्रन्थगुरु औ
विद्वज्जन बोधक में कहा है
स्वपर की श्रद्धा को भी लक्षण कहा- तो इनकी एकता किसप्रकार है

उत्तर:- दोनों में नयविवक्षा है
 ऐसे तीन प्रकार हैं
 व्यवहाररत्नत्रय आस्रव है
 औ
 निजरूप है
 निजरूप है

अजीव पर है
 अटकना बंध है

इसप्रकार जीव, संवर, निर्जरा औ
 अर्थात् आदरणीय है
 इसप्रकार सात तत्त्वों में दो तत्त्व कहे। अतः स्व-पर को लक्षण कहो या सात तत्त्वों को लक्षण
 कहो-दोनों लक्षण एक ही अभिप्राय के सूचक है

अब शिष्य पूछता है

सम्यग्दर्शन है
 वचन का मेल किस प्रकार रहेगा ? क्योंकि वहाँ तो नौ
 यहाँ सात की श्रद्धा को सम्यग्दर्शन कहा-ऐसा कै

समाधान:- वहाँ नय विवक्षा से भेद को अत्यन्त गौ
 किया है
 ऊपर कहा था उसमें स्व-पर ऐसे दो लिये थे। उनमें व्यवहाररत्नत्रयादि परिणाम आस्रव-
 बंध है
 मोक्ष को अभेद गिनकर उपादेय कहा है
 है
 अभेद में आ गये औ
 श्रद्धा में सातों तत्त्व आ गये।

स्वामी कार्तिकेय ने देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा को सम्यग्दर्शन कहा है
 किसप्रकार है

सात तत्त्वों में जीव, संवर, निर्जरा, मोक्ष, इन चारों को उपादेय कहा है
 सहित अभेद आत्मा को उपादेय कहा है
 स्वभाव सहित हो वह तत्त्वार्थ है
 मोक्ष है
 सिद्ध हैं
 धारक अरहन्त औ
 तत्त्व की श्रद्धा है
 की श्रद्धावाले को स्वभाव की श्रद्धा है

तथा तत्त्वार्थ में प्रथम जीव है
 स्वभाव सहित अहिंसा धर्म है
 रागादि परिणामों की उत्पत्ति होना हिंसा है
 ज्ञायकरूप टिका रहता है
 उसको अहिंसा धर्म की श्रद्धा हुई। व्यवहाररत्नत्रय के परिणाम रहित जीव की श्रद्धा अहिंसा
 धर्म है
 अहिंसा कहते हैं
 है
 जिसको ऐसे शुद्ध चै
 जिसको अहिंसा धर्म की श्रद्धा है
 शुद्ध चै
 श्रद्धा है

“प्रमत्तयोगात्प्राणव्यपरोपण हिंसा” पंच महाव्रत के परिणाम भी प्रमाद है
 में रागादिभावों की उत्पत्ति होना हिंसा है
 प्रगटी है
 की श्रद्धा होती है

इसप्रकार देव तथा धर्म की बात आ गई है
 जीवतत्त्व में समाहित किया है

संवर-निर्जरा उपादेय तत्त्व है

उपाध्याय औ

औ रु की श्रद्धावाले को संवर-निर्जरा की श्रद्धा है

अजीव, आस्रव, औ

औ

वाक्य है

आस्रवादि तत्त्व हेय है

सर्वज्ञदेव के ज्ञान-दर्शन का उपयोग एक समय (एकसाथ) नहीं है

अथवा देव को फिर से संसार में अवतरित होना पड़ता है

सहित माना है

को नहीं माना है

इसप्रकार आस्रव-बंध को उपादेय माननेवाले ने कुदेव-कुगुरु को माना है

जो कुदेव-कुगुरु-कुधर्म को हेयरूप मानता है

मानता है

मानता है

इसप्रकार सात तत्त्वों में सच्चे अरहन्तादि की श्रद्धा आ जाती है

श्रद्धा का निषेध आ जाता है

प्रश्न:- तुमने सात तत्त्वों की श्रद्धा में अरहन्तादि की श्रद्धा समाहित की; परन्तु स्व-पर की श्रद्धा में अरहन्तादि की श्रद्धा किसप्रकार समाहित है

उत्तर:- शुद्ध चै

है

स्व की श्रद्धा में संवर-निर्जरा-मोक्ष आ जाता है

सिद्ध है

रागरहित परिणतिवाले शुद्ध जीव को उपादेय मानने में सच्चे देव-गुरु औ श्रद्धा आ जाती है

वे हेय है

हैं

श्रद्धा है

है

लोगों ने अहिंसा का स्वरूप सुना नहीं है
मारने अथवा जिलाने का विकल्प उत्पन्न होता है
बंध में अर्थात् हेय तत्त्व में आता है
अहिंसा धर्म है

संवर-निर्जरा का स्वभाव रत्नत्रय है के धारक गुरु हैं
वाला संवर-निर्जरा को पहिचानता है

जिसको सात तत्त्वों की श्रद्धा है
श्रद्धा है
अरहन्तादिक की श्रद्धा आ जाती है

इसप्रकार परस्पर अविनाभावी जानकर कही अरहन्तादिक के श्रद्धान को भी सम्यक्त्व
कहा है

....यहाँ प्रश्न है
उनके सम्यक्त्व पाया जाता है
होता ही होता है

समाधान:- सप्ततत्त्वों के श्रद्धान में अरहन्तादिक का श्रद्धान गर्भित है
तत्त्वश्रद्धान में मोक्षतत्त्व को सर्वोत्कृष्ट मानते है
लक्षण है
इसलिये उनको भी सर्वोत्कृष्ट माना, औ
तथा मोक्ष के कारण संवर-निर्जरा है
संवर-निर्जरा के धारक मुख्यतः मुनि है
माना; वही गुरु का श्रद्धान हुआ। तथा रागादिक रहित भाव का नाम अहिंसा है

को उपादेय मानते है

तत्त्वश्रद्धान में गर्भित अरहन्तदेवादिक का श्रद्धान होता है

इसके तत्त्वार्थश्रद्धान होता है

इसलिये सम्यक्त्व मे देवादिक के श्रद्धान का नियम है

प्रश्न:- नारकादि जीवों के देव-कुदेव का व्यवहार नहीं होने पर भी आत्मा का ज्ञान होता है

उत्तर:- सात तत्त्वों के श्रद्धान में अरहन्तादिक का श्रद्धान गर्भित है

बाह्य में देव का व्यवहार नहीं होता, परन्तु देवादि की निश्चय श्रद्धा है

तत्त्वों की श्रद्धा है

सिद्ध को है

उत्कृष्ट नहीं है

इसलिये जो लक्षण को उत्कृष्ट मानता है

सर्वज्ञ-वीतरागदेव को उत्कृष्ट माना उसने रागी देव को हेय माना है

निर्णय होने पर अरहन्त-सिद्ध का निर्णय होता है

हेयतत्त्व के रूप में जानता है

जिससमय जो पर्याय होनेवाली है

को अरहन्त की श्रद्धा नहीं है

नरक में रहनेवाला सम्यग्दृष्टि जीव अपूर्णदशा को सर्वोत्कृष्ट नहीं मानता, रागादिक

को भला नहीं मानता। वह मोक्ष को सर्वोत्कृष्ट मानता है

उसके संवर-निर्जरा की श्रद्धा होती है

परन्तु मुख्यरूप से उसके धारक मुनिराज हैं

जो संवर-निर्जरा के धारक नहीं हैं

तीन कषाय चौ

विरुद्ध गुरु को नहीं मानता। द्रव्यलिंगी मुनि भी कुगुरु हैं

नहीं है

में मानता है

माननेवाला मुनिराज को मानता है

तथा वह रागरहित अहिंसा धर्म को मानता है

इसप्रकार धर्म की श्रद्धा होती है

इसप्रकार तत्त्वार्थश्रद्धान में अरहंतदेवादि का श्रद्धान भी आ जाता है
निमित्त से सच्चा तत्त्वार्थश्रद्धान होता है
होती है

श्रद्धा का नियम है

की श्रद्धा समाहित की है

....फिर प्रश्न है

गुण पहिचानते है

सच्चा अरहन्तादिक का श्रद्धान हो, उसके तत्त्वश्रद्धान होता ही होता है
सम्भव नहीं है

समाधान: तत्त्वश्रद्धान बिना अरहन्तादिक के छियालीस आदि गुण जानता है
वह पर्यायाश्रित गुण जानता है
सम्भव है

क्योंकि जीव-अजीव जाति पहिचाने बिना अरहन्तादिक के आत्माश्रित गुणों को व
शरीराश्रित गुणों को भिन्न-भिन्न नहीं जानता। यदि जाने तो अपने आत्मा को
परद्रव्य से भिन्न कै

जो जाणदि अरहंतं दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं।

सो जाणदि अप्पाणं मोहो खलु जादि तस्स लयं।।80।।

इसका अर्थ यह है

वह आत्मा को जानता है

इसलिये जिसके जीवादिक तत्त्वों का श्रद्धान नहीं है

भी सच्चा श्रद्धान नहीं है
 माहात्म्य यथार्थ नहीं जानता । लौ
 गुरु का औ
 पराश्रितभाव है
 होनेपर ही जाना जाता है
 तत्त्वश्रद्धान होता ही होता है

इसप्रकार सम्यक्त्व का लक्षण निर्देश किया ।

प्रश्न:- कोई जीव अरहंतदेव को, निर्ग्रन्थगुरु को तथा राग रहित अहिंसाधर्म को मानता है
 श्रद्धा के साथ तत्त्वार्थश्रद्धान अवश्य होता ही है
 सब अरहंतदेव को मानते हैं

उत्तर:- अज्ञानी जीव सच्ची श्रद्धा के बिना अरहंत के छियालीश गुणों को जानता है
 परन्तु आत्मा शुद्ध चै
 नहीं है
 निर्विकारी गुण कै

समवसरण में सर्प औ
 हैं
 तो पुण्य का फल है
 उपदेश का (भाषावर्णारूप युद्गल का) स्वामी होनेवाला तो मिथ्यादृष्टि है
 नहीं करता, आस्रव से धर्म नहीं होता, आस्रव जड़ को नहीं करता, जड़ का कार्य आत्मा नहीं
 करता, इस बात का उसको पता नहीं है

अरहंत के अनंत चतुष्टय आत्माश्रित है
 इत्यादि शरीराश्रित पर्यायें हैं
 आत्मा की पर्याय का तथा शरीराश्रित पर्यायों की भिन्नता का पता नहीं है
 चलाता है

एक क्षेत्र में होने पर भी तथा इच्छा होने पर भी कितनी बार पै
 नहीं बोली जाती, क्योंकि वह स्वतंत्र है
 में इच्छा हो तो उसको निमित्त कहते हैं
 से होती है

जड़ है

है

करे तो भगवान उसमें निमित्त कहलाते हैं
 मंदिर बनाने पर भी ज्ञानी समझता है
 मुझे लाभ नहीं है

कोई कहता है

यह बात मिथ्या है

अपने में शुभभाव होना पुण्य है

जो जीव-अजीव को भिन्न जानता है

पुण्य तो आस्रव है

परिणाम औ

भगवान पर है

मिथ्या अभिनिवेश है

समझता है

परद्रव्य से भिन्न कै

श्री प्रवचनसार (गाथा-80) में कुन्दकुन्दाचार्य भगवान कहते हैं

‘जो जानता अरहन्त को द्रव्यत्व-गुण-पर्याय से।

वह जानता है

जो अरहन्त के द्रव्य-गुण-पर्याय को जानता है

द्रव्य का भाव, उनके गुण का भाव औ

है

- इसप्रकार चै

तथा इन मोक्षादि तत्त्वों के श्रद्धान बिना अरहंतादि का माहात्म्य भी यथार्थ नहीं जानता ।
 उनके भान बिना वह जीव अरहंत को नहीं जानता । मात्र साथ के लौ
 का; तपश्चरणादि से गुरु का औ
 प्रभु विराजते हैं
 का माहात्म्य है
 की श्रद्धा के बिना अरहंत का माहात्म्य नहीं आता । मानस्तंभ को देखकर गौ
 गया -ऐसा माननेवाले को बाहर का माहात्म्य आया है

मानस्तंभादि अजीव पदार्थ हैं
 उनको निमित्त कहा जाता है
 यह बात सत्य है

तथा तपश्चरण से गुरु को पहिचानना भी उचित नहीं है
 में भी वस्त्र नहीं रखते, दिन में एकबार आहार लेते हैं
 गुरु की महिमा करता है
 मूलगुणों का पालन करते हैं

वस्तुतः लोग अरहंत तथा गुरु का लक्षण नहीं जानते । गुरु का लक्षण निर्विकल्प रत्नत्रय
 के परिणाम हैं
 नहीं कर सकता । अभी तो मुनि उद्दिष्ट आहार लेते हैं
 दोनों की भूल है
 चल सकती । जै
 भंग करना महापाप है
 जिसके बाह्य महाव्रतादि खोटे हैं
 निश्चय औ
 पहिचानता है

तथा परजीवों की अहिंसा से धर्म का माहात्म्य जानता है
 सात तत्त्व के भान बिना सच्ची श्रद्धा नहीं होती । लौ

परजीव की अहिंसा-ये सब पराश्रित भाव है
धर्म का स्वरूप आत्माश्रित है
से है

पै

किया यह मान्यता मिथ्यात्व है
है
नहीं होती।

कुदेवादि को माननेवाला आस्रव-बंध को हेय नहीं मानता औ
है
अरहंतदेवादि की श्रद्धा आ जाती है
तत्त्वार्थश्रद्धान अवश्य होता ही है
निर्देश किया।

....यहाँ प्रश्न है

व देव-गुरु- धर्म का श्रद्धान सम्यक्त्व का लक्षण कहा। तथा इन सर्व लक्षणों की
परस्पर एकता भी दिखायी सो जानी; परन्तु अन्य-अन्य प्रकार लक्षण कहने का
प्रयोजन क्या ?

उत्तर:- यह चार लक्षण कहे, उनमें सच्ची दृष्टि से एक लक्षण ग्रहण करने पर
चारों लक्षणों का ग्रहण होता है
अन्य-अन्य प्रकार लक्षण कहे है

जहाँ तत्त्वार्थश्रद्धान लक्षण कहा है
पहिचाने तो यथार्थ वस्तु के स्वरूप का व अपने हित-अहित का श्रद्धान करे तब
मोक्षमार्ग में प्रवर्ते।

तथा जहाँ आपापर का भिन्न श्रद्धान लक्षण कहा है
प्रयोजन जिससे सिद्ध हो उस श्रद्धान को मुख्य लक्षण कहा है
श्रद्धान का प्रयोजन आपापर का भिन्न श्रद्धान करना है

श्रद्धान का प्रयोजन रागादिक छोड़ना है
 परद्रव्य में रागादि न करने का श्रद्धान होता है
 आपापर के भिन्न श्रद्धान से सिद्ध होता जानकर इस लक्षण को कहा है

तथा जहाँ आत्मश्रद्धान लक्षण कहा है
 प्रयोजन इतना ही है
 भी विकल्प कार्यकारी नहीं है
 को मुख्य लक्षण कहा है

तथा जहाँ देव-गुरु-धर्म का श्रद्धान लक्षण कहा है
 प्रधानता की है
 है

की प्रधानता से कुदेवादिक का श्रद्धान छुड़ाकर सुदेवादिक का श्रद्धान कराने के अर्थ
 देव-गुरु-धर्म के श्रद्धान को मुख्य लक्षण कहा है

इसप्रकार भिन्न-भिन्न प्रयोजनों की मुख्यता से भिन्न-भिन्न लक्षण कहे हैं

प्रश्न:- सच्चा तत्त्वार्थश्रद्धान, स्व-पर का श्रद्धान, आत्मश्रद्धान तथा देव-गुरु-धर्म का श्रद्धान सम्यक्त्व का लक्षण कहा, इन सभी लक्षणों में परस्पर एकता दर्शायी; परन्तु इसतरह अन्य-अन्य प्रकार से कहने का प्रयोजन क्या है

उत्तर:- ये चार लक्षण कहे, उनमें सच्ची दृष्टि पूर्वक किसी एक लक्षण का ग्रहण करने पर चारों का ग्रहण होता है

तो सब जान जाता है
 ये लक्षण कहे गये हैं

* जहाँ तत्त्वार्थश्रद्धान लक्षण कहा वहाँ तो यह प्रयोजन है
 पहिचाने तो जीव-अजीव का स्वरूप पहिचाने; आस्रव-बंध को अहितरूप पहिचाने औ संवर-निर्जरा मोक्ष को हितरूप पहिचाने। पुण्य-पाप के परिणाम बुरे हैं
 संवर-निर्जरा हितकर तथा मोक्ष परमहितकर है
 पहिचाने तो श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र में प्रवर्ते। संवर-निर्जरा में प्रवर्तने से मोक्षमार्ग में प्रवर्ते।

अर्थात् जिसको हितकर मानें उसमें प्रवर्ते औ
इसप्रकार सात तत्त्वों की पहिचान में मोक्षमार्गरूप प्रवृत्ति हो औ
को पुण्य-पाप के परिणाम होते अवश्य हैं
हैं

क्रिया का अभिमान मिट जाता है
भेदज्ञान का लाभ होता है
करता ही है

जाननेवाला आस्रव-बंध में सर्वथा रुक जाये-ऐसा नहीं होता; अपितु वह तो आस्रव-बंध को
छोड़ने का प्रयत्न करता है

तात्पर्य यह है
अजीव है
प्रवर्तता है

* तथा स्व-पर की श्रद्धा को सम्यग्दर्शन का लक्षण कहा है
का प्रयोजन तो स्व-पर को भिन्न जानना है
है
मेरे में कुछ नहीं होता औ
का श्रद्धान होने पर पुण्य-पाप के परिणाम करने योग्य नहीं है
योग्य है
आ जाती है

तत्त्वार्थश्रद्धान का हेतु स्व-पर की भिन्नता जानकर स्वरूप स्थिरता करने का है
हूँ औ
निर्जरा औ
आदरने योग्य है
भिन्नता का श्रद्धान होने पर परवस्तु में राग-द्वेष नहीं करने का श्रद्धान होता है
में स्थिरता का प्रयोजन सिद्ध होता है
आ जाती है

तत्त्वार्थश्रद्धान में स्व-पर की भिन्नता करने का प्रयोजन है
 भिन्नता को लक्षण कहा है
 प्रवर्तन करना प्रयोजन है
 सम्यग्दर्शन का लक्षण कहा है

* आत्मश्रद्धान को भी सम्यग्दर्शन का लक्षण कहा है
 वाला है
 कार्यकारी नहीं है
 इसलिये पर के विकल्प की आवश्यकता नहीं है

विषय

परवस्तु का ग्रहण-त्याग आत्मा के मूलस्वरूप में हो तो मिथ्यात्व कायम रहा करे। बाह्य
 वस्तु पर है
 ज्ञान जानता है
 इसके अभाव के बिना स्व में स्थिरता नहीं हो सकती। मैं
 सच्ची श्रद्धा नहीं होती। (चरणानुयोग में) अभक्ष्य वस्तु का ग्रहण नहीं करना ऐसा कहा है
 वह व्यवहार का कथन है
 नहीं है
 अन्य जीव तथा अजीव पदार्थ हैं
 सकता। विपरीत अभिप्राय का त्याग औ
 सच्ची श्रद्धा के भान बिना समाधिमरण नहीं होता। जै
 आता वह शत्रु के सामने युद्ध में खड़ा नहीं रह सकता; इसीतरह जिसको विपरीत अभिप्राय
 को नष्ट करना नहीं आता औ
 असमाधिमरण को मारना नहीं आयेगा औ
 की मृत्यु ही वास्तविक मृत्यु है

यहाँ कहते हैं
 आदि का कुछ भी हो, उसका विकल्प नहीं करना। आत्मश्रद्धा में स्व-पर की भिन्नता सिद्ध
 होती है

आस्रव-बंध गौ

मुख्य लक्षण कहा है

* अब सर्वज्ञदेव-निर्ग्रन्थगुरु औ

प्रधानता की है

हो सकता। तथा सच्चदेव-शास्त्र-गुरु का राग है

नियम नहीं है

द्रव्यलिङ्गी मुनि सच्चदेवादिक की श्रद्धा करता है

इसलिये उसके देवादिक की श्रद्धा निमित्त भी नहीं कहलाती है

उपादेय है

इसप्रकार सर्वज्ञदेव-निर्ग्रन्थमुनि औ

निमित्त है

कहता है

अज्ञानी जीव अपने अज्ञान के कारण तत्त्व की विपरीत श्रद्धा करता है

निमित्त कहलाते है

यहाँ सम्यक्त्व के लक्षण निर्देश की बात चलती है

नाम निर्देश की बात की थी, अब तत्त्वार्थश्रद्धान सम्यग्दर्शन का लक्षण है

रही है

यहाँ कहते हैं

आत्मा को लाभ मनानेवाले अहिंसा धर्म को नहीं मानते। सनातन दिगम्बर जै

अतिरिक्त सभी मार्गों (मतों) में कल्पित तत्त्व कहे गये हैं

सातवें अधिकार में कहा है

द्वारा निरूपण (निर्णय) करना चाहिये। यहाँ सम्यग्दर्शन के लक्षण का निरूपण अथवा निर्देश

किया है

पूर्व में कहा जा चुका है

होता है

फिर ऐसा सम्भव है

औ

लेना; तथा परीक्षा करने में अपना विवेक चाहिये।

यहाँ ग्रंथकार ने सम्यग्दर्शन के चार अलग-अलग लक्षण बताये; परन्तु उनकी परीक्षा का विवेक स्वयं को करना रहा है

यहाँ अरहंत देवादि की श्रद्धारूप लक्षण की बात चलती है

गृहीत मिथ्यात्व का त्याग होता है

उनकी श्रद्धा छोड़नी है

वे कहते हैं

कराने के लिये देव-गुरु-धर्म के श्रद्धान को मुख्य लक्षण कहा है

प्रयोजन की मुख्यता से भिन्न-भिन्न लक्षण कहे गये हैं

* तत्त्वश्रद्धान लक्षण में सात तत्त्वों को पहिचानकर हित, अहित का श्रद्धान करके मोक्षमार्ग में प्रवर्ते यह हेतु है

* स्व-पर की भिन्नता के लक्षण में तत्त्वार्थश्रद्धान का प्रयोजन सिद्ध होता है

* आत्मश्रद्धान लक्षण में आत्मा की श्रद्धा करने पर पर का विकल्प नहीं करना यह प्रयोजन है

* अरहंतादि की श्रद्धा में कुदेवादि की श्रद्धा छोड़ना औ करना-यह लक्षण बाह्य लक्षण की अपेक्षा से कहा गया है

प्रश्न:- इन लक्षणों की परीक्षा करने योग्य ज्ञान का उघाड़ न हो तो क्या करना चाहिये ?

समाधान:- जो बाहर में चतुराई बताता है

आत्मा में उपयोग नहीं लगाता उसको बाहर की रुचि है

के कार्य में परीक्षा करना आता है

उसे स्व में लगाना चाहिये। यदि जीव भलीभांति विचार करे तो सब समझमें आ सकता है

सच्चा ग्रहण करना हो तो सच्ची बात की स्वीकृति रखना चाहिये। अज्ञानी जीव प्रमाद के

पोषण के लिये बचाव करता है
करना चाहिये।

....यहाँ प्रश्न है
अंगीकार करे ?

समाधान:- मिथ्यात्वकर्म के उपशमादि होनेपर विपरीताभिनिवेश का अभाव होता है
तत्त्वार्थों का विचार करता है
ही का स्मरण करता है
नानाप्रकार विचार होते है
तत्त्वविचार करता है
करता है
परस्पर सापेक्षपना है
अंगीकार है

तथा जिसके मिथ्यात्व का उदय है
उसके यह लक्षण आभासमात्र होते है
को मानता है
तत्त्वश्रद्धान होता है
भिन्नपने की बातें करे, चिंतवन करे; परन्तु जै
वस्त्रादिक में परबुद्धि है
होती। तथा आत्मा का जिनवचनानुसार चिंतवन करे; परन्तु प्रतीतिरूप आपका
आपरूप श्रद्धान नहीं करता है
नहीं मानता; परन्तु उनके स्वरूप को यथार्थ पहिचानकर श्रद्धान नहीं करता-
इसप्रकार यह लक्षणाभास मिथ्यादृष्टि के होते है
होता; वहाँ इनके भिन्नपना भी सम्भवित है

तथा इन लक्षणाभासों में इतना विशेष है

फिर तत्त्वों का विचार हो, फिर आपापर का चिंतवन करे, फिर केवल आत्मा का चिंतवन करे- इस अनुक्रम से साधन करे तो परम्परा सच्चे मोक्षमार्ग को पाकर कोई जीव सिद्धपद को भी प्राप्त कर ले। तथा इस अनुक्रम का उल्लंघन करके- जिसके देवादिक की मान्यता का तो कुछ ठिकाना नहीं है

तत्त्वविचारादि में प्रवर्तता है

में भी उपयोग नहीं लगाता, आपापर का भेदविज्ञानी हुआ रहता है

का भी ठीक नहीं करता, औ

की बातें है

जीव अपना भला करना चाहे उसे जब तक सच्चे सम्यग्दर्शन की प्राप्ति न हो, तब तक इनको भी अनुक्रम ही से अंगीकार करना।

वही कहते हैं

मान्यता छोड़कर अरहन्तदेवादिक का श्रद्धान करना; क्योंकि यह श्रद्धान होनेपर गृहीतमिथ्यात्व का तो अभाव होता है

का निमित्त दूर होता है

इसलिये पहले देवादिक का श्रद्धान करना। फिर जिनमत में कहे जीवादिक तत्त्वों का विचार करना, नाम-लक्षणादि सीखना; क्योंकि इस अभ्यास से तत्त्वार्थश्रद्धान की प्राप्ति होती है

क्योंकि इस अभ्यास से भेदविज्ञान होता है

स्वरूप का विचार करता रहे; क्योंकि इस अभ्यास से आत्मानुभव की प्राप्ति होती है

इसप्रकार अनुक्रम से इनको अंगीकार करके फिर इन्हीं में कभी देवादिक के विचार में, कभी तत्त्वविचार में, कभी आपापर के विचार में, कभी आत्मविचार में उपयोग लगाये। ऐसे अभ्यास से दर्शनमोह मन्द होता जाये तब कदाचित् सच्चे सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होती है

प्रबल विपरीत कारण बीच में हो जाये तो सम्यग्दर्शन की प्राप्ति नहीं भी होती; परन्तु मुख्यरूप से बहुत जीवों के तो इस अनुक्रम से कार्यसिद्धि होती है

इनको इस प्रकार अंगीकार करना। जै
मिलाये, पश्चात् बहुत पुरुषों के तो पुत्र की प्राप्ति होती ही है
न हो। इसे तो उपाय करना। उसीप्रकार सम्यक्त्व का अर्थी इन कारणों को मिलाये,
पश्चात् बहुत जीवों के तो सम्यक्त्व की प्राप्ति होती ही है
भी हो। परन्तु इसे तो अपने से बने वह उपाय करना।

इसप्रकार सम्यक्त्व का लक्षणनिर्देश किया।....

प्रश्न:- अब आपने अलग-अलग चार लक्षण कहे, जै
श्रद्धान, आत्मश्रद्धान तथा देव-गुरु-धर्म का श्रद्धान; परन्तु इनमें यह जीव किस लक्षण को
अंगीकार करे?

समाधान:- जहाँ विपरीत अभिप्राय मिटता है
की सापेक्षता से बात की है
में विपरीत मान्यता का अभाव नै
अविनाभावी संबंध है
हो गई; परन्तु कुदेवादि की श्रद्धा नहीं छूटी-तो यह बात मिथ्या है
कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र का आदर नहीं होता।

तथा ज्ञान की विचारणा में कभी मुख्यरूप से सात तत्त्वों को भिन्न-भिन्न विचारे, अथवा
स्व-पर को विचारे अथवा मै
को विचारे। प्रतीति में चारों लक्षण एकसाथ है
विचार में क्रम; परन्तु श्रद्धान में सर्वत्र परस्पर सापेक्षता होती है

सच्चे देवादि की श्रद्धा हो वहाँ तत्त्वार्थश्रद्धान, स्व-पर श्रद्धान तथा आत्मश्रद्धान होना
चाहिये। आत्मा का श्रद्धान हो वहाँ अरहंतादि का, स्व-पर का तथा तत्त्वार्थ का श्रद्धान होना
चाहिये। तत्त्वार्थश्रद्धान हो वहाँ अरहंतादि की, स्व-परकी तथा आत्मा की श्रद्धा होनी चाहिये।
इसप्रकार सर्वत्र अरस-परस (परस्पर) सापेक्षता समझना।

कोई कहे कि सच्चे देव की श्रद्धा का पता है
सत्य नहीं है
कुदेवादि का आदर नहीं छूटा -तो ऐसा कभी नहीं हो सकता।

धर्मीजीव स्व-पर का विचार करे, देव-शास्त्र-गुरु के स्वरूप का विचार करे, आत्मा का विचार करे अथवा तत्त्वार्थों का विचार करे,-इस प्रकार विचारों में क्रम पड़ने पर भी एक विचार के समय अन्य तीन के अभिप्राय की सापेक्षता समझनी चाहिये। चार में विचार अपेक्षा से क्रम पड़ता है

अभिप्राय में चारों लक्षण साथ ही होते हैं

जिसको कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र की श्रद्धा होती है
की, स्व-पर भेदविज्ञान की अथवा अरहंतादिक की-ऐसे चारों में
होती।

जिसको सच्चा तत्त्वार्थश्रद्धान होता है
श्रद्धा कहो, स्व-पर भेदविज्ञान कहो, आत्मश्रद्धान कहो अथवा देव-गुरु-धर्म का श्रद्धान
कहो-यह सब एक ही बात है

वर्तमान में सत्य बात बाहर आई, इसलिये अज्ञानीजन सत्य की नकल करने लगे हैं
वे कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र को मानते हैं
के अतिरिक्त कहीं यह बात नहीं है

कोई दिगम्बर होकर भी कहता है
है

मन-वचन-काय से करना नहीं, कराना नहीं, औ
परिग्रह का त्याग होने पर मुनिपना आता है
होने पर बाह्य में वस्त्र-पात्र रहना संभव नहीं है
अंदर में मुनिपने के अच्छे परिणाम हों-यह संभव नहीं है
इसलिये सच्चे देव-शास्त्र-गुरु के स्वरूप की यथार्थ पहिचान करनी चाहिये।

अज्ञानी के विपरीत अभिप्रायरूप दोष के कारण ये लक्षणाभास मात्र हैं
गुरु को व्यवहार से पहिचानता हो; परन्तु भाव का भासन नहीं है
उनके भाव को नहीं पहिचानता। मैं
भेदज्ञान करे तो पूर्व के विकल्प को व्यवहार कहा जाता है

है

बालक के गले में पाँच हजार का हार हो तो वह पेड़ा मिलने पर उसको दे देता है
 उसको हार में स्वाद नहीं आता औ
 पाँच हजार के हार में बहुत पेड़े आयेंगे इसका उसे पता नहीं है
 के परिणाम में मजा (आनंद) आता है

है

आत्मा स्व है

वस्त्रादि में परबुद्धि है
 करता। शरीर में कोई दर्द होने पर मुझे दर्द हुआ मानता है

है

स्व-पर भेदविज्ञान नहीं है
 जीर्ण होने पर मैं
 संभाल करनी पड़ती है

है

कोई कहता है

है

में इष्टानिष्टपना नहीं है

है

है

भेदविज्ञान नहीं है

अज्ञानी जीव जिन आज्ञानुसार आत्मा का विचार करता है
 हूँ-ऐसी प्रतीति अपने विषय में नहीं करता। इसलिये उसको आत्मश्रद्धान नहीं है

जै

नहीं मानता; परन्तु कुल परम्परा से अथवा सम्प्रदाय के पक्ष से मानता है
 स्वरूप को यथार्थरूप से पहिचानकर श्रद्धा नहीं करता। जो जीव कुदेवादि को मानता है

तो गृहीत मिथ्यादृष्टि है

पर भी उनके यथार्थ स्वरूप को नहीं जाननेवाला भी मिथ्यादृष्टि है

इसप्रकार मिथ्यादृष्टि के लक्षणाभास होते हैं

देव-शास्त्र-गुरु की श्रद्धा व्यवहार से है

तथा चारों की श्रद्धा में कोई एक हो अथवा कोई न हो; परन्तु उनका यथार्थ स्वरूप भासित नहीं होता, इसलिये वह मिथ्यादृष्टि है

इन चार लक्षणाभासों में इतना विशेष है

सच्चे देव-गुरु-धर्म की पहिचान होना चाहिये। जिसके निमित्त झूठे है

होता। अरहंतदेव को अखण्ड ज्ञान-दर्शन उपयोग है

परम औ

को जानते हैं

हैं

नहीं होता। कोई आत्मा की बातें करे; परन्तु कुदेवादिक की श्रद्धा न छूटी हो तो वह मिथ्यात्व को पोषता है

इसलिये सच्चे देव-शास्त्र-गुरु क्या कहते हैं

तत्त्व का विचार करना चाहिये, फिर स्व-पर का चिंतवन। इसप्रकार अनुक्रम से साधन करे तो परम्परा मोक्षमार्ग को प्राप्त होता है

को निमित्त कहा जाता है

सिद्धदशा प्राप्त करता है

उसके तो अभी एक भी मान्यता का ठिकाना नहीं है

कोई कहता है

हलचल होती है

नहीं, यह अनुक्रम नहीं है

मान्यता का ठिकाना नहीं है

क्या स्वरूप है

प्रश्न:- अरहंतादिक तो पर हैं

उत्तर:- वे पर हैं

प्रकाशक है

अरहंतादिक की पहिचान के बिना सच्चे तत्त्वों की पहिचान नहीं होती। अतः देव-गुरु-धर्म का विचार प्रथम होना चाहिये। इन देवादिक के अनुक्रम का उल्लंघन करनेवाले की एक भी बात सत्य नहीं है

यहाँ मोक्षमार्ग के स्वरूप का वर्णन चल रहा है
वर्णन किया गया है

श्रद्धान-ऐसे चार लक्षण कहे गये हैं

जिसको लक्षण का पता न हो ऐसे प्रथम भूमिकावाले मिथ्यादृष्टि जीव को क्या करना चाहिये? उसको सच्चे देव, सच्चे गुरु औ

अष्टपाहुड़ में कहा है
दिव्यशक्ति विकसित हुई वे देव हैं
अभी शुभराग वर्तता है
है

बोधपाहुड़ गाथा-24 में देव का स्वरूप इसप्रकार कहा गया है

“ धर्मार्थ कामरु ज्ञान देवे देवजन उसको कहें ।

जो हो वही दे नीति यह धर्मार्थ कारण प्रव्रज्या ।।

(बोधपाहुड़ गाथा-24 का डॉ. हुकमचंद भारिल्ल कृत पद्यानुवाद)

देव उसको कहते हैं
मोक्ष के कारणरूप ज्ञान -ऐसे चार दे। ज्ञान दे अर्थात् ज्ञान में निमित्त हो, अज्ञानी ज्ञान में निमित्त नहीं होता। साधक को शुभराग अवशेष है
काम, भोग तथा अर्थ मिलते हैं

ज्ञानी जानता है
 द्वारा कथित तत्त्व यह है
 फटकर सर्वज्ञता का जन्म होता है
 है
 पर ज्ञान औ
 उसकी व्यक्ति बाहर से अथवा राग में से नहीं आती। जीव ऐसा निर्णय करता है
 में सर्वज्ञ को निमित्त कहा जाता है

साधक को सर्वज्ञदेव की दिव्यध्वनि सुनने का राग आता है
 इसलिये सर्वज्ञ पुण्य में भी निमित्त है
 समझता है
 निमित्त है

देव कहते हैं
 की प्रतीति कर, आनंदकंद का अनुभव कर तो तुझको आनंद प्रगट होगा। इसप्रकार कहनेवाले
 देव है

अब गुरु की बात करते हैं
 की अभिलाषावाले हैं
 पर की दया का भाव राग है

अरागीदशा को अहिंसा धर्म कहते हैं
 कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र की मान्यता के त्याग बिना कभी भी धर्म नहीं होता है

कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र को मानें औ
 सकता। प्रथम निमित्त का पलटा (बदलाव) होना चाहिये। धर्मीजीव तो लज्जा अथवा भय
 के कारण भी कुदेव-कुगुरु को नमस्कार नहीं करता। श्रीमद्जी ने कहा है
 असत्शास्त्रों को आत्मघाती मानें बिना जीव को कभी स्वरूप का विचार नहीं होता। वे
 आत्मघात के प्रत्यक्ष निमित्त है
 होता। “ज्ञानी पुरुष के प्रगट आत्मस्वरूप को कहनेवाले वचन भी इस कारण से जीव को

स्वरूप विचार करने में बलवान नहीं होते।” कुदेव-कुगुरु को छोड़े बिना “उगे न आत्मविचार” अर्थात् आत्मा का विचार नहीं होता। द्रव्य-गुण-पर्याय स्वतंत्र है ५

इसलिये प्रथम सच्चे देव-गुरु-शास्त्र की पहिचान होनी चाहिये। देखो, यहाँ लक्षणाभास की बात चलती है

पश्चात् तत्त्वों का विचार करे; फिर स्व-पर का विचार करे कि मैं शरीरादि पर है

परम्परा सच्चे मोक्षमार्ग को प्राप्त होता है

अब मोक्षमार्ग पाकर कोई जीव सिद्धदशा को पाता है करता है

नहीं है

आत्मज्ञान की बातें करे तो उसकी एक भी बात सत्य नहीं है

आत्मा को पूर्णपद अथवा पूर्णज्ञान औ पास है

दिया ऐसा कहा जाता है

नहीं है

करे तो ‘गुरु ने आत्मा दिया’ -ऐसा कहा जाता है

सर्वज्ञपद को भूल गया है

अल्पज्ञता दिखती है

पद प्राप्त होना बतलानेवाले देव-गुरु सच्चे नहीं है

इस अनुक्रम का उल्लंघन करनेवाले को देवादिक की मान्यता का कोई ठिकाना नहीं है तथा कोई तीव्र क्षयोपशम के कारण तत्त्व अतत्त्व के विचार में प्रवर्तता है

मानता है

की क्या आवश्यकता है

जिनप्रतिमा आदि निमित्त है

होता; परन्तु वे निमित्त है

कोई जीव ज्ञान के क्षयोपशम के कारण तत्त्व-अतत्त्व का विचार करता है भूल किये बिना नहीं रहता। कारण कि सच्चे देवादिक को मानें बिना सच्चे तत्त्वों की पहिचान नहीं होती। अथवा कोई समझे बिना ध्यान में बै सात तत्त्वों में उपयोग नहीं लगाता, फिर भी अपने को स्व-पर का भेदज्ञान हुआ विचारता है सच्चे देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा के बिना स्व-पर के विचार अथवा आत्मा के विचार का ठिकाना नहीं होता। वह अपने को आत्मज्ञानी मानता है अनंतानुबंधी क्रोध-मान-माया-लोभ के पोषण का उपाय है

इसलिये जो जीव अपना भला करना चाहता है की प्राप्ति न हो तबतक प्रथम देव-गुरु औ का विचार करना चाहिये, फिर स्व-पर का विचार औ चाहिये। वही कहते है

प्रथम तो आज्ञा से, शास्त्र से, पूर्व संस्कार से अथवा परीक्षा द्वारा कुदेवादि की मान्यता छोड़ना चाहिये। वीतरागदेव कहते हैं होगा-ऐसा सुनकर विचार करना चाहिये कि अन्य देव यह बात नहीं कहते। जो व्यवहार करते-करते, पर की दया पालते अथवा दान देते-देते धर्म होना मनाते हैं मनवाया है विचार सुधरते हैं कुदेवादिक की श्रद्धा का त्याग करना चाहिये औ चाहिये। यह श्रद्धा करने से गृहीत मिथ्यात्व का अभाव होता है

जो दिगम्बर सम्प्रदाय में जन्मने पर भी बाह्य स्वरूप से देव-गुरु-शास्त्र को नहीं पहिचानता वह भी गृहीत मिथ्यादृष्टि है

कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र मोक्षमार्ग में विघ्नरूप है ने विपरीत नहीं मनवाया है पहिचान होने पर कुदेवादिक का निमित्त दूर होता है देवादिक का निमित्त मिलता है है

जीव अनादिप्रवाहरूप से भूल तो करता ही आया है
 प्रतिसमय करता है
 अभाव होता है
 सुल्टा पुरुषार्थ जीव स्वयं करता है
 भी नहीं है

प्रथम देवादि की पहिचान होना चाहिये। उन देवादि ने कहा कि तेरे में चै
 है
 के मत में कथित जीवादि सात तत्त्वों का विचार करना चाहिये। उनके नाम-लक्षणादि सीखना
 चाहिये। कारण कि इस अभ्यास से तत्त्वार्थश्रद्धान की प्राप्ति होती है
 अखण्ड ज्ञायक चिन्मात्र अनादि-अनंत है
 तरफ लक्ष्य जाता है
 भेदविज्ञान होता है
 चाहिये।

यह आत्मा ज्ञानस्वरूपी वस्तु है
 इसलिये कहते हैं
 से आत्मानुभव की प्राप्ति होती है

यहाँ मोक्षमार्ग में सम्यग्दर्शन अंग की बात चलती है
 व चारित्र नहीं होता। आत्मा के वास्तविक भान बिना ग्यारह अंग का ज्ञान भी कार्यकारी नहीं
 है

- श्रीमद् राजचन्द्रजी ने व्याख्यानसार में लिखा कि-
- * आत्मा को स्वभाव में धारण करे वह धर्म है
 - * आत्मा का स्वभाव धर्म है
 - * जो स्वभाव में से परभाव में नहीं जाने देता वह धर्म है
 - * परभाव द्वारा आत्मा को दुर्गति में जाना पड़ता है
 स्वभाव में रखता है

- * सम्यक्श्रद्धान-ज्ञान औ
- * सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन औ हैं
- * परद्रव्य का श्रद्धान-ज्ञान औ
- * जो संसार परिभ्रमण से छुड़ाकर उत्तमसुख में धारण करता है
- * आप्त अर्थात् सब पदार्थों को जानकर उसके स्वरूप का सत्यार्थ प्रगट करनेवाला।
- * आगम अर्थात् आप्तकथित पदार्थ की शब्द द्वारा रचनारूप शास्त्र।
- * आप्तप्ररूपित शास्त्रानुसार आचरण करनेवाला, आप्त प्रदर्शित मार्ग में चलता है सद्गुरु है
- * सम्यग्दर्शन अर्थात् सत्य आप्त, शास्त्र औ
- * सम्यग्दर्शन तीन मूढता से रहित, निःशंक आदि आठ अंग सहित, आठ मद औ अनायतन से रहित है
- * सात तत्त्व अथवा नव पदार्थ के श्रद्धान को शास्त्र में सम्यग्दर्शन कहा है शास्त्र के उपदेश के बिना सात तत्त्व का श्रद्धान किसतरह होगा ? निर्दोष आप्त के बिना सत्यार्थ आगम किसतरह प्रगट होगा ? इसलिये सम्यग्दर्शन क मूलकारण सत्यार्थ आप्त ही है
- * आप्त पुरुष क्षुधा, तृषादि अठारह दोषों से रहित होता है
- * धर्म का मूल आप्त भगवान है
- * आप्त भगवान निर्दोष सर्वज्ञ औ धर्म का मूल आप्त भगवान है मिलता। सर्वज्ञ भगवान क्षुधा, तृषादि रहित हैं गृहीत मिथ्यात्व के त्याग में आप्त पुरुष निमित्त है चाहिये।

प्रथम देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा, फिर सात तत्त्वों की श्रद्धा, स्व-पर की श्रद्धा औ आत्मश्रद्धा यह अनुक्रम है

उपयोग लगाना। प्रथम देव-गुरु-शास्त्र की प्रतीति होना चाहिये। इसप्रकार अनुक्रम से लक्षणाभासों को अंगीकार करते हैं

यदि जीव ऊपर कहे अनुसार वास्तविक प्रयत्न करे औ
नहीं लगे तो सम्यग्दर्शन हो जाता है
है

भक्ति, पर का कल्याण करने की प्रवृत्ति आदि में रुक जाये, अर्थात् ऐसा विपरीत कारण बीच
में आ जाये तो उसको सम्यग्दर्शन की प्राप्ति नहीं भी होती।

अभी तो अनेक जीवों को उपादान-निमित्त की स्वतंत्रता का भी पता नहीं है
निमित्त होता हूँ-ऐसा मानकर जीव भ्रान्ति का सेवन कर रहे हैं
अन्य कार्य करने में रुक जाते हैं
अतः उनको सम्यग्दर्शन नहीं होता।

जो वास्तविक रीति से पुरुषार्थ करता है
प्रवचनसार गाथा-80 वीं में कहा है
जानकर स्वसन्मुख झुकता है
दिया है

जिसका कारण पूरा होता है
जाता है

चारित्र धर्म है
गाथा-2) जै

यहाँ परपदार्थ को मिलाने की बात नहीं है
रहते। तत्पश्चात् सात तत्वों का विचार करे, स्व-पर का विचार करे औ
करे तो बहुत जीवों को सम्यग्दर्शन होता है
चारों लक्षणाभास है
से पकड़े तो सम्यग्दर्शन अवश्य होता है

यदि जीव सम्यग्दर्शन प्रगट करता है
है

अवश्य सम्यग्दर्शन होता है

जीव लहे केवलज्ञान रे..." मात्र इस पद को रटने में अटक जाये परन्तु आत्मस्वरूप को नहीं जाने तो धर्म नहीं होता। इसलिये जिससे कार्य बने वही उपाय करना। स्वभाव के आश्रय बिना सम्यग्दर्शन नहीं होता। भेद औ

इसप्रकार सम्यक्त्व का लक्षण निर्देश किया।

....यहाँ प्रश्न है

तत्त्वार्थश्रद्धान लक्षण को मुख्य किया सो कारण क्या?

समाधान:- तुच्छबुद्धियों को अन्य लक्षण में प्रयोजन प्रगट भासित नहीं होता व भ्रम उत्पन्न होता है

होता है

बतलाते है

देव-गुरु-धर्म के श्रद्धान में तुच्छबुद्धियों का यह भासित हो कि अरहन्तदेवादिक को मानना, औ

बन्ध-मोक्ष के कारण-कार्य का स्वरूप भासित न हो, तब मोक्षमार्गप्रयोजन की सिद्धि न हो; व जीवादिक का श्रद्धान हुए बिना इसी श्रद्धान में सन्तुष्ट होकर अपने को सम्यक्त्वी माने; एक कुदेवादिक से द्वेष तो रखे, अन्य रागादि छोड़ने का उद्यम न करे; -ऐसा भ्रम उत्पन्न हो।

तथा आपापर के श्रद्धान में तुच्छबुद्धियों को यह भासित हो कि आपापर का ही जानना कार्यकारी है

भासित न हो, तब मोक्षमार्ग प्रयोजन की सिद्धि न हो; व आस्रवादिक का श्रद्धान हुए बिना इतना ही जानने में सन्तुष्ट होकर अपने को सम्यक्त्वी माने, स्वच्छन्द होकर रागादि छोड़ने का उद्यम न करे;- ऐसा भ्रम उत्पन्न हो।

तथा आत्मश्रद्धान में तुच्छबुद्धियों को यह भासित हो कि आत्मा ही का विचार कार्यकारी है

आस्रवादिक का स्वरूप भासित न हो, तब मोक्षमार्ग प्रयोजन को सिद्धि न हो; व जीवादिक के विशेष व आस्रवादिक के स्वरूप का श्रद्धान हुए बिना इतने ही विचार से अपने को सम्यक्त्वी माने, स्वच्छन्द होकर रागादि छोड़ने का उद्यम न करे। -इसके भी ऐसा भ्रम उत्पन्न होता है

ऐसा जानकर इन लक्षणों को मुख्य नहीं किया।

तथा तत्त्वार्थश्रद्धान लक्षण में जीव-अजीवादिक का व आस्रवादिक का श्रद्धान होता है
की सिद्धि होती है

नहीं होता। आस्रवादिक का श्रद्धान होने से रागादि छोड़कर मोक्ष का उद्यम रखता है इसके भ्रम उत्पन्न नहीं होता। इसलिये तत्त्वार्थश्रद्धान लक्षण को मुख्य किया है

अथवा तत्त्वार्थश्रद्धान लक्षण में तो देवादिक का श्रद्धान व आपापर का श्रद्धान व आत्मश्रद्धान गर्भित होता है

अन्य लक्षण में तत्त्वार्थश्रद्धान का गर्भितपना विशेष बुद्धिमान हों उन्हीं को भासित होता है
मुख किया है

अथवा मिथ्यादृष्टि के आभासमात्र यह हों; वहाँ तत्त्वार्थों का विचार तो शीघ्रता से विपरीताभिनिवेश दूर करने को कारण होता है
व विपरीताभिनिवेश के भी कारण हो जायें।

इसलिये यहाँ सर्वप्रकार प्रसिद्ध जानकर विपरीताभिनिवेश रहित जीवादि तत्त्वार्थों का श्रद्धान सो ही सम्यक्त्व का लक्षण है
निर्देश का निरूपण किया।

ऐसा लक्षण जिस आत्मा के स्वभाव में पाया जाता है

प्रश्न:- सम्यक्त्व के लक्षण तो अनेक प्रकार के कहे हैं सात तत्त्वों की श्रद्धा, स्व-पर की श्रद्धा औ को ही मुख्य क्यों किया ?

उत्तर:- तुच्छबुद्धिवान को अन्य लक्षणों में उसका प्रयोजन प्रगट भासित नहीं होता अथवा भ्रम उत्पन्न होता है को स्वयं की योग्यता के कारण भ्रम उत्पन्न हो जाता है है स्वभाव अविकारी है जाति अपेक्षा से एक कहलाते हैं के साथ कहीं मेल नहीं है

अकेले आत्मा की बात करने से तुच्छ बुद्धिवान नहीं समझता है है तत्त्व है कहने से भ्रम उत्पन्न होता है निर्जरा, मोक्ष, उपादेय है

तुच्छ बुद्धिवान को देव-शास्त्र-गुरु की श्रद्धा में भी प्रयोजन प्रगट भासित नहीं होता। अरहंत को निर्दोष, सर्वज्ञ औ निर्दोष कहे तो पत्थरादि परमाणु को भी क्षुधा, तृषादि नहीं होने से वे भी निर्दोष है अकेला निर्दोष लक्षण योग्य नहीं है

तथा अकेले सर्वज्ञ कहे तो सिद्ध भगवान भी सर्वज्ञ है हैं भगवान के वाणी है है

इसप्रकार देव-शास्त्र-गुरु को मानने पर भी तत्त्वार्थश्रद्धानरूप लक्षण के बिना मोक्षमार्ग रूप प्रयोजन की सिद्धि नहीं होती। कोई जीवादि का श्रद्धान हुए बिना मात्र इसी श्रद्धान में

संतुष्ट होकर अपने को सम्यग्दृष्टि मानता है

है

को हेय मानता है

नहीं कर सकता। तथा संवर, निर्जरा, मोक्ष को उपादेय मानें बिना उसरूप प्रवर्तन नहीं होता।

इसलिये अकेले अरहंतादिक के श्रद्धान से तुच्छ बुद्धिवान को यथार्थता भासित नहीं होती।

अरहंतादिक की श्रद्धा आदि तीन लक्षणों में सात तत्त्वों की श्रद्धा गर्भित है

भासित नहीं होती; परन्तु तत्त्वार्थश्रद्धान लक्षण में तीनों लक्षण प्रगट भासित होते हैं

उसको मुख्य कहा है

तथा स्व-पर श्रद्धान को सम्यग्दर्शन का लक्षण कहा है

मोक्ष आ जाते हैं

इसप्रकार स्व-पर में गर्भितरूप से सात तत्त्व आ जाते हैं

भासित नहीं होते। वह आस्रव-बंध को हेय नहीं मानता, इसलिये स्वभाव सन्मुख नहीं झुकता;

इसलिये संवर, निर्जरा प्रगट नहीं होते औ

अथवा पुण्य-पाप की श्रद्धा हुए बिना मात्र स्व-पर को जानने में संतुष्ट होकर, अपने

को सम्यग्दृष्टि मानकर स्वच्छन्दी होता है

सात तत्त्वों को जाने बिना मोक्षमार्ग के प्रयोजन की सिद्धि नहीं होती।

पंचाध्यायीकार ने स्वानुभूति को सम्यग्दर्शन का लक्षण कहा है

संबंध से कहा है

पर्याय है

अनुभूति को सम्यग्दर्शन का लक्षण कहा है

दूसरे गुण को पहिचानना व्यवहार है

समयसार में कहा है

ही है

आत्मा वह शुद्ध आत्मा है

कह दिया है

मात्र स्व-पर की श्रद्धा में तुच्छ बुद्धिवान को प्रयोजन की सिद्धि नहीं होती। उसको भासता है

आस्रवादि का स्वरूप भासित नहीं होने से मोक्षरूप प्रयोजन की सिद्धि नहीं होती।

‘दुःख मिटाकर सुख करना है

बंध आ गये, वे हेय हैं

आये औ

प्रगट करने के प्रयोजन में सातों तत्त्व आ जाते हैं

तत्त्वार्थश्रद्धान में प्रयोजन प्रगट भासित होता है

इसलिये तत्त्वार्थश्रद्धान को मुख्य कहा है

आत्मा तीनों काल निवृत्त है

है

हो जाती है

जीव, संवर, निर्जरा, मोक्ष स्व है

जाने बिना औ

होता। इसप्रकार अकेले स्व-पर की श्रद्धा में तुच्छ बुद्धिवान को भ्रम उत्पन्न होता है मोक्षमार्ग के प्रयोजन की सिद्धि नहीं होती; इसलिये उसको मुख्य लक्षण नहीं कहा है

अब आत्मश्रद्धान को मुख्य क्यों नहीं कहा-इसका स्पष्टीकरण करते हैं

बुद्धिवान को उसमें प्रयोजन प्रगट भासित नहीं होता। आत्मा कहने पर अन्य अनात्मा है

अनंतजीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश औ

परन्तु तुच्छबुद्धिवान को वह प्रगट भासित नहीं होता।

कोई कहता है

कोई कहता है

मंत्र जपनेवाले को परम्परा नै

जप कै

करते हैं

प्रमाण बिना सम्यग्दर्शन के नहीं होता।

तुच्छ बुद्धिवान को अकेले आत्मश्रद्धान लक्षण में भ्रम उत्पन्न होता है
 गति, जाति, बादरपना, सूक्ष्मपना, इत्यादि है
 पर्याय इत्यादि भेद हैं
 की पर्याय है
 प्रकार पुद्गल के विशेष जानना चाहिये। परद्रव्य के ग्रहण-त्याग की बात नहीं है
 सम्यक्त्वी को माँसादि भक्षण का भाव नहीं होता औ
 विवेक वर्तता है
 आत्मा की श्रद्धा में भ्रम उत्पन्न होता है

सम्यग्दर्शन तत्त्वार्थश्रद्धान लक्षण से पहिचाना जा सकता है
 बुद्धिवान को भी देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा आदि लक्षण भासित होते हैं
 तथा स्व-पर श्रद्धान में प्रयोजन प्रगट भासित नहीं होता। इसकारण इनको मुख्य लक्षण नहीं
 कहा है

आत्मश्रद्धान को समकित कहने पर भी तुच्छ बुद्धिवान को ऐसा लगता है
 मात्र आत्मा का विचार करना है
 के गति, जाति, पंचेन्द्रियपना, पुरुषवेदादि भेदों को नहीं पहिचाने तो जीव की पहिचान नहीं
 होती। शरीर, दाल, भात आदि में परमाणु की जाति एक है
 है
 है
 समयसार पढ़कर आत्मा की बातें करता है
 करता तो वह निश्चयाभासी है
 पर्याय (भी) स्वतंत्र है
 लेने का राग मुनिराज को नहीं होता। इसप्रकार जीव-अजीव के विशेष नहीं जाने तो सम्यग्दर्शन
 नही होता। अजीव पर है
 जाने बिना माने कि हमको आत्मा का ज्ञान हो गया है
 से जानना चाहिये। इसलिये तत्त्वार्थश्रद्धान को मुख्य लक्षण कहा है

शुभ उपयोग भी आदरणीय नहीं है
 होती है
 है
 अनादरणीय मानता है

प्रश्न:-शुभभाव करना तो पड़ता है

उत्तर:-नहीं, शुभभाव उसके कालक्रम में आता है
 से बचने के लिये शुभ परिणाम आता है
 शुभभाव लाया; तो क्या क्रम बदल जाता होगा, नहीं, अशुभ या शुभ क्रमसर है
 न हो वहाँ तक शुभराग हेयबुद्धि से आता है

आश्रव हेय है
 जीव स्वच्छन्दी होगा। परद्रव्य से बंध नहीं है
 तो कहते हैं
 आस्रव है
 करनेवाला स्वच्छन्दी है
 आत्मा की श्रद्धा में स्वच्छंदता होती है

ऐसा भ्रम होता जानकर देव-गुरु-धर्म के श्रद्धान को, स्व-पर भेदविज्ञान के श्रद्धान को
 तथा आत्मश्रद्धान लक्षण को मुख्य नहीं किया है
 इस लक्षण में जीव के सामान्य स्वभाव को, अजीव के सामान्य स्वभाव को तथा जीव-अजीव
 के विशेष स्वभाव को पहिचानकर; जीव सामान्य स्वरूप से शुद्ध है
 बादरपना आदि विकार की योग्यता मेरे स्वयं के कारण है
 विशेष को जाना कहलाता है

तत्त्वार्थश्रद्धान में ये (तीनों)लक्षण तुच्छ बुद्धिवान को भासित होते हैं
 लक्षणों में यद्यपि तत्त्वों की श्रद्धा गर्भित है
 बुद्धिवान को ख्याल में आता है

अब कहते हैं

जानेवाला दिगम्बर मुनि अट्ठाईस मूलगुणों का पालन करता है
स्वभाव सन्मुख होकर तत्त्वार्थश्रद्धान नहीं करता- इसकारण उसकी श्रद्धा आभास में जाती है

वहाँ तत्त्वार्थ का विचार तो विपरीत अभिप्राय को दूर करने में शीघ्र कारणरूप होता है
परन्तु अन्य लक्षण शीघ्र कारणरूप नहीं होते अथवा विपरीत अभिनिवेश के कारण हो जाते हैं

“ धींगधणी माथे कियो रे, कौ

विमलजिन दीठा लोचण आज ।।

हे नाथ अथवा गुरु ! हमने मजबूत स्वामी धारण किया है
कहकर पुरुषार्थ नहीं करे तो कोई गुरु अथवा भगवान तिरा देते नहीं हैं
कहना समझे तो उनको निमित्त कहा जाता है
मै

भगवान के कथन का आशय समझे तभी भगवान को निमित्त कहा जाता है

मिथ्यादृष्टि जीव तत्त्व के भान बिना अकेली देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा करे तो विपरीत
अभिप्राय होता है

ऐसा मानकर भ्रम का सेवन करता है
देंगे-यह मान्यता भ्रम है

कितने ही जीव सुधारस के नाम से स्वच्छंदता में चढ़ गये हैं
बुद्धिवान को विपरीत अभिनिवेश के कारण होते हैं
होते । इसलिये यहाँ सर्वप्रकार से प्रसिद्ध जानकर विपरीत अभिप्राय से रहित जीवादि तत्त्वार्थ
का श्रद्धानरूप सम्यक्त्व का लक्षण निर्देश किया है
भलीभांति सुन लेना-परन्तु उनकी परीक्षा स्वयं को करनी पड़ेगी, कोई अन्य करा नहीं देगा ।

इसप्रकार जिस आत्मा के तत्त्वार्थश्रद्धान लक्षण होता है
चाहिये ।

सम्यक्त्व के भेद औ

....अब, इस सम्यक्त्व के भेद बतलाते है

वहाँ प्रथम निश्चय-व्यवहार का भेद बतलाते है

आत्मा का परिणाम वह तो निश्चयसम्यक्त्व है
स्वरूप है

कारणभूत श्रद्धान सो व्यवहारसम्यक्त्व है
है

वहाँ सम्यग्दृष्टि जीव के देव-गुरु-धर्मादिक का सच्चा श्रद्धान है
से इसके श्रद्धान में विपरीताभिनिवेश का अभाव है
श्रद्धान सो तो निश्चयसम्यक्त्व है
व्यवहारसम्यक्त्व है

इसप्रकार एक ही काल में दोनों सम्यक्त्व पाये जाते है

तथा मिथ्यादृष्टि जीव के देव-गुरु-धर्मादिक का श्रद्धान आभासमात्र होता है
औ

निश्चयसम्यक्त्व तो है

देव-गुरु-धर्मादिक का श्रद्धान है

नहीं हुआ। कारण हुए बिना उपचार सम्भव नहीं है

व्यवहारसम्यक्त्व भी इसके सम्भव नहीं है

अथवा इसके देव-गुरु-धर्मादिक का श्रद्धान नियमरूप होता है
विपरीताभिनिवेश रहित श्रद्धान को परम्परा कारणभूत है
नहीं है

इसलिये मुख्यरूप परम्परा कारण अपेक्षा मिथ्यादृष्टि के भी व्यवहारसम्यक्त्व कहा
जाता है

अब सम्यक्त्व के भेद दर्शाते हैं

विपरीत अभिनिवेश रहित आत्मपरिणाम निश्चय सम्यक्त्व है
गुण नहीं। गुण त्रिकाल होता है
है

सम्यक्त्व गुण होता तो सभी जीवों के सम्पूर्ण क्षेत्र औ
मिथ्यादृष्टि जीव को सम्यग्दर्शन नहीं है
श्रद्धा गुण का विशेष कार्य है
अनादि-अनंत है
अभिनिवेश रहित आत्मपरिणाम निश्चय सम्यक्त्व है

वास्तव में समकित तो एक ही प्रकार का है
की श्रद्धा, विपरीत अभिनिवेशरूप आत्मपरिणाम निश्चय सम्यक्त्व है
निश्चय है

है
में सात आ जाते हैं
जीव कहा है
में नहीं है
के भेदविज्ञान में भी सातों आ जाते हैं
आस्रव, बंध आते हैं
आ जाते हैं
कहनेवाले आस्रव-बंध के धारक हैं
जाते हैं

यहाँ सत्यार्थ का नाम ही निश्चय है
कारणभूत व्यवहार समकित है
निर्ग्रन्थ गुरु औ

इसप्रकार निश्चय तत्वश्रद्धा प्रगट करे वहाँ सच्चे देव-गुरु-धर्म की श्रद्धारूप व्यवहार
होता है

होता; इसीतरह निश्चय स्वभाव की गति हो अर्थात् सम्यग्दर्शनरूप धर्म का परिणमन करे तब सच्चे देवादिक, जो कि धर्म के कहनेवाले हैं कुदेवादिक की श्रद्धा का निमित्त नहीं होता। अनेकांत को मिटाकर एकांत कहनेवाले तथा आस्रव औ

जो निमित्त से कार्य मानता है
होता ऐसा माननेवाला निश्चयाभासी है
निमित्त होता है

यहाँ कारण में कार्य का उपचार किया है
निश्चय निश्चय रूप से है
निश्चयरूप से नहीं। उपादान उपादानरूप से है
से है
सम्यग्दृष्टि जीव को होती है
शास्त्र नहीं होने पर भी शास्त्रपना मनानेवाले खोटे निमित्त हैं
नहीं होता। जहाँतक कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र का उत्साह, भावना औ
वहाँतक अनंतानुबंधी कषाय है
भावना नहीं आती। जै
इसीप्रकार धर्मी जीव कुदेवादिक का गुणगान नहीं करता, वह तो सुदेवादिक को मानता है
इसलिये उनके निमित्त से सम्यग्दर्शन होता है
सुदेवादिक सम्यग्दर्शन करा देते हैं
लिये किया गया है

यहाँ विपरीताभिनिवेश रहित श्रद्धान तो निश्चय सम्यक्त्व है
श्रद्धान व्यवहार सम्यक्त्व है
सच्चे देवादिक की श्रद्धा की औ
कारण निश्चय सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ ऐसा नहीं है
करने पर) सुदेवादिक की श्रद्धा के परिणाम वर्तते हैं

निमित्त औ
 उससमय सच्चे देव-गुरु-शास्त्र का विकल्प होता है
 निमित्त है
 प्रगट करे तब देवादि के राग को निमित्त कहा जाता है
 निमित्त नहीं कहलाता ।

प्रश्न:- हमे तो निमित्त का ज्ञान नहीं करना है

उत्तर:-जिसको पर का ज्ञान नहीं करना है
 कि ज्ञान का स्वभाव स्व-परप्रकाशक है
 निषेध करता है
 तथा निमित्त को यथार्थ रूप से जान लेता है

पहले कहा जा चुका है
 श्रद्धान होता है
 चिंतन-इसप्रकार यदि अनुक्रम से साधन करता है
 कोई जीव सिद्धपद को पाता है
 मान्यता का भी ठिकाना नहीं है

अभी तो लोग सत्य में असत्य को मिलाकर गड़बड़ करते है
 उत्साह नहीं लाता, आदर नहीं करता, प्रशंसा नहीं करता, उसको देवादिक की श्रद्धा का,
 तत्त्वार्थश्रद्धान का, स्व-पर श्रद्धान का ठिकाना नहीं है

इसलिए पूर्व में कहा है
 मान्यता छोड़कर अरहंत देवादिक का श्रद्धान करना; क्योंकि यह श्रद्धान होने पर गृहीत
 मिथ्यात्व का तो अभाव होता है
 होता है
 का श्रद्धान करना । फिर जिनमत में कहे जीवादिक तत्त्वों का विचार करना, नाम-लक्षणादि
 सीखना, क्योंकि इस अभ्यास से तत्त्वार्थश्रद्धान की प्राप्ति होती है

सम्यग्दृष्टि जीव को देव-गुरु-धर्म का सच्चा श्रद्धान है
 सम्यग्दर्शन प्राप्त हुआ कहा जाता है
 हुआ है
 माननेवाला भी बात को नहीं समझा है
 सम्यक्त्व है
 एक ही काल में होते हैं

जहाँ तक निमित्त का पलटा (बदलाव) न हो वहाँ तक उपादान का पलटा नहीं होता औ
 निमित्त का पलटा हुआ इसलिये उपादान पलट जाता है

प्रश्न:- पुरुषार्थ एक का करना या दो का ?

उत्तर:- जै

है
 है
 जै

व्यवहार समकित होता है

यहाँ तो लक्षणाभास का क्रम समझाना था; परन्तु समकित प्रगट करे तब देव-गुरु-
 धर्म की श्रद्धा को निमित्त कहते है
 सहायक (निमित्त) नहीं कहलाती ।

जीव स्वभाव को पकड़ता है
 निमित्त कहते है
 होता है
 सात तत्त्वों के कहनेवाले हैं
 को सुननेवाले में स्वभाव सन्मुख होने की योग्यता नहीं है
 उसको राग रहित स्वभाव का विवेक नहीं हो सकता ।

अब मिथ्यादृष्टि की बात करते है
 विपरीत अभिनिवेश का अभाव नहीं है
 इसलिये उसके निश्चय अथवा व्यवहार दोनों मिथ्या है

पूर्व में कहा जा चुका है
 न हो; परन्तु अरहंतादिक का श्रद्धान हुए बिना तत्त्वार्थश्रद्धान रूप सम्यक्त्व कभी नहीं होता।
 इसलिये अरहंतादिक के श्रद्धान को अन्वयरूप कारण जानकर कारण में कार्य का उपचार
 करके इस श्रद्धान को सम्यक्त्व का लक्षण कहा है
 सम्यक्त्व है

जीव तत्त्वार्थ श्रद्धा करे तो सच्चे देव-गुरु की श्रद्धा को निमित्त कहते है
 जीव को सच्ची श्रद्धा नहीं होती, इसलिये उसके उपचार लागू नहीं होता। विपरीत अभिनिवेश
 के परिणाम छोड़ने पर ही निमित्त कहलाता है
 जाये-ऐसा भी नहीं होता। राग से धर्म मानना विपरीत अभिनिवेश है
 तो तीव्र विपरीत अभिनिवेश है
 है
 कहते हैं
 हो सकता।

यहाँ मिथ्या देव-गुरु-धर्म को मानने की बात नहीं ली है
 धर्म में कथित देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा वर्तती है
 है
 अपेक्षा से उसको व्यवहार समकित संभवित नहीं है
 साक्षात् कारण कहलाता है

अथवा किसी मिथ्यादृष्टि जीव को देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा नियमरूप होती है
 विपरीत अभिनिवेश दूर करनेवाला है
 सच्चे देवादिक कहते है
 का आश्रय करे तो वह परम्परा कारण कहलाता है
 निमित्तरूप कारण कहलाते है
 मुख्यरूप कारण है
 का उपचार संभवता है
 व्यवहार समकित कहते हैं

मिथ्यादृष्टि जीव के विपरीत अभिनिवेश का अभाव नहीं है
 देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा करता है
 के लक्ष्य से विपरीत अभिनिवेश का अभाव करता है
 कहलाते हैं

यहाँ कहा है
 टालनेवाला हो उसके लिये परम्परा कारण कहते हैं
 मिथ्यात्व है
 गृहीत मिथ्यात्वरूपी पाप है
 करनेवाले के अगृहीत मिथ्यात्वरूपी पाप तत्त्व है
 परिणाम होते हैं

कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र का आदर करनेवाला अगृहीत मिथ्यादृष्टि होने के उपरांत
 गृहीत मिथ्यात्व की पुष्टि करता है

....यहाँ प्रश्न है

आत्मा के श्रद्धान को निश्चयसम्यक्त्व कहा है

समाधान:- देव-गुरु-धर्म के श्रद्धान में तो प्रवृत्ति की मुख्यता है
 में अरहन्तादिक को देवादिक माने औ
 जाता है
 तत्त्वों का विचार करे, उसे तत्त्वश्रद्धानी कहते है
 सो यह दोनो किसी जीव को सम्यक्त्व के कारण तो होते है
 मिथ्यादृष्टि के भी सम्भव है

तथा आपापर के श्रद्धान में व आत्मश्रद्धान में विपरीताभिनिवेशरहितपने की
 मुख्यता है
 मुख्यरूप से विपरीताभिनिवेश नहीं होता है
 को सम्यग्दृष्टि कहते है
 सम्यग्दृष्टि के ही पाया जाता है

ऐसा कथन मुख्यताकी अपेक्षा है
 मिथ्यादृष्टि के होते है
 नियम बिना परम्परा कारण है
 इसलिये इनको व्यवहाररूप कहते है
 श्रद्धान हुआ सो निश्चयसम्यक्त्व है

प्रश्न:- किन्ही शास्त्रों में सच्चे देव-गुरु-धर्म के श्रद्धान को अथवा तत्त्वश्रद्धान को व्यवहार सम्यक्त्व कहा है
 समकित कहा है

उत्तर:- सच्चे देव अरहंत औ
 है
 गुणस्थान से आगे नहीं जा सकती। मल्लिनाथ भगवान पुरुष थे, स्त्री नहीं थे। अज्ञानियों ने सम्प्रदाय चलाने के लिये कल्पित बातें की है
 बात है
 के टालने की मुख्यता नहीं है
 कुदेवादिक को नहीं मानता उसको देवादिक का श्रद्धानी कहते है
 प्राप्त करे तो अरहंतादिक की श्रद्धा को व्यवहार सम्यक्त्व कहते हैं
 अभिनिवेश का अभाव होता है
 श्रद्धा राग है
 होता है
 देवादि की श्रद्धा होती है

तथा सर्वज्ञ की प्रतिमा वीतरागी होती है
 पर गहने, वस्त्र आदि कुछ भी नहीं होते-ऐसे सच्चे देव की प्रतिमा को (धर्मी-श्रद्धावान जीव) वंदन करता है
 श्रृंगारयुक्त प्रतिमा सरागी होने से वह जिन प्रतिमा नहीं है

जिन प्रतिमा जिन सारखी, भाखी आगम मॉही।।

ऐसी जिन प्रतिमा होनी चाहिये । उस पर वस्त्र या अंगी लगी हो तो वह प्रतिमा वंदनयोग्य नहीं है

पकड़ने पर देवादिक की श्रद्धा को व्यवहार कहा जाता है

प्रश्न:- जब सच्चे देवादि का राग भी छोड़ने योग्य है

उत्तर:- खाने के बाद हाथ धोना है

भूखा रहता है

वह निश्चय को क्या समझेगा ? सच्चे देवादि की श्रद्धा निश्चय से हेय होने पर भी व्यवहार से उपादेय है

शुभराग छोड़ने योग्य है

परन्तु वे उसको हेय समझते हैं

बनाया है

पै

को हेय समझते हैं

में झूलनेवाले मुनिराज को भी प्रतिष्ठा के समय ऐसा शुभराग आता है समझते हैं

शुभराग आये बिना नहीं रहता । बाहर में जड़ की क्रिया होती है नहीं है

प्रतिष्ठा में मुनिराज प्रतिष्ठा करानेवाले से कहते हैं

हो, जिंदगी में ऐसा अवसर मिलना दुर्लभ है

समझते हैं

नहीं रहता है

अब तत्त्वार्थश्रद्धान को सिवाय मोक्षशास्त्र ग्रंथ के अन्य शास्त्रों में व्यवहार समकित कहा है

ज्ञान में सात तत्त्वों के विचार से शुभराग होता है

व्यवहार समकित विकार आस्रव है

उसको व्यवहार कहते हैं
 इसप्रकार वहाँ मुख्यता होती है
 सद्भाव मिथ्यादृष्टि के संभवित है
 निश्चयदशा प्रगट करे तो सच्चे देवादि की श्रद्धा के राग को तथा सात तत्त्वों के विचार को
 कारण कहते हैं
 सच्चे-देवादिक के लिये सिर दे देने पर भी अंतर ज्ञायक स्वभाव को नहीं पकड़े तो उन्हें
 निमित्तकारण नहीं कहा जाता। श्री समयसार के बंध अधिकार में कहा है
 तत्त्वों की श्रद्धा होती है
 की श्रद्धा को व्यवहार नहीं कहा जाता; परन्तु किसी जीव को उसके निमित्त से सम्यग्दर्शन
 प्रगटता है

“ तथा स्व-पर के श्रद्धान में व आत्म श्रद्धान में विपरीत अभिनिवेश रहितपने की
 मुख्यता है

हैं

अजीव, आस्रव बंध को अत्यन्त गौ
 की श्रद्धा कहा है
 को तथा आत्मज्ञानी को सम्यग्दृष्टि कहते हैं
 यहाँ 'मुख्य रूप' से शब्द का प्रयोग किया है
 आत्मा का श्रद्धान सम्यग्दृष्टि के ही होता है

यह कथन मुख्यता की अपेक्षा से है
 आभासमात्र है
 धर्म की श्रद्धा, नवतत्त्वों की श्रद्धा, स्व-पर श्रद्धान तथा आत्मश्रद्धान आभासमात्र होता है

सम्यग्दृष्टि के चारों लक्षण सच्चे होते हैं
 परन्तु नियम रहितपने सम्यक्त्व के परम्परा कारण है
 सच्चा है
 की मंदता से ज्ञान का उघाड़ होना समकित का कारण नहीं है

तो ज्ञान के उघाड़ को तथा राग को कारण कहते हैं
यह एक ही कारण है

अभव्य को निश्चय सहित व्यवहार नहीं है
वह व्यवहाराभास है
कहलाता। परमात्मप्रकाश में कहा है
उसको व्यवहाररत्नत्रय नहीं कहलाता। इसलिये व्यवहार सम्यग्दर्शन औ
भव्य जीव के ही होता है
जो मुक्ति का पात्र होता है

निश्चय के अभिप्राय बिना व्यवहार समकित नहीं कहलाता, वह आभासमात्र है
लक्षण नियमरहित रूप से सम्यक्त्व के परम्परा कारण है
कारण है

सत्य श्रद्धान होना निश्चय सम्यक्त्व है

आत्मा शुद्ध चिदानंद स्वरूप है
धर्म की विकल्परूप श्रद्धा व्यवहार समकित है
तथा उसके बिना पंचमादि गुणस्थान भी नहीं प्रगट होते।

....फिर प्रश्न:- कितने ही शास्त्रों में लिखा है
है

समाधान:- विपरीताभिनिवेशरहित श्रद्धान हुआ सो आत्मा ही का स्वरूप है
वहाँ अभेदबुद्धि से आत्मा औ
आत्मा ही को सम्यक्त्व कहा। अन्य-सर्व सम्यक्त्व को निमित्तमात्र है
करने पर आत्मा औ
व्यवहार कहे है

इसप्रकार निश्चयसम्यक्त्व औ

प्रश्न:- किसी शास्त्र में लिखा है
व्यवहार है

उत्तर:- देहादिक की क्रिया होती है
 है
 श्रद्धा है
 की क्रिया को नहीं करता है
 तथा राग की क्रिया का स्वामी नहीं होता। मैं
 प्रतीति हुई उसको अभेद गिनकर आत्मा का स्वरूप कहा है
 आनंदकंद है
 के साथ अभेद गिनकर उसी को आत्मा का स्वरूप कहा है
 लक्ष्य में लेने से भेद पड़ता है

अनंतानुबंधी का मूल दोष जाने पर जो तीन कषाय चौ
 का दोष है
 श्रद्धा की वीतरागी पर्याय को निश्चय समकित कहा था औ
 व्यवहार समकित कहा था। अब यहाँ आत्मा को निश्चय समकित कहने का स्पष्टीकरण चल
 रहा है
 प्रतीति वर्तती है
 समकित कहते हैं
 शुद्ध चै
 परन्तु उस पर्याय को आत्मा के साथ अभेद गिनकर आत्मा को निश्चय समकित कहा है

द्रव्य, वह सामान्य अंश है
 भेद नहीं पड़ते। इसलिये इस अपेक्षा से आत्मा को समकित कहा है
 प्रगट करनेवाले के देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा अथवा नव तत्त्वों की श्रद्धा होती है
 व्यवहार कहते हैं
 औ

आत्मा बाहर की (परद्रव्य की) क्रिया नहीं कर सकता, इसलिये वह तो व्यवहार भी
 नहीं है

शुद्ध चिदानंद है

की पर्याय के बीच भेद करना व्यवहार है

जिसको देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा का ठिकाना नहीं उसको व्यवहार कै
उससे भी बहुत आगे की बात है

मोक्षमार्ग औ
को भी व्यवहार कहते है
विकल्प उत्पन्न होना व्यवहार है
प्रतीति है

इसप्रकार सम्यक्त्व के निश्चय औ

....तथा अन्य निमित्तादि अपेक्षा आज्ञासम्यक्त्वादि सम्यक्त्व के दस भेद किये है
वह आत्मानुशासन में कहा है

आज्ञामार्गसमुद्भवमुपदेशात्सूत्रबीजसंक्षेपात् ।

विस्तारार्थाभ्यां भवमवपरमावादिगाढे च ।।११।।

अर्थ:- जिनआज्ञा से तत्त्वश्रद्धान हुआ हो सो आज्ञासम्यक्त्व है

यहाँ इतना जानना- 'मुझको जिनआज्ञा प्रमाण है
नहीं है

इसलिये पहले जिनआज्ञा मानने से पश्चात् जो तत्त्वश्रद्धान हुआ सो आज्ञासम्यक्त्व
है

विशेष:-मार्ग सम्यक्त्व के बाद यहाँ पण्डितजी की हस्तलिखित प्रति में छह
सम्यक्त्व का वर्णन करने के लिये तीन पंक्तियों का स्थान छोड़ा गया है
लिख नहीं पाये। यह वर्णन अन्य ग्रन्थों के अनुसार दिया जाता है

तथा उत्कृष्ट पुरुष तीर्थकरादिक उनके पुराणों के उपदेश से उत्पन्न जो
सम्यग्ज्ञान उससे उत्पन्न आगम समुद्र में प्रवीण पुरुषों के उपदेशादि से हुई जो
उपदेशदृष्टि जो उपदेशसम्यक्त्व है

करनेवाला जो आचारसूत्र, उसे सुनकर जो श्रद्धान करना हो उसे भले प्रकार सूत्रदृष्टि कही है

द्वारा दर्शनमोह के अनुपम उपशम के बल से, दुष्कर है

पदार्थों का समूह, उसकी हुई है

जो करणानुयोग का ज्ञानी भव्य, उसके बीजदृष्टि होती है

जानना। तथा पदार्थों को संक्षेपने से जानकर जो श्रद्धान हुआ सो भली संक्षेपदृष्टि है

उसे हे भव्य, तू विस्तारदृष्टि जान, यह विस्तारसम्यक्त्व है

के सिवा किसी अर्थ के निमित्त से हुई सो अर्थदृष्टि है

इसप्रकार आठ भेद तो कारण अपेक्षा किये। तथा श्रुतकेवली के जो तत्त्वश्रद्धान है

सम्यक्त्व कहते है

इसप्रकार सम्यक्त्व के दस भेद किये।

वहाँ सर्वत्र सम्यक्त्व का स्वरूप तत्त्वार्थश्रद्धान ही जानना।....

तथा अन्य निमित्तादि की अपेक्षा आज्ञा सम्यक्त्वादि दस भेद भी कहे हैं
ने आत्मानुशासन में सम्यक्त्व के दस भेद कहे हैं

“आज्ञा, मार्ग, सूत्र, उपदेश औ

अर्थज विस्तारज अवगाढ़, परम-आवगाढ़ कहा सम्यक्त्व”।।।।।।

(पण्डित अभयकुमार शास्त्री कृत पद्यानुवाद)

1. आज्ञा सम्यक्त्व:- वीतराग सर्वज्ञदेव को आज्ञा से आत्मा का निर्णय करना आज्ञा सम्यक्त्व है

जिन आज्ञा प्रमाण है

है

जिनआज्ञा का लक्ष्य भी छूटना चाहिये औ

की आज्ञा का लक्ष्य छूटना धर्म है
है

तक आत्मा पर लक्ष नहीं है
होता है

सच्चे देव-गुरु की आज्ञा का राग अगृहीत मिथ्यात्व सहित का राग है
प्रति राग गृहीत मिथ्यात्व सहित अनंतानुबंधी का राग है
गृहीत मिथ्यात्व का अभाव नहीं होता। सच्चे देव-गुरु के प्रति प्रेम होने से गृहीत मिथ्यात्व
टलता है
पर अगृहीत मिथ्यात्व का अभाव होता है
कहते हैं

“मुझे जिनआज्ञा प्रमाण है
जिनआज्ञा तो बहुत बार मानी है
‘केवली के वचन प्रमाण है
हम पूछते हैं
उसको मिथ्यादृष्टि क्यों कहते हो ?

उसको ऐसा श्रद्धान तो है
गै

द्रव्यलिंगी आज्ञा मानकर मुनि हुआ है
है
सम्यक्त्व व धर्म ध्यान होता है

ज्ञानस्वभाव की मर्यादा में आ जाना आज्ञा है
अवलम्बन से धर्म नहीं है

अरहंतादि पर है
लक्ष करे तो आज्ञा को निमित्त कहते हैं

हो, उसको आज्ञा सम्यक्त्व कहते हैं

2. मार्ग सम्यक्त्व:- निर्ग्रन्थ मार्ग की अवलोकन करना, वह राग है का लक्ष करके निश्चय सम्यग्दर्शन प्रगट करे उसके पूर्व ऐसे विकल्प होते हैं निर्ग्रन्थ मार्ग के अवलोकन द्वारा निश्चय समकित हुआ कहा जाता है वीतराग के मार्ग का, मुनियों के मार्ग का विचार चलता हो वह निमित्त है में धर्म मनानेवाले में निमित्तपना नहीं है

3. उपदेश सम्यक्त्व:- तीर्थकर, चक्रवर्ती आदि तिरेशठ शलाका पुरुषों के जीवन चरित्र पुराणों में वर्णित है प्रवीण पुरुषों के उपदेश आदि से जो उपदेशक दृष्टि वह उपदेश सम्यक्त्व है कथन है को निमित्त कहा जाता है सम्यग्दर्शन तो स्वभाव के आश्रय से ही होता है निमित्त है

4. सूत्र सम्यक्त्व:- मुनियों के वस्त्र-पात्र नहीं होते, मौ हाथ में निर्दोष आहार लेते हैं के लिये निकले औ तोड़कर ज्ञानस्वभाव में आ जाते हैं यह क्या ? अग्नि की ज्वाला देखे तो आहार का विकल्प तोड़कर सहजानंद स्वरूप में डूब जाते हैं करे तो उस श्रद्धा को सूत्र सम्यक्त्व कहते हैं

आत्मस्वभाव को पकड़ना निश्चय समकित है इसलिये इसे सूत्र सम्यक्त्व कहा है

5. बीज सम्यक्त्व:- भगवान ने आत्मा के परिणामों का स्वरूप कहा है करने से आत्मा का भान होता है उसके द्वारा दर्शनमोह के अनुपम उपशम के बल से दुष्कर है

पदार्थों का समूह उसकी हुई उपलब्धि अर्थात् श्रद्धान रूप परिणति जिसके, ऐसा जो करणानुयोग का ज्ञानी भव्य, उसके बीज दृष्टि होती है करना शुभभाव है में करणानुयोग का निमित्त बताते हैं निमित्त कहलाता है के पूर्व करण के सूक्ष्म विचार चलते हों तो करणानुयोग के विचार से समकित हुआ ऐसा कहा जाता है विचारों को फेरकर स्वभाव सन्मुख होवे तो बीज सम्यक्त्व हुआ जानना ।

6. संक्षेप सम्यक्त्व:- भगवान के समवसरण में हाथी, चकवा, मेंढक आदि को आत्मा का भान होता है शरीरादि हम (आत्मा) नहीं है तथा किसी को बहुत ज्ञान हो, परन्तु आत्मश्रद्धा नहीं करे तो उसके सम्यक्त्व नहीं कहलाता । यहाँ मूल मुद्दे की बात चलती है अजीव है मैं दया पालन, यात्रा आदि के लिये तो हाँ करता है है करे तो चौ

आत्मा आनंदकंद है सम्यक्त्व का कारण नहीं है थोड़े जानपने को निमित्त कहते है सम्यक् दृष्टि हुई इसलिये भली संक्षेप दृष्टि कही है का कार्य किया है तो मिथ्यादृष्टि रहता है

प्रश्न:- काललब्धि नही पके तो क्या करें ?

उत्तर:- संसार में धन कमाने के लिये तुरंत विदेश जाता है देखता। इसीप्रकार आत्मा में पुरुषार्थ करे तब काललब्धि पकती ही है दोष डालता है इत्यादि मिलना तो भाग्य के आधार से है धर्म, जो कि पुरुषार्थ से होता है मिलते हैं

यहाँ संक्षेप ज्ञानवाले को संक्षेप सम्यक्त्व जानना। सम्यक्त्व को संक्षेप नहीं जानना; परन्तु संक्षेप ज्ञान का आरोप सम्यक्त्व पर किया है औ

स्वभाव तिरने का है किसी से राग-द्वेष करना नहीं, तेरा स्वरूप ज्ञान है से शब्द भी याद नहीं रहे; तो भी भाव का भासन था। फिर किसी समय एक महिला उड़द के छिलके निकाल रही थी, किसी ने उससे पूछा कि क्या करती हो? उस महिला ने उत्तर दिया कि मैं

पर से भाव-भासन का विशेष दृढ़ीकरण किया। आत्मा उड़द की दाल के समान औ छिलके के समान है की दाल के समान उज्ज्वल है अलग नहीं हो सकता; परन्तु ऐसा नहीं है

संक्षेप बुद्धिवाले वे (शिवभूति मुनि) भी केवलज्ञान औ सम्यक्त्व में थोड़ा ज्ञान निमित्त होवे तो उस सम्यक्त्व को संक्षेप सम्यक्त्व कहते हैं

7. विस्तार सम्यक्त्व:- कोई जीव भगवान की वाणी सुनकर आत्मा का भान करे, स्वभाव की दृष्टि करे तो वाणी को निमित्त कहते हैं विस्तार नहीं है में द्रव्य-गुण-पर्याय का स्वरूप -इत्यादि बहुत सुना औ स्वसन्मुख होकर अपनी श्रद्धा करता है

8. अर्थ सम्यक्त्व:- 'मास तुस' शब्द शास्त्र का नहीं है

सम्यग्दर्शन हो अथवा नारियल शब्द सुने तो वह शास्त्र का शब्द नहीं होने पर भी उस पर से भाव का मासन हो कि इसकी जटा पर है

लाल छिलके के समान है

है

ज्ञानी के पास से वाणी तो सुनी होना चाहिये; परन्तु उस समय सम्यक्त्व नहीं हुआ, फिर श्रीफल आदि शब्द सुनकर विचार करे कि मैं

करे तो वह अर्थ सम्यक्त्व है

कसनी पर घिसते है

भाव का विचार करे कि आत्मा ज्ञान आनंद का गोला है

अंदर प्रविष्ट नहीं होता-ऐसा भान करने पर धर्म होता है

किसी अर्थ के निमित्त से हुई जो अर्थ दृष्टि उसको अर्थ सम्यक्त्व जानना ।

इसतरह ये आठ भेद तो कारणों की अपेक्षा से कहे है

के बदले कोई जमा कर दे तो बहुत भूल होती है

गार करने जै

विभाव खाता है

खतौ

की । शास्त्र के ज्ञान द्वारा सम्यग्दर्शन होता है

हटकर, आत्म सन्मुख होवे तो शास्त्र के ज्ञान से समकित हुआ कहलाता है

आदि आठ निमित्त कहे ।

9. अवगाढ़ सम्यक्त्व:- अब ज्ञान की अपेक्षा से बात करते है

हो उस समय पच्चीस इंच वर्षा आने पर भी बाढ़ नहीं आती । इसीतरह अकेले शास्त्र पठनरूप नदी के पानी से सम्यक कलारूपी ज्वार नहीं आता । आत्मा शुद्ध चिदानंद समुद्र के समान है

पानी बाढ़ रूप होता है

पर्याय आती है

समयसार गाथा 9-10 में जो श्रुतकेवली कहा है

वहाँ बारह अंग का ज्ञान नहीं, परन्तु आत्मा के भानवाले को श्रुतकेवली कहा है
गुणस्थानवाले मुनि को बारह अंग का ज्ञान होता है
सम्यक्त्व होता है

चल,मल,अगाढ़ दोष रहित हो तब क्षायिक सम्यक्त्व होता है
सहकारीपने के कारण अवगाढ़ सम्यक्त्व कहा है

“प्रवचन समुद्र बिंदु में उलटी आवे जेम,

चौ

समुद्र की बाढ़ के समय 118 डिग्री की धूप भी उसको रोकने में समर्थ नहीं है
के समय बहुत सी नदियां आकर मिलने पर भी बाढ़ लाने में समर्थ नहीं है
ज्ञानानंद स्वरूप है
में कोई समर्थ नहीं है
है

10. परम अवगाढ़ सम्यक्त्व:- केवली भगवान के तत्त्वश्रद्धान होता है
समकित्ती तिर्यन्च को सम्यक्त्व होता है
तीनकाल तीनलोक का ज्ञान प्रगट हुआ है
सम्यक्त्व कहा है

ये दोनों अन्तिम भेद ज्ञान के सहकारीपने की अपेक्षा से कहे गये है
के दस भेद कहे गये है
तेरहवें गुणस्थानवर्ती के क्षायिक सम्यक्त्व में कोई अन्तर नहीं है
की अपेक्षा से भगवान के समकित को परमावगाढ़ सम्यक्त्व कहा है

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र मोक्षमार्ग है
किस कारण से सम्यग्दर्शन होता है
नहीं है
निमित्त से समकित के आठ के भेद कहे औ

परमावगाढ ये दो भेद कहे-इसप्रकार कुल दस भेद कहे। अब कर्म की अपेक्षा से सम्यक्त्व के भेद बतलाते हैं

....तथा सम्यक्त्व के तीन भेद किये हैं
 क्षायिक । सो तीन भेद दर्शनमोह की अपेक्षा किये हैं

वहाँ औ

द्वितीयोपशमसम्यक्त्व। वहाँ मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में करण द्वारा दर्शनमोह का उपशम करके जो सम्यक्त्व उत्पन्न हो, उसे प्रथमोपशमसम्यक्त्व कहते हैं

वहाँ इतना विशेष है

उपशम होता है

जब जीव उपशमसम्यक्त्व को प्राप्त हो, वहाँ उस सम्यक्त्व के काल में मिथ्यात्व के परमाणुओं को मिश्रमोहनीयरूप व सम्यक्त्वमोहनीयरूप परिणमित करता है

प्रकृतियों की सत्ता होती है

सत्ता है

की सत्ता है

हुई थी वह सत्ता पायी जाये, उसके तीन की सत्ता है

सम्यक्त्वमोहनीय की उद्वेलना हो गई हो, उनके परमाणु मिथ्यात्वरूप परिणमित हो गये हों, उसके एक मिथ्यात्व की सत्ता है

प्रकृतियों का व एक प्रकृति का उपशम होता है

उपशम क्या? सो कहते हैं

सम्यक्त्व के काल में उदय आने योग्य निषेक थे, उनका तो अभाव किया, उनके परमाणु अन्यकाल में उदय आने योग्य निषेकरूप किये। तथा अनिवृत्तिकरण में ही किये उपशमविधान से जो उसकाल के पश्चात् उदय आने योग्य निषेक थे वे उदीरणारूप होकर इस काल में उदय न आ सकें ऐसे किये।

इसप्रकार जहाँ सत्ता तो पायी जाये औ

यह मिथ्यात्व से हुआ प्रथमोपशमसम्यक्त्व है

पाया जाता है

तथा उपशमश्रेणी के सन्मुख होने पर सप्तमगुणस्थान में क्षयोपशमसम्यक्त्व से जो उपशम सम्यक्त्व हो, उसका नाम द्वितीयोपशमसम्यक्त्व है ही प्रकृतियों का उपशम होता है यहाँ भी अन्तरकरण विधानसे व उपशम विधान से उनके उदय का अभाव करता है वही उपशम है होता है

इसप्रकार उपशमसम्यक्त्व दो प्रकार का है क्षायिकवत् निर्मल है अन्तर्मुहूर्त कालमात्र यह सम्यक्त्व रहता है ऐसा जानना।

इसप्रकार उपशमसम्यक्त्व का स्वरूप कहा ।....

अब कर्म के निमित्त की अपेक्षा से बात करते हैं
आत्मा शुद्ध चै
निमित्त कै
प्रकार कहे हैं
क्षयोपशम औ
नहीं है

अब, उनमें उपशम सम्यक्त्व के दो भेद हैं सम्यक्त्व। मिथ्यात्व गुणस्थान में अधःकरण आदि करण द्वारा दर्शनमोह उपशमित होता है आत्मा के परिणाम के कारण कर्म का उपशम नहीं होता; परन्तु निमित्त नै है वह प्रथम उपशम सम्यक्त्व है उपशम होता है

अनादि मिथ्यादृष्टि भव्य अथवा अभव्य जीव के मोहनीय की छब्बीस प्रकृतियाँ होती हैं

उपशम होता है

मोहनीय तथा सम्यक्त्व मोहनीय की सत्ता नहीं है

टुकड़े होते हैं

आत्मा के प्रथम उपशम सम्यग्दर्शन के परिणाम निमित्त हैं

मिथ्यात्व प्रकृति की ही सत्ता है

जाये अर्थात् मिथ्यादृष्टि हो जाये तो उसमें से किसी के तीन तथा किसी के एक प्रकृति की सत्ता है

हों उसके एक मिथ्यात्व की सत्ता है

का उपशम होता है

प्रश्न:- उपशम से क्या आशय है

उत्तर:- आत्मा शुद्ध चै

होते हैं

उनका यहाँ अभाव किया। अर्थात् उसके परमाणुओं को अन्य काल में उदय आने योग्य निषेकरूप किया।

तथा समकित के पहले अनिवृत्तिकरण में किये हुए उपशम विधान से जो उस काल में उदय आने योग्य निषेक थे वे उदीरणरूप होते हैं किये।

इसप्रकार जहाँ सत्ता में होने पर भी उनका उदय न हो उसका नाम उपशम है

मिथ्यात्व से हुआ अर्थात् मिथ्यात्व टलकर हुआ प्रथम उपशम सम्यक्त्व है

सातवें गुणस्थान तक होता है

मिथ्यादृष्टि के प्रथम उपशम समकित होता है

किसी नग्न मुनि के बाहर से व्यवहार सच्चा हो औ

सम्यग्दर्शन प्रगट करके चौ

अब द्वितीय उपशम सम्यक्त्व की बात करते हैं
 उपशम श्रेणी चढ़ने के सन्मुख होने पर जो उपशम सम्यक्त्व होता है
 सम्यक्त्व है
 प्रकृतियों की ही सत्ता होती है
 का अभाव करता है
 औ
 चौ
 निमित्तपना बताना है
 काल में क्षायिकवत् निर्मल है
 मात्र रहता है

इसप्रकार उपशम सम्यक्त्व का स्वरूप कहा।

....तथा जहाँ दर्शनमोह की तीन प्रकृतियों में सम्यक्त्वमोहनीय का उदय हो,
 अन्य दो का उदय न हो, वहाँ क्षयोपशमसम्यक्त्व होता है
 पूर्ण होने पर यह सम्यक्त्व होता है
 मिश्रगुणस्थान से भी इसकी प्राप्ति होती है

क्षयोपशम क्या ? सो कहते हैं
 का अनुभाग है
 सम्यक्त्वमोहनीय का है
 होनेपर भी सम्यक्त्व का घात नहीं होता। किंचित् मलितना करे, मूलघात न कर
 सके, उसीका नाम देशघाती है

सो जहाँ मिथ्यात्व व मिश्रमिथ्यात्व के वर्तमान काल में उदय आने योग्य
 निषेकों का उदय हुए बिना ही निर्जरा होती है
 आगामीकाल में उदय आने योग्य निषेकों की सत्ता पायी जाये वही उपशम है
 सम्यक्त्वमोहनीय का उदय पाया जाता है
 इसलिये समलतत्त्वार्थश्रद्धान हो वह क्षयोपशमसम्यक्त्व है

यहाँ जो मल लगता है
 बतलाने के अर्थ चलमलिन अगाढ़पना कहा है
 प्रतीति तो हो, परन्तु अरहन्तदेवादि में- यह मेरा है
 चलपना है
 इत्यादि भाव सो अगाढ़पना है
 नहीं है
 है

इसलिये यह सम्यक्त्व निर्मल नहीं है
 इसमें कुछ भेद नहीं है

इतना विशेष है
 जहाँ मिथ्यात्व की प्रकृति का क्षय करता है
 पश्चात् मिश्रमोहनीय का भी क्षय करता है
 है

कृतकृत्यवेदकसम्यग्दृष्टि नाम पाता है

तथा इस क्षयोपशमसम्यक्त्व ही का नाम वेदकसम्यक्त्व है
 मिथ्यात्व-मिश्रमोहनीय की मुख्यता से कहा जाये, वहाँ क्षयोपशम नाम पाता है
 सम्यक्त्वमोहनीय की मुख्यता से कहा जाये, वहाँ वेदक नाम पाता है
 दो नाम है
 पर्यन्त पाया जाता है

इसप्रकार क्षयोपशमसम्यक्त्व का स्वरूप कहा ।....

अब क्षयोपशम समकित की बात करते हैं
 सम्यक्त्व मोहनीय का उदय होता है
 तथा मिथ्या प्रकृति सत्ता में रहती है
 में सूक्ष्म मलिनता है
 खिरता जाता है

उपशम का काल पूरा होने पर यह सम्यक्त्व होता है
गुणस्थान से व मिश्रगुणस्थान से भी इसकी प्राप्ति होती है

प्रश्न:- क्षयोपशम से क्या तात्पर्य है

उत्तर:- दर्शनमोहनीय की तीन प्रकृतियों में जो मिथ्यात्व का अनुभाग है
भाग मिश्रमोहनीय का तथा उसके अनंतवें भाग सम्यग्मोहनीय का अनुभाग है
अल्प रह गया है

है

मूल से घात नहीं होता। वै

अब जहाँ मिथ्यात्व व सम्यग्मिथ्यात्व के वर्तमान काल में उदय आने योग्य निषेको का
उदय हुए बिना ही निर्जरा हो उसे क्षय जानना तथा उसके ही निषेको का भाविकाल में उदय
आने योग्य सत्ता है

उदय वर्तता है

इसलिये समल तत्त्वश्रद्धान होता है

उसका तारतम्यरूप स्वरूप तो केवलज्ञानी जानते हैं

मलिन औ

अरहंतदेवादि में 'ये देवादि मेरे हैं

हैं

निश्चय से मैं

भी होती ही है

तथा शंकादि मल लगे वह मलिनता है

का बंध नहीं है

हूँ -ऐसा भान है

उदाहरण मात्र बताया है

इतना समझना कि उसको तत्त्वार्थश्रद्धान में किसीप्रकार से समलपना होता है

सम्यक्त्व निर्मल नहीं है

इस क्षयोपशम सम्यक्त्व का एक ही प्रकार है
 कि क्षयोपशम सम्यक्त्वी जीव केवली अथवा श्रुतकेवली की वाणी सुनता है
 सन्मुख विशेष पुरुषार्थ करता है
 काल मात्र जहाँ मिथ्यात्व प्रकृति का लोप करता है
 मिश्रमोहनीय का भी क्षय करता है
 क्षयोपशम समकित है
 कांडक घातादि क्रिया नहीं करता, वह क्षायिक सम्यग्दर्शन पाने की तै
 कृतकृत्य वेदक सम्यक्त्व कहते हैं
 के आश्रय से परिणाम होते हैं
 मिश्र प्रकृति का क्षय करता है
 भी अपनी योग्यता है
 इस क्षयोपशम सम्यक्त्व का ही नाम वेदक सम्यक्त्व है

तथा मिथ्यात्व औ
 पाता है
 ये दोनों नाम कथनमात्र है
 गुणस्थान तक होता है

....तथा तीनों प्रकृतियों के सर्वथा सर्व निषेकों का नाश होनेपर अत्यन्त निर्मल
 तत्त्वार्थश्रद्धान हो सो क्षायिकसम्यक्त्व है
 क्षयोपशम सम्यग्दृष्टि को इसकी प्राप्ति होती है

कै

परमाणुओं को मिश्रमोहनीय व सम्यक्त्वमोहनीयरूप परिणमित करे व निर्जरा करे;
 -इसप्रकार मिथ्यात्व की सत्ता नाश करे। तथा मिश्रमोहनीय के परमाणुओं को
 सम्यक्त्वमोहनीयरूप परिणमित करे व निर्जरा करे; -इसप्रकार मिश्रमोहनीय का नाश
 करे। तथा सम्यक्त्व मोहनीय के निषेक उदय में आकर खिरें, उसकी बहुत स्थिति
 आदि हो तो उसे स्थितिकाण्डकादि द्वारा घटाये। जहाँ अन्तर्मुहूर्त स्थिति रहे तब

कृतकृत्यवेदकसम्यग्दृष्टि हो। तथा अनुक्रम से इन निषेकों का नाश करके क्षायिकसम्यग्दृष्टि होता है

सो यह प्रतिपक्षी कर्म के अभाव से निर्मल है
से वीतराग है
इसका सद्भाव है

इसप्रकार क्षायिकसम्यक्त्व का स्वरूप कहा ।

ऐसे तीन भेद सम्यक्त्व के है

अब क्षायिक सम्यक्त्व की बात करते हैं
नाश होने पर जो अत्यन्त निर्मल तत्त्वार्थश्रद्धा होती है
चार गुणस्थानों में कहीं क्षयोपशम सम्यग्दृष्टि को इसकी प्राप्ति होती है

किस प्रकार होती है

को मिश्रमोहनीयरूप व सम्यक्मोहनीयरूप परिणामावे अथवा उनकी निर्जरा करे। इसप्रकार मिथ्यात्व की सत्ता का नाश करे। यह कथन निमित्त की अपेक्षा से है

श्रुतकेवली के पास हो तब अपना पुरुषार्थ ऐसा करे कि वह मिथ्यात्व कर्म सत्ता में से नष्ट हो जाता है

उनकी निर्जरा करे। इसप्रकार मिश्रमोहनीय का भी नाश करे। तथा सम्यक्त्व मोहनीय के निषेक उदय में आकर खिर जायें तथा यदि उनकी स्थिति बहुत होवे तो उसे स्थिति कांडकादि द्वारा घटावे; जब अन्तर्मुहूर्त स्थिति रहे तब वह कृतकृत्य वेदक सम्यग्दृष्टि होता है

अनुक्रम से उन निषेकों का भी नाश करके क्षायिक सम्यग्दृष्टि होता है

के उपादान की तै

के अभाव से वीतराग है

तीनों समकित वीतराग परिणाम है

अत्यन्त वीतराग नहीं। इसलिये क्षायिक सम्यक्त्व को वीतराग परिणाम कहा है
परिणाम चारित्र दोष में जाते है

रहता है

अपेक्षा से है

इसप्रकार सम्यक्त्व के तीन भेद कहे।

....तथा अनन्तानुबंधी कषाय की सम्यक्त्व होने पर दो अवस्थाएँ होती हैं तो अप्रशस्त उपशम होता है

वहाँ जो करण द्वारा उपशमविधान से उपशम हो, उसका नाम प्रशस्त उपशम है

सो अनन्तानुबंधी का प्रशस्त उपशम तो होता ही नहीं, अन्य मोह की प्रकृतियों का होता है

तथा जो तीन करण द्वारा अनन्तानुबंधी के परमाणुओं को अन्य चारित्रमोह की प्रकृतिरूप परिणमित करके उनकी सत्ता नाश करे, उसका नाम विसंयोजन है

सो इनमें प्रथमोपशमसम्यक्त्व में तो अनन्तानुबंधी का अप्रशस्त उपशम ही है तथा द्वितीयोपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति अनन्तानुबंधी का विसंयोजन होने पर ही होती है

में किसी जीव के अप्रशस्त उपशम होता है

क्षायिक सम्यक्त्व है

-ऐसा जानना।

यहाँ यह विशेष है

विसंयोजन से सत्ता का नाश हुआ था, वह फिर मिथ्यात्व में आये तो अनन्तानुबंधी का बन्ध करे, वहाँ फिर उसकी सत्ता का सद्भाव होता है

मिथ्यात्व में आता नहीं है

होती।....

सम्यक्त्व के सद्भाव में अनन्तानुबंधी कषाय की दो अवस्था होती है उपशम होता है

है

अब अनंतानुबंधी का प्रशस्त उपशम तो होता नहीं है
 का होता है
 अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण द्वारा अनंतानुबंधी के परमाणुओं को अन्य चारित्रमोहनीय की
 प्रकृतिरूप परिणाम कर उसकी सत्ता का नाश किया जाता है
 मिथ्यात्व में से उपशम सम्यक्त्व पावे तब अनंतानुबंधी को अप्रशस्त उपशम ही है
 उपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति तो प्रथम अनंतानुबंधी की विसंयोजना होने पर ही होती है
 नियम कोई आचार्य लिखते है
 को अप्रशस्त उपशम होता है
 पहले अनंतानुबंधी की विसंयोजना होने पर ही होता है

यहाँ इतना विशेष है
 विसंयोजना से सत्ता का नाश हुआ था; यदि वह मिथ्यात्व में आवे तो अनंतानुबंधी के बंध का
 तथा उसकी सत्ता का सद्भाव होता है
 इसलिय उसके कभी भी अनंतानुबंधी की सत्ता नहीं होती।

यह मोक्षमार्ग के स्वरूप का अधिकार है
 जीव सम्यग्दर्शनादि प्रगट करता है
 कर्म के उपशमादि नहीं कर सकता। ' मैं
 अभाव किस तरह होता है
 प्रकृति का ख्याल नहीं है
 है

....यहाँ प्रश्न है
 घात करे, इससे सम्यक्त्व का घात किस प्रकार सम्भव है

समाधान:- अनन्तानुबंधी के उदय से क्रोधादिरूप परिणाम होते है
 अतत्त्वश्रद्धान नहीं होता; इसलिये अनन्तानुबंधी चारित्र ही का घात करती है
 सम्यक्त्व का घात नहीं करती। सो परमार्थ से है
 उदय से जै

निमित्त-नै

है

उपचर से एकेन्द्रियप्रकृति को भी त्रसपने का घातकपना कहा जाये तो दोष नहीं है उसी प्रकार सम्यक्त्व का घातक तो दर्शनमोह है अनन्तानुबंधी कषायों का भी उदय नहीं होता, इसलिये उपचार से अनन्तानुबंधी के भी सम्यक्त्व का घातकपना कहा जाये तो दोष नहीं है

प्रश्न:-अनंतानुबंधी तो चारित्रमोहनीय की प्रकृति है चारित्र का निमित्तरूप से घात करती है अनंतानुबंधी प्रकृति सम्यक्त्व का घात कै

उत्तर:-अनंतानुबंधी के उदय से अपने स्वरूप को भूलकर क्रोधादि के परिणाम होते है परन्तु उसके उदय से कहीं अतत्व श्रद्धान नहीं होता। अनंतानुबंधी सम्यग्दर्शन के साथ रहनेवाले स्वरूपाचरण का ही घात करती है

से है

वै

प्रश्न:-भरत चक्रवर्ती का क्रोध तो पराकाष्ठा का था न!

उत्तर:-नही, भरत का क्रोध पराकाष्ठा का नहीं था, उनको अनंतानुबंधी क्रोध नहीं था। भरत जानते थे कि रागादि परिणाम भी मेरा ज्ञेय है ज्ञानस्वरूप हूँ। सगे भाई को मारने का भाव हुआ; परन्तु वह अनंतानुबंधी क्रोध नहीं था। कमजोरीवश रागादिभाव होते हैं

राजा श्रेणिक सिर पटककर मरकर नरक में गये, तो भी अनंतानुबंधी का द्वेष नहीं था। अप्रत्याख्यान संबंधी द्वेषादि परिणाम हुए वह मेरा ज्ञेय है

अनंतगुणों का समाज है

हो सकता औ

सकता हूँ' -ऐसा अभिप्राय है

के साथ कषाय का संबंध नहीं है

अनंतानुबंधी का कारण है

जै

(जीव) एकेन्द्रिय में जाता है

में एकेन्द्रिय जाति प्रकृति का उदय नहीं होता, इसलिये उपचार से एकेन्द्रिय प्रकृति को भी त्रसपने की घातक कहे तो वहाँ दोष नहीं है

है

उपचार से अनन्तानुबंधी में भी सम्यक्त्व का घातकपना कहे तो दोष नहीं है

....यहाँ फिर प्रश्न है

इसके जाने पर कुछ चारित्र हुआ कहां। असंयत गुणस्थान में असंयम किसलिये कहते हो ?

समाधान:- अनन्तानुबंधी आदि भेद है

क्योंकि मिथ्यादृष्टि के तीव्र कषाय होने पर व मन्दकषाय होने पर अनन्तानुबंधी आदि चारों का उदय युगपत् होता है

इतना विशेष है

का हो, वै

प्रत्याख्यान संज्वलन का उदय हो, वै

प्रत्याख्यान के साथ संज्वलन का उदय हो, वै

होता। इसलिये अनन्तानुबंधी के जानेपर कुछ कषायों की मन्दता तो होती है

ऐसी मन्दता नहीं होती जिससे कोई चारित्र नाम प्राप्त करे। क्योंकि कषायों के असंख्यात लोकप्रमाण स्थान है

जाती है

असंयमरूप कहे, फिर कितने ही देशसंयमरूप कहे, फिर कितने ही सकलसंयमरूप कहे। उनमें प्रथम गुणस्थान से लेकर चतुर्थ गुणस्थान पर्यंत जो कषाय के स्थान होते हैं

नाम नहीं पाते हैं

यद्यपि परमार्थ से कषाय का घटना चारित्र का अंश है
जहाँ ऐसा कषायों का घटना हो जिससे श्रावकधर्म या मुनिधर्म का अंगीकार हो, वहीं
चारित्र नाम पाता है

कहा है

सर्वत्र सकलसंयम ही नाम पाता है

में असंयम नाम पाता है

प्रश्न:- अनंतानुबंधी चारित्र का घात करती है
पर भी चौ

उत्तर:- अनंतानुबंधी आदि भेद है

कारण कि मिथ्यादृष्टि के तीव्र कषाय हो अथवा मंद कषाय हो। अर्थात् वह युद्ध में हो या दया,
दान, पूजादि करता हो; तो भी चारों कषायें (अनंतानुबंधी आदि) वर्तती हैं
वाला, पुण्य से धर्म माननेवाला कायोत्सर्ग में हो या युद्ध में, तो भी उसके चारों का उदय होता
है

शुक्ललेश्या हो, वह क्रोध न करे, ब्रह्मचर्य पालन करे; तो भी उसकी दृष्टि पुण्य औ
पर होने से उसके अनंतसंसार का कारण खड़ा है

कोई समकिति युद्ध में हो तो भी उसके अनंतानुबंधी का अभाव है
कायोत्सर्ग करता हो तो भी उसके अनंतानुबंधी क्रोध, मान,माया, लोभ का सद्भाव है
मिथ्यादृष्टि के चारों के उत्कृष्ट स्पर्द्धक समान कहे हैं
का अभाव हो गया -ऐसा नहीं है

है

जै

के साथ प्रत्याख्यान औ

होता। तथा प्रत्याख्यान के साथ जै

उदय नहीं होता है

होती है

आंशिक चारित्र नाम पाता है
 सर्वत्र पूर्वस्थान से उत्तर स्थान में मंदता होती है
 की गई है

* प्रथम बहुत स्थान तो असंयमरूप कहे, अनंतानुबंधी का अभाव होने पर भी बहुत स्थान तो असंयमरूप कहे।

* फिर कितने ही संयमरूप कहे। औ

* फिर कितने ही सकल संयमरूप कहे।

उनमें प्रथम से लेकर चतुर्थ गुणस्थान तक कषाय के जो स्थान होते हैं
 के ही होते हैं
 कहलाता।

पंचम गुणस्थान में सहजानंद दशा की शान्ति बढ़ती है
 कहते हैं

चौ

कषाय की मंदता होने पर भी चारित्र नाम नहीं पाता। यद्यपि परमार्थ से कषाय का घटना
 चारित्र का अंश है

श्रावकधर्म अथवा मुनिधर्म का अंगीकार हो, वहाँ ही चरित्र नाम पाता है

सम्प्रदाय में जन्मनेमात्र से श्रावकपना नहीं है

कमजोरी से उसके स्वकाल में होता है

नहीं होता। रागादि व्यवस्थित होते हैं

समय जो शुभाशुभभाव होना है

श्रावक को बारह व्रत के परिणाम सहज आते हैं

साथ अट्ठाईस मूलगुण पालन का राग सहज आता है

विहारी मुनि कि जिनको आत्मा में से शान्ति के निर्झर फूट रहे होते हैं

अब, असंयत गुणस्थान में वै

कषायों की अधिकता-हीनता होने पर भी जै
संयम ही नाम पाता है
पाता है
असंयम की समानता नहीं जानना चाहिये।

....यहाँ फिर प्रश्न है

इसका उदय होने पर सम्यक्त्व से भ्रष्ट होकर सासादन गुणस्थान को कै
करता है

समाधान:- जै

हुआ हो, उसको मनुष्यपर्याय का छोड़नेवाला कहते हैं
देवादिपर्याय हो, वह तो रोग अवस्था में नहीं हुई। यहाँ मनुष्यही का आयु है
उसीप्रकार सम्यक्त्वी के सम्यक्त्व के नाश का कारण अनन्तानुबंधी का उदय प्रगट
हुआ, उसे सम्यक्त्व का विरोधक सासादन कहा। तथा सम्यक्त्व का अभाव होने पर
मिथ्यात्व होता है
है

इसप्रकार अनन्तानुबंधी चतुष्टय की सम्यक्त्व होने पर अवस्था होती नहीं,
इसलिये सात प्रकृतियों के उपशमादिक से भी सम्यक्त्व की प्राप्ति कही जाती है

प्रश्न:- यदि अनन्तानुबंधी प्रकृति सम्यग्दर्शन का घात नहीं करती तो उसका उदय होने
पर जीव सम्यक्त्व से भ्रष्ट होकर सासादन गुणस्थान को कै

उत्तर:- जै

हुआ हो उसको मनुष्य पर्याय छोड़नेवाला कहते हैं
पर्याय होती है
सम्यग्दृष्टि को सम्यक्त्व के नाश का कारणरूप अनन्तानुबंधी का उदय हुआ हो, उसे सम्यक्त्व
का विराधक सासादन कहा है
अभाव तो इस सासादन में होता नहीं, यहाँ तो उपशम सम्यक्त्व का ही काल है
इसप्रकार सम्यक्त्व के सद्भाव में अनन्तानुबंधी चौ
प्रकृतियों के उपशमादि से भी सम्यक्त्व की प्राप्ति कहलाती है

....फिर प्रश्न:- सम्यक्त्वमार्गणा के छह भेद किये है

समाधान:- सम्यक्त्व के तो भेद तीन ही है

मिथ्यात्व है

है

यहाँ कोई कहे कि सम्यक्त्व से भ्रष्ट होकर मिथ्यात्व में आया हो उसे मिथ्यात्व सम्यक्त्व कहा जाये। परन्तु यह असत्य है

पाया जाता है

असंयम कहा, भव्यमार्गणा में अभव्य कहा, उसीप्रकार सम्यक्त्वमार्गणा में मिथ्यात्व कहा है

पर कितने ही जीवों के सम्यक्त्व का अभाव भासित हो, वहाँ मिथ्यात्व पाया जाता है

सासादन, मिश्र भी सम्यक्त्व के भेद नहीं है

जानना।

यहाँ कर्म के उपशमादिक से उपशमादि सम्यक्त्व कहे, सो कर्म के उपशमादिक इसके करने से नहीं होते। यह तो तत्त्वश्रद्धान करने का उद्यम करे, उसके निमित्त से स्वयमेव कर्म के उपशमादिक होते है

ऐसा जानना।

ऐसे सम्यक्त्व के भेद जानना।

इसप्रकार सम्यग्दर्शन का स्वरूप कहा ।....

प्रश्न:-तो सम्यक्त्व मार्गणा के छह भेद किये वह किस प्रकार? तुमने समकित के उपशम क्षयोपशम औ

उत्तर:- सम्यक्त्व के तो तीन भेद है

दोनों का मिश्रभाव वह मिश्र। तथा सम्यक्त्व का घातक भाव वह सासादन-इसप्रकार सम्यक्त्व मार्गणा से जीव का विचार करने पर छह भेद कहे हैं

होकर मिथ्यादर्शन में आया हो उसको मिथ्यात्व कहलाता है
कारण कि अभव्य को भी उसका सद्भाव होता है
है
यहाँ सम्यक्त्व मार्गणा में मिथ्यात्व कहा है
समझना । समकित की अपेक्षा विचार करने पर किसी जीव को सम्यक्त्व को अभाव भासित
हो वहाँ मिथ्यात्व होता है
है
है

यहाँ कर्म के उपशमादि से उपशमादि सम्यक्त्व कहा; परन्तु आत्मा कर्मों का उपशमादि
नहीं कर सकता । वहाँ निमित्त से कथन किया है
सकता । जीव सम्यक्त्व प्राप्त करता है
तब कौ
नहीं आता । जीव जब अपने ज्ञानानंदस्वभाव का पुरुषार्थ करता है
स्वयं के कारण हो जाता है
होते नहीं हैं
करना चाहिये । जीव के पुरुषार्थ के निमित्त से स्वयं कर्म के उपशमादि होते हैं
की प्राप्ति होती है
परन्तु जीव के पुरुषार्थ के साथ कर्मों के निमित्त-नै

इसप्रकार सम्यग्दर्शन का स्वरूप कहा ।

सम्यग्दर्शन के आठ अंग

....तथा सम्यग्दर्शन के आठ अंग कहे है
निर्विचिकित्सत्व, अमूढदृष्टित्व, उपवृंहण, स्थितिकरण, प्रभावना औ
वहाँ भय का अभाव अथवा तत्त्वों में संशय का अभाव सो निःशंकितत्व है
तथा परद्रव्यादि में रागरूप वांछा का अभाव सो निःकांक्षितत्व है
में द्वेषरूप ग्लानि का अभाव सो निर्विचिकित्सत्व है

अन्यथा प्रतीतिरूप मोह का अभाव सो अमूढदृष्टित्व है
जिनधर्म का बढ़ाना उसका नाम उपवृहण है
जाता है

स्वभाव में व जिनधर्म में अपने को व पर को स्थापित करना सो स्थितिकरण है
तथा अपने स्वरूप की व जिनधर्म की महिमा प्रगट करना सो प्रभावना है
स्वरूप में व जिनधर्म में व धर्मात्मा जीवों में अति प्रीतिभाव, सो वात्सल्य है
यह आठ अंग जानना।

जै

अब सम्यग्दर्शन के आठ अंग कहते हैं

1. निःशंकितत्वः- भय का अभाव होना अथवा तत्त्वों में संशय का अभाव होना
निःशंकितत्व है
से भय होता है
नहीं पड़ता-ऐसा माननेवाला धर्मी नहीं है

2. निःकांक्षितत्वः- परद्रव्य में रागरूप वांछ का अभाव निःकांक्षितत्व है
चूककर पुण्य की इच्छा ज्ञानी को नहीं होती है
नहीं होती है

3. निर्विचिकित्सत्वः- परद्रव्य में द्वेषरूप ग्लानि का अभाव निर्विचिकित्सत्व है
समकिति किसी को शत्रु-मित्र नहीं मानता। मैं
है
अनेकांत तत्त्व पर द्वेष वर्तता है
निमित्त से लाभ नहीं है
द्वेषवाले को पर के प्रति द्वेष होती ही है
निमित्त औ
वर्तता है

शास्त्र में कथन आता है
की क्रिया से तथा अंदर में होनेवाले राग से स्वभाव भिन्न है
को वंदन करता है
आता। समकृति मानता है
परद्रव्य के प्रति राग-द्वेष नहीं होते।

4. अमूढदृष्टित्वः- तत्त्वों में तथा देवादिक में अन्यथा प्रतीतिरूप मोह का अभाव
अमूढदृष्टित्व है
करता।

5. उपवृंहणः- अपने आत्मा के स्वभाव में वीतरागी धर्म बढ़ाने में अथवा अन्य को
धर्म में निमित्त होना उपवृंहण है
दोष ढंकना ऐसा उपगूहन का अर्थ समझना चाहिये। इसका यह अर्थ नहीं है
के कैं

6. स्थितिकरणः- अपने ज्ञानांदस्वभाव में स्थिरता स्थितिकरण अंग है
को धर्म में स्थिति करने में निमित्त होना भी स्थितिकरण अंग है
धर्म में स्थिति करता है
स्थितिकरण अंग कहते हैं

7. प्रभावनाः- अपने स्वरूप का माहात्म्य प्रगट करना निश्चय प्रभावना है
जिनधर्म का माहात्म्य प्रगट करना व्यवहार प्रभावना है

8. वात्सल्य :- जिसको शुद्ध चिदानंद आत्मा का प्रेम होता है
निमित्त का प्रेम नहीं होता। धर्मी को विकल्प उत्पन्न होवे तो जिनधर्म में अथवा धर्मात्मा जीवों
में प्रीतिभाव होता है
नहीं होता है; परन्तु यह व्यवहार वात्सल्य है

इसप्रकार ये सम्यग्दर्शन के आठ अंग जानना। जै
आदि अंग हैं

....यहाँ प्रश्न है

पाये जाते हैं

अंग सम्यक्त्व के कौ

समाधान:- जै

मनुष्य ऐसा भी हो जिसके हस्त-पादादि में कोई अंग न हो; वहाँ उसके मनुष्य शरीर तो कहा जाता है

उसी प्रकार सम्यक्त्व के निःशंकितादि अंग कहे जाते हैं

भी हो जिसके निःशंकितत्वादि में कोई अंग न हो; वहाँ उसके सम्यक्त्व तो कहा जाता है

प्रकार बन्दर के भी हस्तपादादि अंग होते हैं

होते; उसीप्रकार मिथ्यादृष्टि के भी व्यवहाररूप निःशंकितादि अंग होते हैं

निश्चय की सापेक्षता सहित सम्यक्त्वी के होते हैं

प्रश्न:- किन्ही सम्यग्दृष्टि जीवों के भी भय, इच्छा, ग्लानि होते हैं के भी भयादि नहीं होते; तो इन निःशंकितादि को सम्यक्त्व के अंग कौ

उत्तर:- जै

है

अंगों के बिना वह शोभायमान व सकल कार्यकारी नहीं होता। इसीप्रकार सम्यक्त्व के निःशंकितादि अंग कहते हैं

में कोई व्यवहार अंग नहीं भी होता, निश्चय अंग तो होते हैं

भी होते, तो भी उसको सम्यक्त्वी कहते हैं

सकल कार्यकारी नहीं होता।

तथा जिसतरह बंदर के भी हाथ-पै

वै

परन्तु जै

सम्यक्त्व के पच्चीस दोष

....तथा सम्यक्त्व में पच्चीस मल कहे हैं
मूढ़ता, षट् अनायतन, सो यह सम्यक्त्वी के नहीं होते। कदाचित् किसी को कोई मल
लगे, परन्तु सम्यक्त्व का सर्वथा नाश नहीं होता, वहाँ सम्यक्त्व मलिन ही होता है
ऐसा जानना। बहु.....

सम्यक्त्व में पच्चीस मल कहे हैं
अनायतन-ये पच्चीस दोष सम्यग्दृष्टि के नहीं होते। कदाचित् किसी को कोई मल लगता है
परन्तु वहाँ सम्यक्त्व का नाश नहीं होता, वहाँ मात्र सम्यक्त्व मलिन ही होता है
समझना।

श्री मोक्षमार्गप्रकाशक नामक इस ग्रंथ में मोक्षमार्ग का स्वरूप दर्शानेवाला यह अधिकार
पण्डितप्रवर टोडरमलजी का देह परिवर्तन हो जाने से अपूर्ण रह गया है

ॐ शान्ति



इस प्रकार पूज्य आचार्यकल्प पण्डितप्रवर टोडरमलजी द्वारा रचित

मोक्षमार्गप्रकाशक के नौवें

(मोक्षमार्ग का स्वरूप)

अधिकार पर दि. 3.6.53 से 15.7.53 तक हुए

आध्यात्मिक सत्पुरुष पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी के

मार्मिक प्रवचनों का

तथा दि. 15.1.54 से 15.7.54 तक हुए प्रवचनांशों का

हिन्दी अनुवाद पूर्ण हुआ।

**मोक्षमार्गप्रकाशक प्रवचन प्रकाशन (चार भाग) में
कीमत कम करने हेतु प्राप्त राशि**

11000//-	श्री आलौ
5000/-	श्रीमती ओमलता लालचंद जी जै
5000/-	श्री योगेन्द्र कुमार जी लालचंद जै
5000/-	श्रीमती साधना,ज्ञानचन्द जै
5000/-	सौ
2100/-	श्री रखबचन्द जी पाटनी, झालरापाटन
2100/-	श्री द्विवीज सेठी, झालरापाटन
2000/-	श्रीमती सुनीता पाटनी, झालरापाटन
2000/-	श्री विक्रान्त पाटनी, झालरापाटन
2000/-	श्री मती उर्वशी पाटनी, झालरापाटन
2000/-	श्रेयसी पाटनी, झालरापाटन
2000/-	श्रीमती फूलबाई सेठी, झालरापाटन
1111/-	श्री अरविन्द बाबासा रोकड़े, मुम्बई
1100/-	श्री कमल कुमार बोहरा, कोटा
1001/-	श्री अनुज, संतोष कुमार जी पाटनी, वाशिम
1000/-	श्रीमती सुशीला देवी पांड्या, झालरापाटन
1000/-	श्री शै
1000/-	श्री भारत जी चाँदवाड़, कोटा

1000/-	श्री मती हेमलता गंगवाल, बांरा
1000/-	श्री मती निर्मला सोगानी, बांरा
551/-	श्री डॉ. बी.ए. शिरढोणे, मिरज
501/-	श्री सतीश भाई मेहता, मुम्बई
500/-	श्री के.डी. उदगवे
500/-	श्री राजेन्द्र कुमार जी भारल, भोपाल
500/-	श्री निमित्त जै
500/-	श्री मती सोहन बाई सोनी, केकड़ी
500/-	श्री मती संध्या शाह, केकड़ी
500/-	श्री मती संम्पत देवी पाटनी, झालरापाटन
500/-	श्री मती सुशीला देवी, धन कुमार जी, जयपुर
100/-	श्री गजेन्द्र जी सोनी, झालरापाटन
100/-	श्री कै
100/-	श्री जयकुमार जी पाटनी, झालरापाटन